ISSN 0976-0849

विमर्श

अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका

वर्ष ११ • अंक ११ • अश्विन कृष्ण चतुर्थी, विक्रम संवत् २०७४ • सितम्बर २०१७

अश्विन कृष्ण चतुर्थी, विक्रम संवत् २०७४ • सितम्बर २०१७
वर्ष ११ • अंक ११

Editor

Pradeep Kumar Rao

The Journal of
Maharana Pratap P.G. College
Jungle Dhusan, Gorakhpur (U.P.)

विमर्श
ISSN 0976-0849

Vimarsh

AN INTERDISCIPLINARY JOURNAL

Editorial Advisory Board

U.P. Singh, Ex Vice-Chancellor, V.B.S. Purvanchal University, Jaunpur

R.P. Mishra, Ex Vice-Chancellor, Allahabad University, Allahabad

Pratap Singh, Ex Chairman, Higher Education Service Commission (HESC), Uttar Pradesh

Ram Achal Singh, Ex Vice-Chancellor, R.M.L. Awadh University, Faizabad and Ex Chairman, Higher Education Service Commission (HESC), Uttar Pradesh

K.B. Pandey, Ex Vice-Chancellor, Chhatrapati Shahu Ji Maharaj University, Kanpur and Ex Chairman, Public Service Commission, Uttar Pradesh

Prof. Surendra Dubey, Vice-Chancellor, Bundelkhand University, Jhansi

Shivajee Singh, Professor, Ancient History, Archaeology and Culture, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

D.N. Tripathi, Ex Chairman, Indian Council of Historical Research (ICRR). New Delhi

Narendra Kohli, Renowned author and thinker

Makkhan Lal, Director, Delhi Institute of Heritage Research and Management, New Delhi

Mrinal Shankar Raste, Ex Vice-Chancellor, Symbiosis International University, Pune

Ram Sakal Pandey, Ex Pro Vice-Chancellor, Allahabad University, Allahabad

Jay Prakash Chaturvedi, Professor, Physics, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

S.C. Bose, Professor, English, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

V.K. Srivastava, Professor, Geography, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

N.K.M. Tripathi, Professor, Psychology, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Sheo Bahal Singh, Professor, Sociology, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Pratibha Khanna, Professor, Education, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Murli Manohar Pathak, Professor, Sanskrit, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

A.K. Singh, Professor, Philosophy, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

A.K. Srivastava, Professor, History, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

R.N. Singh, Professor, Defence and Strategic Studies, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

S.S. Verma, Professor, Geography, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Sadanand Prasad Gupta, Professor, Hindi, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Shri Prakash Mani Tripathi, Professor, Political Science, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

P.C. Shukla, Professor, Commerce, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Rajawant Rao, Professor, Ancient History, Archaeology and Culture, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Y.K. Srivastava, Professor, Sociology, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Satyendra Kumar Singh, Professor, Music and Fine Arts, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Usha Singh, Professor, Music and Fine Arts, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Rajesh Singh, Professor, Political Science, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Manavendra Pratap Singh, Professor, Sociology, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Mahesh Kumar Sharan, Professor, Maghadh University, Bodhgaya (Bihar)

Ravi Shankar Singh, Professor, Physics, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

S.S. Das, Professor, Chemistry, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

D.K. Singh, Professor, Zoology, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

B.D. Pandey, Professor, Botany, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Vinod Kumar Singh, Professor, Defence & Strategic Studies, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Mrityunjay Kumar, Editor, Amar Ujala, Meerut

Vimarsh

AN INTERDISCIPLINARY JOURNAL

Volume 11 • Number 11 • Aashwin Krishna Chaturthi, Vikram Samvat 2074 • September 2017

Editor

Pradeep Kumar Rao

Co-editors

Subodh Kumar Mishra, Pragyesh Kumar Mishra
Abhishek Singh & Avinash Pratap Singh

The Journal of
Maharana Pratap P.G. College
Jungle Dhusan, Gorakhpur (U.P.)-273014

This Journal is a *Referral* Volume.

ISSN- 0976-0849

Vol. 11 • Number 11 • Aashwin Krishna Chaturthi, Vikram Samvat 2074 • September 2017

Vimarsh, an interdisciplinary ***refereed or peer reviewed*** is an annual and bilingual journal of Maharana Pratap P.G. College Jungle Dhusan, Gorakhpur (UP).

Copyright of the published articles, including abstracts, vests in the Editors. The objective is to ensure full Copyright protection and to disseminate the articles, and the journal, to the widest possible readership. Authors may use the article elsewhere after obtaining prior permission from the editors.

Research Papers related to Interdisciplinary subjects are invited for publication in the journal. Research papers, book reviews, Subscription and other enquiries should be sent to – Maharana Pratap P.G. College Jungle Dhusan, Gorakhpur (UP) - 273014, Mob. : 9794299451, 9452971570. You may also e-mail your contributions and correspondence at *vimarshmppg@gmail.com.*

Guidelines for Contributors given on the inner side of the back cover.

The Editors and the Publisher can not be held responsible for errors and any consequences arising from the use of information contained in this journal. The views and opinions expressed do not necessarily reflect those of the editors and the publisher.

Designed & Printed at : Moti Paper Convertors, Betia Raj House, Betiahata, Gorakhpur

Subscription Rates

	Individual		Institutional	
Annual	Rs. 100	US $ 5	Rs. 200	US $ 10
Five Years	Rs. 400	US $ 20	Rs. 800	US $ 40
Life (15 Years)	Rs 1300	US $ 60	Rs. 2500	US $ 100

वन्दे भारतमातरम् !!

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।

वर्ष तद्भारत नाम भारती यत्र सन्ततिः॥ वा.पु.

पृथ्वी का वह भाग जो समुद्र के उत्तर में तथा हिमालय के दक्षिण में स्थित है, भारतवर्ष है, जहाँ भारती प्रजा रहती है।

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने।

यतो हि कर्मभूरेषा ह्यतोऽन्याः भोगभूमयः॥ वा.पु.

इस जम्बू-द्वीप में भी, हे महामुने! भारतवर्ष श्रेष्ठ है, क्योंकि यह कर्मभूमि है और बाकी भोग-भूमियाँ ही हैं।

अत्र जन्म सहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम।

कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसञ्चयात्॥ वा.पु.

भारतवर्ष में जीव हजारों जन्मों के अनन्तर पुण्य जुटाने से कदाचित् मनुष्य जन्म प्राप्त करता है।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ मनु.

इस देश में जन्म पाए हुए श्रेष्ठ जन्मा पुरुषों से पृथिवी के सारे मनुष्य अपने अपने चरित्र की शिक्षा ग्रहण करें।

रत्नाकराधौतपदां हिमालयकिरीटिनीम्।

ब्रह्मराजर्षिरत्नाढ्यां वन्दे भारतमातरम्॥

समुद्र जिसके पाँव पखार रहा है, हिमालय जिसका किरीट है और जो ब्रह्मर्षि-राजर्षिरूप रत्नों से समृद्ध हैं, ऐसी भारत-माता की मैं वन्दना करता हूँ।

भारतीय जीवन दृष्टि

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।

देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे॥ (ऋग्वेद १/४९/१)

कल्याणकारिणी, अप्रतारित, अप्रतिरुद्ध तथा अर्थसाधिका बुद्धियाँ हमारे पास सब ओर से आयें, जिससे निरलस एवं प्रतिदिन रक्षा करने वाले देव सर्वदा हमारी वृद्धि के लिए हों।-

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥ (ऋग्वेद १/८/८)

हे देव! हम कानों से अच्छा सुनें। यजनीय देवगण! हम आँखों से अच्छा देखें। हम दृढ़ाङ्ग शरीरों से तुम्हारी स्तुति करते हुए, देव-स्थापित आयु प्राप्त करें।

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।

बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽसि ओजो मयि धेहि।

महोऽसि महो मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि। (यजुर्वेद १९/९)

(हे परमात्मन्! तुम) तेज हो, मुझमें तेज स्थापित करो। पराक्रम हो, मुझमें पराक्रम स्थापित करो। बल हो, मुझमें बल स्थापित करो। ओज हो, मुझमें ओज स्थापित करो। मह हो, मुझमें मह स्थापित करो। सहिष्णु हो, मुझमें सहिष्णुता स्थापित करो।

भद्रं इच्छन्त ऋषयः स्वर्विदः, तपो दीक्षा उपसेदुः अग्रे।

ततो राष्ट्रं बल ओजश्च जात तदस्मै देवा उपसंनमन्तु॥ (अथर्व. १९/४१/१)

आत्मज्ञानी ऋषियों ने जगत् का कल्याण करने की इच्छा से सृष्टि के आरम्भ में दीक्षा लेकर जो तप किया, उससे राष्ट्र-निर्माण हुआ, राष्ट्रीय बल और ओज भी हुआ। इसलिए सब विबुध इस राष्ट्र के सामने नम्र होकर इसकी सेवा करें।

आ ब्रह्मन्! ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्। आ राष्ट्रे राजन्यः शूराविध्यतेऽतिव्याधी महारथो जायताम्। दोग्ध्री धेनुः, वोढाऽनड्वान्, आशुः सप्तिः, पुरन्धिर्योषा, जिष्णुरथेष्ठाः, सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे-निकामे पर्जन्यो वर्षतु। फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्। योगक्षेमो नः कल्पताम्। (यजुर्वेद. २२/२२)

हे ब्रह्मन्! राष्ट्र में हमारे ब्राह्मण, ब्रह्म वर्चस्वी हों। हमारे राजन्य शूर, अस्त्र-शस्त्र में निपुण, रिपुदल के महासंहारक तथा महायोद्धा हों। हमारी गायें दुधारू हों, बैल हल आदि ढोने वाले हों, घोड़े वेग से दौड़ने वाले हों, स्त्रियाँ घर सँभालने वाली हों, योद्धा विजयशील हों, तथा युवक सभ्य एवं वीर हों। जब-जब हम चाहें बादल बरसें। हमारी फल-फूलवती खेतियाँ पकती रहें और हमारा योगक्षेम चलता रहे।

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।

तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

पुण्य-स्मृति

गोरक्षपीठ द्वारा संचालित
महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद्
शिक्षा क्षेत्र की एक अग्रणी संस्था है।
पूर्वी उत्तर प्रदेश में गोरखपुर को केन्द्र बनाकर
प्राथमिक से उच्च शिक्षा तक लगभग चार दर्जन
शिक्षण संस्थानों का संचालन करने वाले
महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद्
की स्थापना १९३२ ई. में
गोरक्षपीठाधीश्वर
महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज
ने की थी और इसे विशाल वटवृक्ष का रूप दिया
उनके शिष्य महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज ने।
महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय
इसी महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद्
जैसे वटवृक्ष की एक शाखा है।
राष्ट्रसन्त महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज
की
पुण्यस्मृति में
सादर समर्पित है

विमर्श-२०१७

चरैवेति! चरैवेति!

वैदिक ग्रन्थ 'ऐतरेय ब्राह्मण' के 'चरैवेति! चरैवेति!' शीर्षक मंत्र युगपुरुष महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज के जीवन में साक्षात् दिखता है। इन मंत्रों का मूल स्वरूप और सहज-सरल भावानुवाद यहाँ प्रस्तुत है-

नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति इति रोहित शुश्रुम।
पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरतः सखा॥ **चरैवेति! चरैवेति!**

भावार्थ : (हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित को उपदेश करते हुए इन्द्र कहते हैं) हे रोहित! हम ऐसा सुनते हैं कि श्रम करने से जो नहीं थका है, ऐसे मनुष्य को श्री की अथवा ऐश्वर्य और वैभव की प्राप्ति होती है। बैठे हुए आलसी आदमी को पाप धर दबाता है। इन्द्र उसका ही मित्र है, जो बराबर चलता रहता है। इसलिए चलते रहो! चलते रहो!

पुष्पिण्यौ चरतो जंघे भूष्णुरात्मा फल ग्रहिः।
शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताः॥ **चरैवेति! चरैवेति!**

भावार्थ : जो मनुष्य चलता रहता है, उसकी जांघों में फूल फूलते हैं। उसकी आत्मा भूषित और शोभित होकर फल प्राप्त करती है। ऐसे चलने वाले परिश्रमी व्यक्ति के सारे पाप थककर सोये रहते हैं। इसलिए चलते रहो! चलते रहो!

आस्ते भग आसीनस्य ऊर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगः॥ **चरैवेति! चरैवेति!**

भावार्थ : बैठे हुए का सौभाग्य बैठा रहता है और खड़े होने वाले का सौभाग्य उठकर खड़ा हो जाता है। पड़े रहने वाले का सौभाग्य सोता रहता है और उठकर चलने वाले का सौभाग्य चल पड़ता है। इसलिए चलते रहो! चलते रहो!

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तुः द्वापरः।
उत्तिष्ठस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्॥ **चरैवेति! चरैवेति!**

भावार्थ : सोने वाले का नाम कलियुग है, अंगड़ाई लेने वाला द्वापर है, उठकर खड़ा होने वाला त्रेता है और चलने वाला सतयुगी होता है। इसलिए चलते रहो! चलते रहो!

चरन्वै मधु विन्दति चरन्स्वादुमुदम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्॥ **चरैवेति! चरैवेति!**

भावार्थ : चलता हुआ मनुष्य ही मधु (अमृत) प्राप्त करता है। चलता हुआ मनुष्य ही स्वादिष्ट फलों को चखता है। सूर्य के परिश्रम को देखो, जो नित्य चलता हुआ कभी आलस्य नहीं करता। इसलिए चलते रहो! चलते रहो!

Vimarsh

An Interdisciplinary Journal

Volume 11 • Number 11 • Aashwin Krishna Chaturthi, Vikram Samvat 2074 • September 2017

CONTENTS

Articles		Pages
१.	शिवावतार महायोगी गुरु श्री गोरखनाथ **फूलचन्द प्रसाद गुप्त**	१
२.	भारतीय संस्कृति एवं साधना के सिद्ध सन्त योगिराज गम्भीरनाथ **योगी आदित्यनाथ**	११
३.	भारतीय राष्ट्रीयता एवं महन्त दिग्विजयनाथ **यू.पी. सिंह**	१७
४.	हिन्दुत्व साधना के शिखर सन्त महन्त अवेद्यनाथ **स्वामी चिन्मयानन्द सरस्वती**	२०
५.	भारतीय राष्ट्रवाद की विशिष्टताएं **शंकर शरण**	२५
६.	भारतीय संस्कृति अवधारणा एवं महत्त्व **लालमणी त्रिपाठी**	३६
७.	आत्माभिमान व गौरव को बढ़ाने वाला है : पितृतीर्थ गया **महेश कुमार शरण**	४२
८.	ऐतिहासिक गाँवों की धरती मगध **राकेश कुमार सिन्हा 'रवि'**	४९
९.	आधुनिक जीवन की विसंगतियों के समाधान में 'प्रश्नोपनिषद्' की भूमिका **सुशील कुमार पाण्डेय 'साहित्येन्दु'**	६१
१०.	भारत में शिवोपासना का प्राचीनतम स्वरूप **अजय कुमार मिश्र, डॉ. राखी रावत**	६६
११.	प्रो. राजेन्द्र मिश्र की एकांकियाँ और दहेज प्रथा **मधु सत्यदेव, रीना सिंह**	७३
१२.	भारत-बांग्लादेश सम्बन्ध : गतिरोध एवं समाधान **ब्रजेश कुमार मिश्र**	८४
१३.	पंचायती राज व्यवस्था, आदर्श एवं विकास **मो. ताहिर अन्सारी**	९३

१४. प्राचीन भारत में शैवोपासना
सुबोध कुमार मिश्र १०२

१५. भारतीय उच्च शिक्षा – एक शोधपरक दृष्टि
सलिल कुमार पाण्डेय, शिप्रा सिंह १११

१६. प्राचीन भारत में रंगमंच
शत्रुजीत सिंह ११६

१७. सन् १८५७ ई. का स्वतन्त्रता संग्राम व मंगल पाण्डेय की भूमिका
महेन्द्र प्रताप सिंह १२०

१८. बुद्धकालीन दास-प्रथा
श्याम किशोर १२४

१९. मोती बी.ए. की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना
अखण्ड प्रताप सिंह १३२

२०. कर्मचारी भविष्य निधि– एक दृष्टि
सुभाष कुमार गुप्ता १३८

२१. विभिन्न आयोगों के सन्दर्भ में 'व्यावसायिक शिक्षा' एवं उसका वर्तमान परिदृश्य
अनुभा श्रीवास्तव १४८

२२. Learning Strategies : Literature Review
Abhay Pratap Singh, Pragyesh Kumar Mishra १५२

२३. Smart Cities Mission A Step Towards Smart India .....
Rajesh Shukla, Vagish Raj Pandey १६०

२४. Indo-tibetan Cultural Contacts
Himanshu Tiwari १६७

२५. "Startup India : Opportunities and Challenges" .....
Ram Surendra Yadav, Brijvas Kushwaha १७३

२६. Indo-Nepal Economic Relationship in 21st Century
Manjeshwar १८२

२७. पुनर्पाठ १८७

२७.१ एकात्म मानववाद, परिस्थिति निरपेक्ष अनन्त दर्शन
जगदीश प्रसाद माथुर १८८

२७.२ अष्टावक्र
मुरली मनोहर जोशी २००

शिवावतार महायोगी गुरु श्री गोरखनाथ

फूलचन्द प्रसाद गुप्त*

भारत भगवान् के अवतरण की धरती है। इस धरती पर भगवान् राम, भगवान् कृष्ण और भगवान् शिव का प्राकट्य हुआ है। यह गौरव मात्र भारत की धरती को प्राप्त है। यह भगवान् की जन्मभूमि, कर्मभूमि और तपोभूमि है। देश, काल, परिस्थिति के अनुसार भगवान् इस धरती पर अवतरित होते रहे हैं। त्रेतायुग में भगवान् राम, द्वापर में भगवान् कृष्ण का अवतरण 'परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम्' के लिए हुआ वहीं भगवान् शिव महायोगी गुरु श्री गोरक्षनाथ के रूप में जगत्-कल्याण के लिए चारों युगों में प्रकट हुए।

शिवावतारी, नाथपंथ के प्रवर्तक और हठयोग के प्रणेता गुरु श्री गोरखनाथ की तपःस्थली होने का सौभाग्य गोरखपुर की धरती को प्राप्त है। एक बार गुरु गोरखनाथ समाधि में स्थित थे, जिसे देखकर माँ पार्वती ने भगवान् शिव से उनके विषय में पूछा, तो भगवान् शिव ने कहा-

"अहमेवास्मि गोरक्षो मद्रूम तन्निबोधत्।
योगमार्ग प्रचाराय मयारूपमिदंधृतम्॥"

अर्थात् "योग मार्ग से ईश्वर प्राप्ति का मार्ग बताने के लिए मैंने ही गोरख के रूप में अवतार लिया है।" इसीलिए इन्हें शिवावतारी कहा जाता है। गोरखनाथ जी हठयोग के प्रचारक हैं।

गोरखनाथ जी सतयुग में पंजाब, त्रेतायुग में गोरखपुर, द्वापर युग में द्वारका के आगे हरमुज में और कलयुग में काठियावाड़ गोरखमढ़ी में प्रादुर्भूत हुए। बंगाल में विश्वास किया जाता है कि गोरखनाथ जी उसी प्रान्त में प्रकट हुए थे। नेपाली परम्परा में बताया गया है कि गोरखनाथ जी पंजाब से चलकर नेपाल गये थे।

जब भगवान् विष्णु कमल में प्रकट हुए तब श्री गुरु गोरखनाथ पाताल में तपस्या कर रहे थे। भगवान् विष्णु चारों ओर जल की समस्या से चिन्तित होकर गुरु श्री गोरखनाथ जी के पास सहायता के लिए गये। गुरु श्री गोरखनाथ ने उन्हें धूनी से विभूति दी, जिससे पृथ्वी की रचना हुई और सृष्टि का कार्य सुगम हो सका।

भगवान् श्रीराम के राज्याभिषेक के लिए गुरु श्री गोरखनाथ जी को निमंत्रण भेजा गया था,

*प्रवक्ता-हिन्दी, महाराणा प्रताप इण्टर कॉलेज, गोरखपुर

परन्तु तपस्या में लीन होने के कारण वे उपस्थित न हो सके। उन्होंने अपना आशीर्वाद भेजा था। भगवान् श्रीराम ने उनसे योग सम्बन्धी उपदेश ग्रहण किया था।

द्वापर में द्वारिका हरमुज में अवतरित हुए, यही उनकी तपस्थली रही। इसी स्थान पर रुक्मिणी और भगवान् कृष्ण के विवाह में उत्पन्न हो रहे विघ्न को दूर करने के लिए देवताओं के आग्रह पर गुरु श्री गोरखनाथ ने उपस्थित होकर विवाह सकुशल सम्पन्न करवाया।

जब धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ का आयोजन हुआ तब इस यज्ञ के लिए आमंत्रण देने महाबली भीम गुरु श्री गोरखनाथ की तपस्थली गोरखपुर आये थे। उस समय गुरु श्री गोरखनाथ तपस्या में लीन थे। भीम को प्रतीक्षा करनी पड़ी। जहाँ पर महाबली भीम ने विश्राम किया, वहाँ सरोवर बन गया, जो आज भी श्रीगोरखनाथ मन्दिर के प्रांगण में स्थित है।

गुरु गोरखनाथ जी ने अपने सन्दर्भ में कहा-

पूरब देस पछाही घाटी, (जनम) लिष्या हमारा जोगं ।
गुरू हमारा नांवगर कहिए, भेटै भरम विरोगं।।

इस छन्द का अर्थ यद्यपि अध्यात्म से जुड़ा हुआ है परन्तु प्रथम चरण से अर्थ निकलता है कि गुरु श्री गोरखनाथ जी का प्राकट्य पछाँह की घाटी में हुआ और उनके जीवन की तपःस्थली पूरब देश बना।

एक बार गुरु मत्स्येन्द्रनाथ भ्रमण करते हुए गोदावरी नदी के किनारे बसे चन्द्रगिरि नामक गाँव में गये। वहाँ से भिक्षा माँगते हुए एक ब्राह्मण के घर पहुँचे। ब्राह्मणी ने बड़े आदर के साथ उनकी झोली में भिक्षा डाल दी। ब्राह्मणी के मुख पर पातिव्रत्य का अपूर्व तेज था। उसे देखकर मत्स्येन्द्रनाथ को बड़ी प्रसन्नता हुई। परन्तु साथ ही इस सती के चेहरे पर उदासी की एक क्षीण रेखा दिखायी पड़ी। जब इन्होंने इसका कारण पूछा तब उस सती ने निःसंकोच भाव से बताया कि सन्तान न होने के कारण संसार फीका जान पड़ता है। मत्स्येन्द्रनाथ ने तुरन्त झोली से थोड़ी सी भभूत निकाली और ब्राह्मणी के हाथ पर रखते हुए कहा- "इसे खा ले। तुम्हें पुत्र होगा।" इतना कहकर वे तो चले गये। इधर एक पड़ोसिन ने जब यह बात सुनी तब ब्राह्मणी को भभूत खाने से मना कर दिया। फलस्वरूप उसने उस राख को एक गड्ढे में फेंक दिया। बारह वर्ष बाद मत्स्येन्द्रनाथ इधर पुनः आये और उन्होंने उसके द्वार पर जाकर अलख जगाया। ब्राह्मणी के बाहर आने पर उन्होंने कहा- "अब तो बेटा बारह वर्ष का हो गया होगा। देखूँ, तो वह कहाँ है?" यह सुनते ही वह स्त्री घबरा गयी और उसने सारा हाल सच सच बता दिया। मत्स्येन्द्रनाथ उसे लेकर उस गड्ढे के पास गये और वहाँ भी अलख जगाया। आवाज सुनते ही बारह वर्ष का एक तेजपुंज बालक प्रकट हुआ और मत्स्येन्द्रनाथ के चरणों में सिर रखकर प्रणाम करने लगा। यही बालक आगे चलकर गोरखनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। मत्स्येन्द्रनाथ ने उस समय से ही उस बालक को अपने साथ रखा और योग

की पूरी शिक्षा दी। गुरूपदिष्ट मार्ग से गोरखनाथ जी ने साधना पूरी की और स्वानुभव से योगमार्ग में और भी उन्नति की।

नेपाल के लोग श्री गोरखनाथ को श्री पशुपतिनाथ जी का अवतार मानते हैं। नेपाल के भोगमती, भातगाँव, मृगस्थली, औंधरा, स्वारीकोट और पिंडयन आदि कई स्थानों में उनके योगाश्रम हैं। आज भी नेपाल देश की मुद्रा पर एक ओर श्री-श्री गोरखनाथ लिखा रहता है। गोरखनाथ जी के शिष्य होने के कारण ही नेपाली 'गोरखा' कहलाते हैं। गोरखपुर में श्री गोरखनाथ जी ने तपस्या की थी, जहाँ उनका बहुत बड़ा मन्दिर है, वहाँ नेपाल के लोग दर्शन-पूजन के लिए आते हैं।

गोरखनाथ जी महाराज धर्म-प्रचार करते हुए एक बार ज्वाला देवी के यहाँ हिमाचल प्रदेश कांगड़ा पहुँचे। देवी ने उन्हें वहाँ ठहरने की प्रेरणा दी, इस पर श्रीनाथ जी ने कहा कि आपके यहाँ तामसी पदार्थों का भोग लगता है, इसलिए हम यहाँ भोजन नहीं करेंगे। विशेष आग्रह पर गोरखनाथ जी ने कहा कि आप चूल्हा जलाकर खिचड़ी के लिए जल गरम करने हेतु डिब्बी रख दें, मैं भिक्षा (खिचड़ी) माँगकर लाता हूँ। इस पर देवी ने खिचड़ी के लिए डिब्बी चढ़ा दी। खिचड़ी के लिए पानी आज भी गरम हो रहा है किन्तु गोरखनाथ जी पुनः उस स्थान पर आज तक नहीं पहुँचे। वे भ्रमण करते हुए गोरखपुर पहुँच गये। यहाँ की हरीतिमा और रमणीयता पर मुग्ध होकर गोरखनाथ जी ने यहाँ बैठकर तपस्या की, इस प्रकार उनकी यह साधना स्थली पवित्र तपोभूमि के रूप में विख्यात् है। श्री गोरखनाथ जी को यहाँ तपस्या करते हुए देखकर श्रद्धालुओं ने नाथजी के निवास के लिए यहीं पर एक कुटिया बना दी। गोरखनाथ जी ने जिस स्थान पर तपस्या की उसी स्थान पर उनका भव्य मन्दिर निर्मित है, जो लाखों श्रद्धालुओं की श्रद्धा का केन्द्र है।

भगवती इरावती (राप्ती) के तट पर हरीतिमा और रमणीयता से मुग्ध होकर इस स्थान पर जब गोरखनाथ जी महाराज साधना में लीन हुए तो धीरे-धीरे उनकी साधना की बात फैलने लगी। बहुत से लोग उनके दर्शन और आशीर्वाद के लिए उमड़ पड़े। लोगों ने श्रीनाथ जी के खप्पर में खिचड़ी भरना आरम्भ किया। जिस मुहूर्त में खिचड़ी से खप्पर भरा जाने लगा, उस समय मकर संक्रान्ति पर्व का पुण्यकाल था। भारतीय सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन में यह पर्व नवान्न-महोत्सव के रूप में मनाया जाता है। लोग भोजन के रूप में खिचड़ी ग्रहण करते हैं। इस तरह गोरखनाथ जी के खप्पर को खिचड़ी से भरने का उपक्रम गोरखनाथ मन्दिर में मकर संक्रान्ति पर्व पर खिचड़ी महोत्सव और मेले के रूप में हुआ। गोरखनाथ जी के खप्पर में अपार चावल-दाल की राशि भर दी गयी पर खप्पर खाली का खाली ही रह गया। यह अद्भुत और यौगिक चमत्कार था। मकर संक्रान्ति के पर्व पर लाखों श्रद्धालु महायोगी गुरु श्री गोरखनाथ जी को खिचड़ी चढ़ाते हैं और गोरखनाथ जी का दर्शन और आशीर्वाद पाते हैं। इस पर्व पर एक महीने का मेला भी लगता है।

एक बार गोरखनाथ जी ने अपने खप्पर में खिचड़ी बनायी। उन्होंने आसपास की जनता को भोजन के रूप में खिचड़ी का प्रसाद ग्रहण करने के लिए आमंत्रित किया। अपार जनसमूह ने

खिचड़ी का प्रसाद ग्रहण किया पर खप्पर ज्यों-का-त्यों भरा रह गया। गोरखनाथ जी की असीम योगसिद्धि से लोग चमत्कृत हो गये। इसके पूर्व भी गोरखनाथ जी ने यौगिक चमत्कार प्रकट किया था। उन्होंने लोगों से कहा जिसकी जितनी इच्छा हो, हमारी तपःस्थली से अन्न ले जाय। प्रसाद समझकर लोगों ने अपने-अपने घर अन्न ले जाना आरम्भ किया पर उनका खप्पर खाली नहीं हुआ, अन्न का भण्डार भरा रहा। गोरखनाथ जी का यौगिक चमत्कार लोककल्याणकारक रहा।

गुरु श्री गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ सिद्ध मत्त त्याग कर कदली देश में योगिनियों की माया में आसक्त होकर योग ज्ञान भूल गये थे। यह त्रिया राज्य था, जहाँ पुरुषों का प्रवेश वर्जित था। उन्होंने अपने दो शिष्यों लंग और महालंग को लेकर कदली वन में प्रवेश किया। एक सरोवर के तट पर उन्होंने आसन लगाया। वहाँ एक कदली-नारी आयी। गोरखनाथ को उससे पता लगा कि मत्स्येन्द्रनाथ जी महारानी मैनाकिनी के साथ सोलह सौ रमणियों द्वारा परिसेवित होकर विहार में तत्पर हैं। वहाँ योगी का प्रवेश निषिद्ध है। केवल नर्तकियाँ ही उस राजप्रासाद में प्रवेश कर सकती हैं। नर्तकी के वेश में गोरखनाथ जी त्रिया राज्य में प्रविष्ट हुए। त्रिया राज्य की महारानी मैनाकिनी मत्स्येन्द्रनाथ के साथ रत्नसिंहासन पर रमणीय वेश में विराजमान थीं। जब नर्तकी कलिंगा ने अपना नृत्य आरम्भ किया और गोरखनाथ जी नर्तकी वेश में मर्दल पर थाप लगाते हुए अपने गुरुदेव का ध्यान अपनी मर्दली ध्वनि की ओर आकृष्ट किया तो मर्दल की ध्वनि से मत्स्येन्द्रनाथ जी को गोरखनाथ जी का अभीष्ट समझने में एक भी क्षण नहीं लगा। मर्दल के शब्द निकले **'जाग मछन्दर गोरख आया'**। 'हे गुरुदेव! आप महायोग-ज्ञान के स्वामी हैं। आपका कामिनी के रूप में आसक्त होना उचित नहीं है। आप इसका त्याग कीजिए। आप आत्मा के योगी हैं। मैं आपको नाथ साधना की सिद्धि का स्मरण दिलाता हूँ।'

महायोगी गोरखनाथ जी ने अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ को सम्बोधित एवं सावधान कर त्रिया राज्य की भोगवृत्ति पर गुरु को विजय दिलायी और गुरु अपने प्रिय शिष्य के साथ त्रिया राज्य से बाहर हो गये।

भगवान् शिव की नाभि से मत्स्येन्द्रनाथ, हाड़ से हाड़िपा (जालन्धरनाथ), कान से कान्हपा (कृष्णपाद) और जटा से गोरखनाथ की उत्पत्ति हुई। एक बार गौरी के मन में एक प्रश्न उठा कि शिव की मृत्यु कभी नहीं होती जबकि उन्हें मृत्यु सदैव मिलती है। गौरी ने शिव जी से इसका रहस्य जानना चाहा। शिवजी ने गौरी के साथ क्षीर-सागर में सप्तशृंग पर एक डोंगी में बैठकर नीर में स्थित एक मत्स्य ने उस उपदेश का श्रवण किया। उसे एकाग्रचित्त होकर उपदेश श्रवण करते हुए देखकर शिव ने सोचा कि इस मत्स्य ने योगज्ञान का श्रवण कर लिया है। उन्होंने उस पर जल छिड़का। जल छिड़कने पर वह मत्स्य दिव्यकाय मत्स्येन्द्र के रूप में प्रत्यक्ष हो गया।

एक बार गिरिजा ने भगवान् शिव से आग्रह किया कि आप चौरासी नाथ सिद्धों मत्स्येन्द्रनाथ,

जालन्धरनाथ, कृष्णपाद और गोरखनाथ को विवाह करके वंश चलाने की अनुमति दें। शिव ने कहा कि इन सिद्धों में नाम मात्र का भी काम विकार नहीं है। गौरी ने चारों सिद्धों की परीक्षा लेनी चाही। भगवान् शिव ने ध्यान बल से चारों सिद्धों का आह्वान किया। देवी ने भुवन मोहिनी का रूप धारण कर सिद्धों को अन्न परोसा। हाड़िपा ने उनके निवास में झाड़ू लगाने की मनोकामना की। कान्हपा ने सोचा कि ऐसी सुन्दरी मेरी माता हो तो मैं इसकी गोद में बैठकर स्तनपान कर अपना वात्सल्य सफल करूँ। मत्स्येन्द्रनाथ ने सोचा कि ऐसी सुन्दरी मिले तो उसके साथ विहार करूँ। देवी ने उन्हें तत्काल शाप दिया कि जो तुमने योगज्ञान को क्षीर-सागर में भगवान् शिव से श्रवण किया है, उसे भूलकर तुम कुछ समय तक कदली देश में सोलह सौ सुन्दरियों से सेवित महारानी के सौन्दर्य जाल में आसक्त रहोगे। गिरिजा के शाप से ही कदली देश के त्रिया राज्य में रमणी-विहार में आसक्त हुए थे जहाँ से उन्हें उनके शिष्य गोरखनाथ जी ने योग साधना का स्मरण कराकर रमणी रमणी राज्य से मुक्त कराया।

गोरखपुर में श्री गोरखनाथ जी का भव्य मन्दिर उसी स्थान पर बना है जहाँ पर महायोगी गुरु श्री गोरखनाथ जी ने तपस्या की थी। यह मन्दिर ५२ एकड़ के सुविस्तृत क्षेत्र में स्थित है जिसे प्राकृतिक सौन्दर्य प्राप्त है। नाथपन्थ के महान प्रवर्तक गुरु श्री गोरखनाथ की तपोभूमि होने के कारण यह मन्दिर नाथ योगियों, सिद्धों, साधु महात्माओं एवं गृहस्थों के लिए श्रद्धास्पद केन्द्र है।

मन्दिर की मुख्य वेदी पर शिवावतार अमरकाय गुरु श्री गोरखनाथ जी महाराज की श्वेत संगमरमर की दिव्य मूर्ति साधनावस्था में प्रतिष्ठित है। इस दिव्य मूर्ति का दर्शन कर भक्त श्रद्धा से गोरखनाथ जी के चरणों में नतमस्तक हो जाता है। गोरखनाथ मन्दिर के गर्भगृह में गोरखनाथ जी की चरण-पादुकाओं की प्रतिमूर्ति भावांकित हैं जिनकी विधिवत पूजा होती है। प्रातःकाल घण्टों-नगाड़ों और तुमुल ध्वनि के साथ श्री गोरखनाथ जी की पूजा विधि-विधान से प्रारम्भ हो जाती है। मध्याह्न में पुनः श्रीनाथ जी की पूजा होती है। सायंकाल भी निर्धारित समय में पूजा-आरती होती है। जिस समय यहाँ पूजा का विश्राम होता है, ठीक उसी समय दांग चौघड़ा (नेपाल) में पूजा प्रारम्भ हो जाती है और जब वहाँ पूजा का विश्राम होता है, ठीक उसी समय माई पाटेश्वरी देवी के मन्दिर तुलसीपुर देवीपाटन (जिला-बलरामपुर) में पूजा प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रकार निरन्तर तीनों स्थानों में रात-दिन पूजा चलती रहती है। श्री गोरखनाथ मन्दिर में प्रतिदिन दर्शनार्थियों का समूह उमड़ता रहता है, परन्तु प्रत्येक मंगलवार को हजारों की संख्या में दर्शनार्थ आते हैं और श्रीनाथ जी को फल, फूल, माला, लड्डू और खिचड़ी चढ़ाते हैं।

श्री गोरखनाथ जी द्वारा त्रेतायुग में जलायी गयी अखण्ड ज्योति आज भी अनवरत रूप से जल रही है। माताएँ ज्योति के काजल से बच्चों के नेत्र अंजित करती हैं। मुख्य मन्दिर में ही भगवान् शिव नटराज, विघ्नविनाशक गणेश जी, भगवती महाकाली, श्री भैरवनाथ जी की भव्य मूर्तियाँ

स्थापित हैं जिनके दर्शन से भक्त आनन्दित होते हैं। अखण्ड धूना एक दर्शनीय स्थल है। इस धूने में महायोगी गोरखनाथ जी द्वारा त्रेतायुग से प्रज्वलित अग्नि आज भी सुरक्षित है। अनेक त्रिशूलों से समलंकृत भैरव जी का स्थान, शीतला माता का मन्दिर, शिव जी के मन्दिर में प्रस्थापित शिवलिंग और भगवान् शिव की प्रतिमा, दुर्गा माता का मन्दिर दर्शनार्थियों में भक्ति-भाव जगाता है। श्री हनुमान मन्दिर में प्रतिष्ठित हनुमान जी की मूर्ति, श्री हट्ठी माई, नवग्रहों की मूर्तियाँ, श्री राधा-कृष्ण की भव्य प्रतिमा, श्री संतोषी माता, गंगा माता, छठी माता, भगवान् सूर्य की भव्य प्रतिमा का दर्शन भक्तगण करते हैं। श्री गोरखनाथ मन्दिर परिसर स्थित भीम सरोवर, जो युधिठिर के राजसूय यज्ञ में पधारने का निमंत्रण देने के लिए आये हुए भीम के विश्राम करते समय पृथ्वी द्वारा उनका भार न सहन करने के कारण आकारित है, उसके पवित्र जल में स्नान कर भक्त अपने को धन्य मानते हैं। इसी सरोवर के किनारे विश्रामावस्था में भीम की विशाल मूर्ति प्रतिष्ठापित है। बाबा ब्रह्मनाथ, बाबा गम्भीरनाथ, युगपुरुष महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज एवं राष्ट्रसन्त महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज के संगमरमर निर्मित श्रीविग्रह से अलंकृत दिव्य समाधि-मन्दिर आचार्यों की छवि को भक्तों के मानस पटल पर अंकित करते हैं।

प्रतिवर्ष मकर संक्रान्ति के अवसर पर श्री गोरखनाथ मन्दिर परिसर में विशाल मेला लगता है। मकर संक्रान्ति के पूर्व ही मन्दिर परिसर दुकानों से सज्जित हो जाता है। मकर संक्रान्ति के प्रातःकाल श्री गोरक्षपीठ की ओर से गोरक्षपीठाधीश्वर महायोगी गुरु गोरखनाथ मन्दिर में श्री गोरखनाथ जी को खिचड़ी चढ़ाते हैं। तत्पश्चात् नेपाल नरेश की खिचड़ी चढ़ती है। इसके बाद भक्तों के लिए मन्दिर का कपाट खोल दिया जाता है। भक्त भीम सरोवर के पवित्र जल में स्नान कर गुरु श्री गोरखनाथ जी को खिचड़ी चढ़ाते हैं। आज के दिन लाखों भक्त गुरु श्री गोरखनाथ जी का दर्शन करते हैं एवं खिचड़ी चढ़ाते हैं। दर्शनार्थियों की पंक्तियाँ कभी-कभी मुख्य द्वार तक देखी जाती हैं। कतारबद्ध श्रद्धालु हर-हर महादेव, गुरु गोरखनाथ के जयघोष से गगनमण्डल को ध्वनित करते हुए गुरु श्री गोरखनाथ का दर्शन करते हैं।

गोरखनाथ जी केवल योगी ही नहीं थे, वरन् वे बड़े विद्वान और कवि भी थे। उनके गोरक्षसहस्रनाम, गोरक्षशतक, गोरक्षपिष्टिका, गोरक्षगीता और विवेकमार्तण्ड आदि अनेक ग्रन्थ संस्कृत भाषा में हैं। लोकभाषा में भी उनकी कविताएँ मिलती हैं। श्रीगोरखनाथ द्वारा रचित हिन्दी ग्रन्थों यथा- सबदी, पद, शिष्या दरसन, प्राणसंकली, नरवै बोध, व्रत आत्मबोध, ग्यान चौतीसा, अभै मात्रा जोग, पन्द्रह तिथि, सप्तवार, मछीन्द्र गोरखबोध, रोमावली, ग्यान तिलक, गोरख गणेश गुष्टि, गोरष दत्त गुष्टि, महादेव गोरख गुष्टि, सिद्ध पुरान, दयाबोध, अष्टचक्र, अष्टमुद्रा, पंच अग्नि के छन्दों का संकलन 'गोरखबानी' में किया गया है। श्री गोरखनाथ जी का यह संकलन इतना लोककल्याणकरक सिद्ध हुआ है कि अब तक इसके तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इस संकलन के सन्दर्भ में

गोरक्षपीठाधीश्वर पूज्य महन्त योगी आदित्यनाथ जी महाराज ने कहा है- "वास्तव में वर्तमान दौर में जिन कुछ अनिवार्य तत्त्वों-तथ्यों की सर्वाधिक अपेक्षा मानव जाति को है उनमें जीवन-शैली को आदर्श बनाने वाली कृतियों की उपलब्धता होनी ही चाहिए। ऐसी रचनाएँ हमारा मानसिक कायिक स्तरोन्नयन करने में सक्षम होती हैं। गुरु गोरखनाथ एक योगी होने के साथ-साथ समाज-सापेक्ष चिन्तक के रूप में भी जाने जाते हैं। उनकी बानियाँ नाथ परम्परानुयायियों के लिए तो परम पवित्र हैं ही, लोक के लिए भी श्लाघ्य और आत्मोन्नति का कारक है।"

गोरखबानी के कुछ छन्द जो लोक में प्रचलित हैं, उनमें एक-दो उदाहरण प्रस्तुत हैं-

मरौ वे जोगी मरौ, मरण है मीठा।
तिस मरणीं मरौ, जिस मरणी गोरष मरि दीठा॥

हे योगी! मरो, जीवनमुक्त अवस्था में स्थित होकर अमृतपद प्राप्त कर लो, इस तरह जीते जी संसार की दृष्टि में अलग अमृतपद में प्रतिष्ठित हो जाना बड़ा ही मधुर है। हे योगी! उस मृत्यु, अमरता का वरण करो जिसके द्वारा मैंने अमृतपद प्राप्त कर, जीवनमुक्त होकर परमब्रह्म परमात्मा, परम शिव का अपने दिव्य चक्षु से दर्शन कर लिया।

हबकि न बोलिबा, हबकि न चालिबा, धीरै धारिबा पावं।
गरब न करिबा सहजैं रहिबा, भणत गोरख रावं॥

बिना सोचे समझे किसी विषय में नहीं बोलना चाहिए, चलने में भी सावधान रहना चाहिए, सोच-विचार कर धीरे-धीरे अपने अभीष्ट कार्य-पथ पर अग्रसर होना चाहिए। मन में अहंकार नहीं आने देना चाहिए, सामान्य जीवन अपनाना चाहिए।

नाथपन्थ में 'नाथ' शब्द का अर्थ प्रभु, कर्ता एवं रक्षक से है। नाथपन्थ की साधना पद्धति का मूल रूप औपनिषदिक योग-धारा तथा आगम-धारा में सम्मिलित है। इस पन्थ के योगी साधना के द्वारा मृत्यु पर विजय प्राप्त कर अमरपद को प्राप्त करते हैं। नाथ में 'ना' का तात्पर्य उस नाथ ब्रह्म से है, जो मोक्ष प्रदान करता है। 'थ' का अर्थ है- अज्ञान के सामर्थ्य को स्थगित करने वाला। 'नाथ' शब्द के विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि 'नाथ' शब्द के दो अर्थ हैं- परमतत्त्व, ब्रह्म या गुरु। नाथ शब्द का प्रयोग उपाधि के रूप में किया जाता है। जो साधक नाथ सम्प्रदाय में दीक्षित होता है, दीक्षित होने के बाद उसके नाम में 'नाथ' शब्द जोड़ दिया जाता है।

नवनाथ के रूप में जिन देवताओं का ध्यान नाथ परम्परानुयायी करते हैं, उनके नाम हैं- आदिनाथ, उदयनाथ, सत्यनाथ, सन्तोषनाथ, अचलनाथ, कन्थडिनाथ, चौरंगीनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ और गोरक्षनाथ।

गुरु गोरखनाथ महान दार्शनिक भी थे। दार्शनिक चिन्तन द्वारा सत्य की निष्पक्ष खोज उनका लक्ष्य था। उनका उद्देश्य योगसाधना के द्वारा व्यक्ति की सांसारिक चेतना को संकुचित विचारों,

पूर्वाग्रहों से मुक्त कर आध्यात्मिक चेतना के स्तर को ऊँचा उठाना था, जहाँ पर वह परम सत्य ब्रह्म का प्रत्यक्ष अनुभव कर सके। गोरक्षनाथ द्वारा उपदिष्ट दार्शनिक सिद्धान्त तथा योगानुशासन मन एवं बुद्धि से परे, उनके पारमार्थिक अनुभव पर आधारित है।

गुरु गोरखनाथ 'हठयोग' के प्रवर्तक हैं। हठयोग का अर्थ हठात् अर्थात् हठ (विशेष आग्रह)पूर्वक योगाभ्यास करने से है। योग-साधना मानवता के कल्याण के लिए हमारे महर्षियों और महान योगियों द्वारा प्रचारित विशिष्ट रसायन है जिसका सेवन सभी के लिए सुलभ एवं उपादेय है।

हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद् हठयोगो निगद्यते॥

सूर्य (प्राण) को 'ह' कहा जाता हे और चन्द्र (अपान) को 'ठ' कहा जाता है। हठयोग के अन्तर्गत षट्कर्मों में धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक और कपालभाति की क्रियाएँ शरीरस्थ कफ, वात और पित्त का दोष नष्ट कर काया का शोधन कर देती हैं। आसनों के नियमित अभ्यास से शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों से मुक्ति मिलती है। प्राणायाम से नाड़ी शोधन होता है और इससे शरीर और मन की स्थिरता सिद्ध होती है। गुरु गोरक्षनाथ जी कहते हैं कि महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डियानबन्ध, जालन्धरबन्ध और मूलबन्ध के अभ्यास में जो योगी कुशल होता है, वही मुक्ति का पात्र है। हठयोग साधना का परम लक्ष्य षट्चक्र भेदन द्वारा कुण्डलिनी जागरण कर सहस्रार में शिव का साक्षात्कार है। गुरु गोरखनाथ द्वारा प्रवर्तित हठयोग का उद्देश्य परम शिव का साक्षात्कार करना है।

सामाजिक जीवन में संकीर्णता अस्पृश्यता के रूप में दिखायी पड़ती है। गुरु गोरखनाथ ने जातियों में बँटे समाज को सशक्त एवं समर्थ बनाने के लिए उन तत्त्वों का कठोरता से विरोध किया जिन्होंने समाज में ऊँच-नीच, जाति-पाँति का विष बोया था। गुरु गोरखनाथ ने स्वर्ग-नरक के काल्पनिक भय से शोषित समाज को मुक्त करते हुए संयमित जीवन जीने का मार्ग बताया। उन्होंने कहा कि संयमित जीवन जीना स्वर्ग एवं असंयमित जीवन नरक के समान है। बाह्याडम्बर से ईश्वर को प्राप्त नहीं किया जा सकता यदि आचरण शुद्ध न हो। गुरु गोरखनाथ ने अहिंसा पर आधारित सदाचार से युक्त समाज के निर्माण का महान कार्य किया। अपने धर्म को अधिक मानवीय बताया एवं जाति-व्यवस्था का विरोध किया। यवन भी उनके शिष्य बने। गोरखनाथ जी एवं उनके शिष्यों ने नाथ सम्प्रदाय का वृहत्तर भारत के सम्पूर्ण क्षेत्रों में विस्तार किया। आज भी भारत, नेपाल एवं अन्य देशों में स्थापित नाथपन्थ के मन्दिर, मठ सामाजिक समरसता के क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित कर रहे हैं। नाथ परम्परा में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी वर्णों के सिद्धों को स्वीकार कर समान महत्त्व प्रदान कर मानव द्वारा विभाजित समाज को अस्वीकार कर दिया। जन्म-आधारित जाति व्यवस्था का खण्डन कर दिया। चौरासी सिद्धों में सभी जातियों को समान महत्त्व दिया।

महायोगी गुरु गोरखनाथ ने भारतीय समाज ठीक से देखा था और उसके खण्डित होते हुए रूप से परिचित थे। यह समाज बौद्ध, जैन, द्वैत-अद्वैत, शैव-वैष्णव, निर्गुण-सगुण और कर्मकाण्डों के कारण विभिन्न वर्गों में विभाजित था। अनेक प्रकार की रूढ़ियों, पाखण्ड, आडम्बर समाज में जड़ें जमा चुके थे। उन्होंने देखा यह समाज स्वर्ग-नरक के कल्पना-चक्र में उलझा हुआ है। पाखण्डी स्वर्ग-नरक का भेद बताकर जनता का शोषण कर रहे हैं। ऐसे समाज को एकता के सूत्र में पिरोते हुए उन्होंने योग-साधना के माध्यम से जीव को जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। इन्द्रिय-निग्रह पर उन्होंने विशेष बल दिया। इस प्रकार गुरु गोरखनाथ जी सर्वसमाज का नेतृत्व एवं पथ-प्रदर्शन किया। नेपाल, राजस्थान एवं गुजरात के राजघरानों से लेकर अछूत एवं शूद्र कहे जाने वाले वर्ग को एक ही माला के पुष्पों को गूँथते हुए सभी प्रकार के भेदों को मिटा दिया। उन्होंने जगत् को नाद एवं बिन्दु से उत्पन्न बताया।

नाथपन्थ के श्रीनाथ तीर्थस्थल भारत ही नहीं बल्कि अन्य देशों में भी प्रतिष्ठित हैं। कुछ स्थानों पर उनकी चरण-पादुकाएँ प्रतिष्ठित हैं। सिक्किम प्रदेश में चांगचिलिंग नामक स्थान पर श्री गोरखनाथ जी का मन्दिर बना हुआ है। अल्मोड़ा में नाथपन्थ का मन्दिर है जिसमें भैरव जी एवं पार्वती जी की मूर्ति स्थापित है। यहाँ पर गुरु गोरखनाथ जी की मूर्ति प्रतिष्ठित है। हरिद्वार में महामना मदनमोहन मालवीय मार्ग पर गुरु श्री गोरखनाथ जी का दिव्य मन्दिर प्रतिष्ठित है। नाथपन्थ की ५१ सिद्ध पीठों में हिमाचल प्रदेश में ज्वालादेवी (कांगड़ा) मन्दिर है जहाँ श्री गोरखनाथ जी की चरण-पादुकाएँ स्थापित हैं। सम्पूर्ण भारत में झेलम का गोरक्षटिल्ला नाथ सम्प्रदाय का महत्त्वपूर्ण तीर्थ स्थान माना जाता है। रोहतक (हरियाणा) में अस्थल बोहरमठ नाथपन्थ का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थल है। दिल्ली के रमेशनगर में गोरक्षनाथ मठ प्रतिष्ठित है। पटना के उत्तर गण्डक नदी के संगम पर गंगा के उस पार हरिहर क्षेत्र में गुरु गोरखनाथ की दिव्य सभा विद्यमान है। राजस्थान के बाड़मेर जिले की शिव तहसील में शिव मन्दिर एवं श्री गोरखनाथ जी का मठ अत्यन्त प्रतिष्ठित है। बलरामपुर जिले के तुलसीपुर में स्थित देवीपाटन का प्रसिद्ध मन्दिर भारत के ५१ शक्तिपीठों में से है। पीठ के प्रहरी के रूप में भैरवनाथ जी की नित्य पूजा होती है। काशी में भगवान् विश्वनाथ को नाथयोगी आराध्य देव मानते हैं। काशी में नाथपन्थ के अनेक पवित्र तीर्थस्थान हैं। तीर्थराज प्रयाग में एक भैरव एवं महादेव मन्दिर नाथ सम्प्रदाय की देखरेख में संचालित हैं। झूँसी में गंगा के किनारे गुरु गोरखनाथ जी का पवित्र मन्दिर स्थापित है।

नेपाल देश पर गुरु श्री गोरखनाथ जी की सदैव कृपा रही है। नेपाल के लोग गुरु श्री गोरखनाथ जी के प्रति श्रद्धावनत रहते हैं। नेपाल की राजधानी काठमाण्डू में प्रतिष्ठित पशुपतिनाथ जी का मन्दिर गुरु श्री गोरखनाथ जी का ही मन्दिर है। काठमाण्डू में ही एक और मन्दिर श्री गोरखनाथ जी का स्थापित है जिसमें श्री गोरक्षनाथ जी के बाल-स्वरूप का दर्शन होता है। बागमती गंगा के किनारे मत्स्येन्द्रनाथ जी का मन्दिर स्थापित है। मृगस्थली में गुरु श्री गोरखनाथ जी का भव्य मन्दिर

स्थापित है। दांग में नाथ और सिद्ध भगवन्तनाथ के प्रसिद्ध मठ हैं। यहाँ पर श्री गोरखनाथ जी और भैरवनाथ जी की विशेष पूजा होती है।

इसी प्रकार भारत में और भारत के बाहर अन्य देशों में श्रीनाथ तीर्थस्थल प्रतिष्ठित हैं। यहाँ स्थापित मठों एवं मन्दिरों में गुरु श्री गोरखनाथ जी की नियमित पूजा होती है। श्रीनाथ तीर्थस्थल नाथ परम्परा के अनुयायियों एवं श्रद्धालुओं की श्रद्धा के केन्द्र हैं।

गुरु श्री गोरखनाथ जी का जीवन-चरित लोकोपकारक का है। लोक-कल्याण के लिए ही हठयोग का प्रवर्तन कर जनसामान्य के लिए मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। चारों युगों में अवतरित गुरु श्री गोरखनाथ शिव के अवतार हैं। कलयुग में उनके व्यक्तित्व को अत्यन्त प्रभावशाली माना गया है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने गुरु श्री गोरखनाथ जी के विषय में कहा- "विक्रम संवत् दसवीं शताब्दी में भारतवर्ष के महान गुरु गोरखनाथ का आविर्भाव हुआ। शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली महिमामण्डित महापुरुष भारतवर्ष में दूसरा नहीं हुआ। भारतवर्ष में कोने-कोने में उनके अनुयायी आज भी पाये जाते हैं। भक्ति आन्दोलन के पूर्व सबसे शक्तिशाली धार्मिक आन्दोलन गोरखनाथ का योगमार्ग ही था। भारतवर्ष की ऐसी कोई भाषा नहीं है, जिसमें गोरखनाथ सम्बन्धी कहानियाँ नहीं पायी जाती हों।"

निश्चित रूप से इस महान व्यक्तित्व से व्यक्ति के आत्मिक उन्नयन का मार्ग प्रशस्त हुआ ही, साथ ही समाज का एक सूत्र में बँधना श्रेयस्कर रहा। शिवावतार गुरु श्री गोरखनाथ जी महाराज के चरणों में शत-शत नमन।

भारतीय संस्कृति एवं साधना के सिद्ध सन्त योगिराज गम्भीरनाथ

योगी आदित्यनाथ*

भारतीय संस्कृति एवं साधना के अनन्य साधकों का इतिहास ही भारत का यथार्थ इतिहास है। उनकी तपचर्या अथवा कर्मसाधना ने ही भारत को भारत बनाया और विश्व गुरु के रूप में भी प्रतिष्ठित किया। बृहत्तर भारत का कोई नगर, नद नदी, पर्वत गुफा, वन और श्मशान नहीं, जो उनकी साधना के प्रभाव से पवित्र स्थल न बन गया हो। इन्हीं सिद्धों, योगियों और महापुरुषों की साधना के प्रभाव ने युद्ध क्षेत्र को धर्मक्षेत्र, मानव भूमि को देव भूमि बना दिया। मानवीय जीवन संग्राम के विकट क्षेत्रों को भक्ति रसलीला के आनन्दधाम में परिणित कर दिया। विभिन्न युगों में भारतवर्ष पर अनेक विजातीय आक्रमण हुए, कितने ही राष्ट्र-विप्लव हुए हैं, बहुत से प्राकृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक त्रासदियाँ आयीं, एक लम्बे कालखण्ड तक विदेशी दासता को झेलने के लिए मजबूर होना पड़ा, परन्तु सभी युगों में एक ही आध्यात्मिक आदर्श द्वारा यहाँ का समाज अनुप्राणित होकर फलता-फूलता रहा है। इस आध्यात्मिक धारा के वाहक देश के सिद्धों-सन्तों, ऋषि-मुनियों की परम्परा रही जिनके प्रभाव से विपरीत-से-विपरीत परिस्थिति में भी भारत की सांस्कृतिक अखण्डता कभी विनष्ट नहीं हो पायी। भारतीय संस्कृति एवं साधना की इसी महान् परम्परा में अलौकिक शक्ति-सम्पन्न जिन योगियों एवं सन्तों, ऋषि-मुनियों का आविर्भाव हुआ उनमें महायोगी गुरु गोरखनाथ का अपना विशिष्ट स्थान है, जिनकी साधना एवं अलौकिक शक्ति के प्रभाव से सनातनी भारतीय संस्कृति एवं साधना की धारा को आभ्यन्तरीय मलिनता और विजातीय आक्रमण से मुक्त होकर सात्विक, अति सहज एवं अलौकिक शक्ति से सम्पन्न हो गयी। बृहत्तर भारत का कोई जनपद, अंचल अथवा क्षेत्र नहीं जो उनकी साधना के प्रभाव से मुक्त रहा हो। विभिन्न प्रान्तों एवं अंचलों में सभी जाति-वर्ण के मध्य उनके सम्बन्ध में प्रचलित कथाएँ, किंवदन्तियाँ अत्यन्त ही लोकप्रिय हैं। महायोगी गुरु गोरखनाथ के स्वरचित ग्रन्थ समूह तथा नाथ-सम्प्रदाय के साहित्य के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायों के विभिन्न भाषाओं में रचित नाना प्रकार के ग्रन्थों में भी उनके चमत्कारिक व्यक्तित्व एवं अलौकिक योगैश्वर्य का अद्भुत वर्णन प्राप्त होता है। महायोगी गुरु गोरखनाथ को नाथ-सम्प्रदाय में अजर-अमरकाय अयोनिज शिव स्वरूप योगी के

*गोरक्षपीठाधीश्वर, श्रीगोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर

रूप में मान्यता है। चारों युगों में उनकी विद्यमानता से जुड़े चार प्रमुख स्थल सतयुग में पंजाब (वर्तमान पाकिस्तान के झेलम जिलाद्ध स्थित गोरखटिल्ला, त्रेता में गोरखपुर, द्वापर में हुर्मुज तथा कलियुग में काठियावाड़ का गोरखमढ़ी है। महात्मा बुद्ध एवं आदि शंकराचार्य के साथ ही महायोगी गुरु गोरखनाथ एकमात्र ऐसे सिद्ध सन्त हुए जिनका प्रभाव बृहत्तर भारत में समग्र रूप में देखने को मिलता है। उन्होंने सनातन हिन्दू धर्म के सुसंस्कृत तत्त्वों और भावों का प्रचार करने के लिए तथा हिन्दू समाज को उदार सार्वजनीन नैतिक और आध्यात्मिक धरातल के ऊपर पुनः प्रतिष्ठित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। अपनी यौगिक साधना के बल पर उन्होंने बौद्ध धर्म की नास्तिक भावना के विरुद्ध जोरदार अभियान चलाकर समय-समय पर सनातन हिन्दू धर्म की ध्वज पताका को ऊँचा किया। वहीं बौद्ध धर्मानुयायियों को भी हिन्दू समाज में समाहित करने में असाधारण योगदान दिया। उनके असाधारण साधना का ही प्रभाव था कि अलग-अलग कालखण्ड में अनेक राजा-महाराजा एवं सामान्य जन उनका शिष्यत्व ग्रहण किये और महासिद्ध हुए। महायोगी गुरु गोरखनाथ का ही प्रभाव था कि राजमाता मयनावती एवं डोम का कर्म करने वाला ही सिं आपस में एक-दूसरे के गुरुभाई और गुरुभगिनी कहकर श्रद्धा भाव रखते थे और राजपुत्र गोविन्द चन्द (गोपीचन्द) महासिद्ध हाड़ी के शिष्य बनकर कृतार्थ हुए।

भारतवर्ष की इसी आध्यात्मिक परम्परा का महायोगी गुरु गोरक्षनाथ की त्रेतायुगीन साधना-स्थली गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर है। महायोगी ने कितने कालखण्ड तक यहाँ साधना की इसका प्रामाणिक इतिहास नहीं, लेकिन उनकी तपोभूमि को केन्द्र बनाकर निर्मित नगर वर्तमान का गोरखपुर महानगर है जो उन्हीं के नाम पर बना और आज उत्तर प्रदेश का प्रमुख महानगर, जनपद एवं मण्डल मुख्यालय भी है। देशकाल और अवस्था परिवर्तन के साथ साथ मन्दिर एवं मठ का बाहरी स्वरूप अवश्य बदला। परन्तु बिना किसी झंझावात एवं विघ्न-बाधा के गोरखनाथ मन्दिर की गुरु-शिष्य परम्परा का क्रम महायोगी गुरु गोरखनाथ के समय से ही अटूट चला आ रहा है। इसी महान परम्परा में उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में बाबा गोपालनाथ गोरखनाथ मठ के श्रीमहन्त हुए। एक प्रभावशाली योगी के रूप में उनकी ख्याति थी। साधकों, पर्यटक योगियों एवं तीर्थयात्रियों द्वारा उनकी यौगिक प्रभाव एवं साधु सेवा की सुकीर्ति सर्वत्र व्याप्त थी। इसी यौगिक प्रभाव के कारण एक तरुण योगार्थी का आगमन गोरखनाथ मठ में होता है। यही तरुण योगार्थी महन्त बाबा गोपालनाथ जी से दीक्षित होकर आगे चलकर योगिराज बाबा गम्भीरनाथ के नाम से विख्यात हुए।

योगिराज बाबा गम्भीरनाथ के बाल्य एवं किशोर अवस्था की विशेष जानकारी नहीं। लेकिन गोरखनाथ मन्दिर की जानकारी के अनुसार जम्मू-कश्मीर की तत्कालीन रियासत के किसी गाँव में उनका जन्म हुआ था। गाँव की ही पाठशाला में उन्हें शिक्षा मिली थी। किशोरावस्था में आते-आते उनके चित्त में एक अभिनव भाव का विकास होने लगा। उनकी अन्तरात्मा किसी एक ऐसी वस्तु को ढूँढ़ रही थी जो उन्हें अपने चारों ओर के वातावरण में नहीं दिखाई दे रहा था। सांसारिक धन

एवं ऐश्वर्य उन्हें आकर्षित न कर सका। किसी अज्ञात वस्तु का आकर्षण उन्हें अधिकाधिक उन्मना बना रहा था। कहते हैं उनकी जन्मभूमि के समीप ही एक अति प्राचीन श्मशान भूमि थी। श्मशान भूमि के पास ही साधु-संन्यासी, योगी-तपस्वी आदि के निवास की भी कुछ व्यवस्था थी। पर्यटक साधु-संन्यासी बीच-बीच में वहाँ आकर ठहर जाते, विश्राम करते और धार्मिक गृहस्थों की सेवा स्वीकार करते थे। श्मशान भूमि होने के नाते गाँव के सामान्य जन का वहाँ आना-जाना कम ही था। किशोर बालक ने वहाँ जाना आरम्भ कर दिया। जन कोलाहल से दूर घण्टों एकान्त में बैठकर सांसारिक जीवन का परिणाम देखते जो वस्तुतः श्मशान यात्रा सदृश प्रतीत होने लगी। सब कुछ अनित्य, सभी दुःखमय दिखने लगा। आगन्तुक साधु-संन्यासियों के सम्पर्क और उनकी सेवा में पूरी तन्मयता से लगकर उन्हें इस बात का एहसास हो गया कि परमशान्ति के लिए सांसारिक जीवन का त्याग आवश्यक है। सांसारिक जीवन अब उनको असह्य हो गया। उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो पूर्व जन्म का कोई संस्कार अंकुरित होकर अन्तःकरण से उन्हें प्रेरणा दे रहा हो। वैराग्य की तीव्र भावना के कारण उनके चित्त में कोई संशय न रह गया कि संसार के सब प्रकार के सम्बन्धों को त्यागना ही होगा। पराशक्ति प्राप्त करने के लिए सारी शक्तियों को केन्द्रीभूत करना ही होगा। किन्तु समस्या थी योग्य पथ-प्रदर्शक की। उन्होंने श्मशान में साधु-सन्तों, योगियों से सुना था कि योग्य गुरु के बिना अध्यात्म मार्ग पर अग्रसर होना सम्भव नहीं। सिद्ध गुरु की सहायता बिना साधना में सिद्धि प्राप्त करना सम्भव नहीं। योग के प्रबल संस्कार वर्तमान रहने पर भी, शारीरिक एवं मानसिक रूप से योग साधना के सर्वथा अनुकूल होने पर भी, साधना को सुनियन्त्रित और सफल बनाने के लिए किसी सामर्थ्यवान गुरु का आश्रय लेना नितान्त आवश्यक है। ऐसा समर्थ गुरु कहाँ मिलेगा? वे उसको खोजने कहाँ जाएँ? इस योग मार्ग पर किसको अपना पथ-प्रदर्शक बनाएँ? इसका समाधान भी उन्हें गाँव के ही श्मशान भूमि के निकट मिल गया। नाथ-सम्प्रदाय के एक योगी जो भ्रमण के दौरान श्मशान भूमि के निकट साधु-संन्यासियों के निवास स्थान पर प्रायः विश्राम करता था, के योग और अध्यात्म सम्बन्धी ज्ञान को देखकर जिज्ञासु युवक ने उनसे ही दीक्षा की प्रार्थना की। परन्तु योगी ने जिज्ञासु युवक को एक योग्य गुरु के लिए गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर के तत्कालीन श्रीमहन्त बाबा गोपालनाथ जी का सान्निध्य प्राप्त करने को कहा। योग जिज्ञासु युवक भी अपने परम उद्देश्य एवं योग मार्ग की प्राप्ति हेतु बिना किसी को बताये ही निकल पड़ा। यथासमय गोरखपुर के गोरखनाथ मन्दिर में बाबा गोपालनाथ जी के सम्मुख उपस्थित होकर उन्हें गुरु के रूप में वरण किया। बाबा गोपालनाथ जी ने तरुण योगार्थी को योग दीक्षा देकर उनके स्वभाव के अनुसार उनका नामकरण योगी गम्भीरनाथ के रूप में किया। नाथ-सम्प्रदाय में दीक्षा का द्वितीय चरण कर्णवेध है। गुरु शिष्य के दोनों कानों में दो बड़े-बड़े छिद्र करके उसमें दो कुण्डल डाल देता है। ये कुण्डल सामान्यतः पत्थर अथवा गैंडे के सींग अथवा हाथी दाँत के बने होते हैं। ये कुण्डल शिव के माने जाते हैं और इन्हें 'मुद्रा' तथा 'दर्शन' भी कहते हैं। इसीलिए नाथ योगियों

को 'दर्शनी योगी' भी कहा जाता है। इस दीक्षा के हो जाने पर साम्प्रदायिक विधान से योगार्थी का पूर्ण त्याग या संन्यास हो जाता है। बाबा गोपालनाथ जी ने योगी गम्भीरनाथ के कर्णवेध संस्कार के लिए देवीपाटन के तत्कालीन महन्त बाबा शिवनाथ जी को नियुक्त किया। दीक्षा पूर्ण होने पर योगी गम्भीरनाथ गोरखनाथ मन्दिर में गुरु सेवा, देव सेवा और आश्रम सेवा में निमग्न हो गये। कुछ कालखण्ड तक सेवाव्रत लेने के उपरान्त गुरु की स्नेहपूर्ण अनुमति और आशीर्वाद प्राप्त करके एक निष्किंचन जीवन यापन के लिए एवं साधना में सिद्धि प्राप्त करने के लिए निकल पड़े। उन्होंने आश्रम का त्याग किया। गुरु के स्नेहासिक्त सान्निध्य से दूर चले। वे इस बात को निश्चित रूप से जानते थे कि उनकी लक्ष्यसिद्धि के लिए जो कुछ आवश्यक होगा उसकी समुचित व्यवस्था करुणामय भगवान् ही करेंगे। केवल गुरूपदिष्ट साधन मार्ग पर अपनी अभीष्ट सिद्धि की ओर अविराम अग्रसर होने के लिए ही उनको अपने पुरुषार्थ का प्रयोग करना है, इसके अतिरिक्त दूसरी किसी दिशा में दृष्टि डालना सर्वथा अनावश्यक है। तीर्थाटन एवं साधना के इस क्रम में वे काशी पहुँचे। काशी विश्वनाथ धाम के प्रति उनके मन में असीम श्रद्धा थी। काशी और गंगा के माहात्म्य में योगी गम्भीरनाथ का अगाध विश्वास था। वे काशी को तीर्थों का राजा कहते थे। काशी में तीन वर्ष तक अविराम साधना के द्वारा अध्यात्म के एक असामान्य उन्नत स्तर पर अविरोहण किया। साधक के जीवन में जब आध्यात्मिक ज्ञान और शक्ति का विकास होता है, तब जनसामान्य के बीच रहकर उसे छिपाना बड़ा ही कठिन होता है। यह साधना मार्ग पर प्रथम विघ्न है। योगी गम्भीरनाथ के प्रति जनसामान्य का आकर्षण साधना के मार्ग में बाधा देखकर उन्होंने काशीधाम का परित्याग करके प्रयागराज की ओर प्रस्थान किया। त्रिवेणी संगम (गंगा, यमुना और सरस्वती के पुण्य मिलन क्षेत्र) में स्नान किया। जनसाधारण की कौतुहली दृष्टि और बाह्य जगत् के कोलाहल से बचने तथा साधना की गहराई में उतरने के लिए उन्हें एक अनुकूल स्थान की आवश्यकता महसूस हुई। दैवयोग से वह स्थान उन्हें जान्ही तट पर एक निर्जन गुफा के रूप में मिला। तीन वर्ष तक उन्होंने यहाँ साधना की और योग की उच्च भूमि पर आरोहण किया। प्रयागराज से नाना स्थानों में घूमते हुए वे नर्मदा तट पर पहुँचे। नर्मदा भारत की सनातन संस्कृति की सात पवित्र नदियों में एक है। इस नदी की परिक्रमा का विशेष महत्त्व है। नर्मदा के उद्गम स्थल पर अमरकण्टक में कुछ समय रुकने के उपरान्त उन्होंने नर्मदा नदी की परिक्रमा और नदी तट पर स्थित तीर्थों के दर्शन का संकल्प लेकर तीर्थाटन प्रारम्भ किया और चार वर्ष नर्मदा परिक्रमा में उन्होंने व्यतीत किया। उन्होंने भारतवर्ष के उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम सभी प्रान्तों के प्रसिद्ध तीर्थों और तपोभूमि का दर्शन किया। उस समय साधन नहीं थे। प्रायः यात्रा पैदल ही करते थे। वे सर्वदा यात्रा ही नहीं करते थे, साधना के लिए उपयुक्त स्थान मिलने पर एक मास, कहीं दो मास, कहीं चार मास, कहीं छः मास तक रह जाते थे और साधना में डूब जाते थे। सम्पूर्ण भारत के प्रमुख धार्मिक तीर्थों के दर्शन के उपरान्त उन्हें साधना की चरमसिद्धि के लिए एक ऐसे स्थल की तलाश थी जहाँ दीर्घकाल

तक वह अपनी अभीष्ट साधना से सिद्धि प्राप्त कर सकें। इस दौरान वे अपने गुरुधाम गोरखनाथ मन्दिर में दर्शनार्थ आये। कुछ माह यहाँ रुकने के उपरान्त उन्होंने अपनी आध्यात्मिक यात्रा पुनः प्रारम्भ की और 'गया' पहुँचे। 'गया' हिन्दुओं का एक प्रधान तीर्थभूमि है। यहाँ गयासुर के मस्तक पर स्थित विष्णुपादपद्म पर पिण्डदान करना एक प्रधान पारलौकिक कर्म है। हिन्दू मानस की यह मान्यता है कि 'गया' में पिण्डदान करने से मृत व्यक्ति की जीवात्मा प्रेतयोनि से उद्धार प्राप्त करती है और यदि किसी पापकर्म के फलस्वरूप नीच योनि में जन्म पा गया हो तो शीघ्र ही उससे मुक्ति मिल जाती है। बाबा गम्भीरनाथ जी भी इस मान्यता पर विश्वास व्यक्त करते थे। 'गया' प्राचीनकाल से ही अध्यात्म की भूमि रही है। महात्मा बुद्ध ने यहीं सिद्धि प्राप्त कर ज्ञान प्राप्त किया था। साधना की चरमसिद्धि के लिए योगी गम्भीरनाथ जी ने भी 'गया' को चुना। उन्होंने इसके लिए 'गया' के समीपवर्ती ब्रह्मयोनि पर्वत की चोटी पर कपिलधारा को चुना। उस समय यह क्षेत्र पूर्ण निर्जन था। काफी समय तक उन्होंने खुले आकाश के नीचे ऐकान्तिक साधना की। कभी-कभी ब्रह्मयोनि आदि ऊँचे पर्वतों पर जाकर लम्बी समाधि में निमग्न हो जाते थे। कुछ समय बाद योगिराज के ही एक शिष्य ने उनकी साधना के लिए कपिलधारा में एक योगगुफा का निर्माण किया। इस गुफा में योगिराज ने १२ वर्षों तक ऐकान्तिक साधना की। इस अविराम साधना से बाबा गम्भीरनाथ सिद्धि की चरम अवस्था में पहुँच गये, उन्हें सम्यक् नाथत्व की प्राप्ति हो गयी। तुरीयातीत अवधूत अवस्था उन्हें प्राप्त हो गयी। तुरीयातीत अवधूत योगी के लिए इस अवस्था में कुछ भी अलभ्य नहीं रह जाता है।

इधर गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर में महन्त बाबा गोपालनाथ जी सन् १८८० में ब्रह्मलीन हो गये। उनके प्रधानशिष्य एवं योगिराज बाबा गम्भीरनाथ के ज्येष्ठ गुरुभ्राता बाबा बलभद्रनाथ मन्दिर के श्रीमहन्त हुए। ९ वर्षों तक इस भार का वहन करके सन् १८८९ ई. में ब्रह्मलीन हो गये। उनके उपरान्त उनके शिष्य बाबा दिलवरनाथ ने उनका स्थान ग्रहण किया। वे सन् १८८९ से सन् १८९६ ई. सात वर्षों तक इस पद पर रहे। सन् १८९६ ई. में ब्रह्मलीन हो गये। बाबा दिलवरनाथ के अकस्मात् शरीर शान्त होने पर उनके गुरुभाई बाबा सुन्दरनाथ मन्दिर के श्रीमहन्त बने। मन्दिर की मर्यादा को बनाये रखने में सर्वथा योग्य न होने के कारण नाथयोगियों, स्थानीय भक्तों के आग्रह पर योगिराज बाबा गम्भीरनाथ सन् १९०१ में गोरखपुर आये। इच्छा न रहते हुए भी उन्होंने मन्दिर की व्यवस्था में अपना योगदान देना प्रारम्भ किया। यहाँ की व्यवस्था सुचारु ढंग से संचालित करने के उपरान्त वे वापस 'गया' चले गये। यदा-कदा गोरखपुर आकर व्यवस्था का निरीक्षण करने लगे। उनकी अनुपस्थिति में जब व्यवस्था पुनः विच्छृंखल होने लगी तो विवश होकर अपने गुरुधाम में सन् १९०६ ई. में आकर स्थायी रूप से रहने लगे। उनका गोरखपुर आगमन उसी प्रकार था जैसे बुद्धदेव ज्ञान प्राप्ति के उपरान्त अपने आपको लोक-कल्याण के लिए समर्पित कर दिये थे। विकास की सर्वोच्च स्थिति में पहुँची अन्तरात्मा के लिए स्वर्ग और मुक्ति की तनिक भी कामना नहीं रहती

है। तब उनकी एक ही कामना रहती है कि 'मैं लोकहित के लिए बार-बार जन्म लूँगा और बार बार मरूँगा। जब तक एक भी प्राणी बन्धन में बँधा है तब तक व्यक्तिगत मुक्ति को कदापि स्वीकार नहीं करूँगा।' ऐसे महासिद्धों, महाज्ञानियों ने परमार्थ में मिलने वाले आत्म सन्तोष को लोक-परलोक के समस्त सुखों से बढ़कर बताया। योगिराज बाबा गम्भीरनाथ ने सन् १९०६ ई. से सन् १९१७ ई. तक का अपना अधिकांश समय गोरखपुर को केन्द्र में रखकर लोक-कल्याण के लिए समर्पित किया। योगिराज बाबा गम्भीरनाथ अत्यन्त ही मृदुभाषी एवं अल्पभाषी थे। जो भी उनके सान्निध्य में आया उसका कल्याण हो गया। उनके प्रधान शिष्य बाबा ब्रह्मनाथ जी बाद में सन् १९३२ ई. से सन् १९३५ ई. तक गोरखनाथ मन्दिर के श्रीमहन्त पद पर विराजमान रहे। अनेक योग जिज्ञासुओं को उन्होंने योग दीक्षा देकर कृतार्थ किया। बीसवीं शताब्दी के प्रख्यात साधक योगी शान्तिनाथ और योगी निवृत्तिनाथ उनसे योग दीक्षा लिये थे। प्रख्यात दार्शनिक अक्षय कुमार बनर्जी उनके गृहस्थ भक्तों में थे। ऐसे हजारों भक्तों का उन्होंने उद्धार किया। जहाँ भारतीय साधना के लिए समर्पित योगियों को दीक्षित करके आत्मकल्याण एवं लोक-कल्याण के मार्ग पर उन्होंने अग्रसर किया वहीं बीसवीं शताब्दी के अत्यन्त ही लोकसंग्रही राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत दो प्रमुख सन्तों को योगिराज बाबा गम्भीरनाथ का पावन सान्निध्य प्राप्त हुआ था। इनमें से प्रथम महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज थे जो योगिराज बाबा गम्भीरनाथ के प्रधान शिष्य बाबा ब्रह्मनाथ से योग दीक्षा प्राप्त किये थे और सन् १९३५ ई. में गोरखनाथ मन्दिर के श्रीमहन्त हुए। नाथ सम्प्रदाय को संगठित करने के साथ ही वे हिन्दू धर्म-संस्कृति के ध्वजवाहक, हिन्दुत्वनिष्ठ, राष्ट्रवादी राजनीति के पुरोधा, पूर्वी उत्तर प्रदेश की प्रतिष्ठित शैक्षणिक संस्था महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद् के संस्थापक हुए तो दूसरे भारत सेवाश्रम संघ के संस्थापक स्वामी प्रणवानन्द जी थे जिन्होंने सन् १९१३ ई. में योगिराज बाबा गम्भीरनाथ जी से ही योगदीक्षा प्राप्त की। देश के विभिन्न भागों में भारत सेवाश्रम संघ तथा हिन्दू मिलन मन्दिर की स्थापना करके वृहद् हिन्दू समाज की एकता एवं सुरक्षा का मार्ग प्रशस्त किया। योगिराज बाबा गम्भीरनाथ की सिद्धि एवं चमत्कार के अनेक दृष्यन्त हैं। उनका उल्लेख स्थानाभाव के कारण सम्भव नहीं। गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर तथा भारत सेवाश्रम संघ की देशव्यापी चल रही लोक कल्याणकारी योजनाएँ योगिराज बाबा गम्भीरनाथ की ही सिद्धि एवं आशीर्वाद का प्रभाव है। महात्मा विजय कृष्ण गोस्वामी ने उनके सम्बन्ध में कहा था-**"योगिराज बाबा गम्भीरनाथ जी हिमालय की तलहटी में एकमात्र ऐसे सिद्ध हैं जिनमें अपनी साधना से सृष्टि-स्थिति-प्रलय की क्षमता है।"**

भारतीय राष्ट्रीयता एवं महन्त दिग्विजयनाथ

यू.पी. सिंह*

"हिन्दू राष्ट्रीयता एवं उसके वैज्ञानिक सांस्कृतिक आधार के प्रति हमारी अटूट निष्ठा है। क्योंकि हमारा कांग्रेस की तरह यह विश्वास नहीं है कि भारत की राष्ट्रीयता एक रासायनिक घोल है, जो हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के सम्मिश्रण से पानी के समान स्वतः उत्पन्न हो जाता है। हमारा विश्वास है कि न तो ऐसी खिचड़ी राष्ट्रीयता ने भारत अथवा संसार के अन्य किसी देश में जन्म लिया और न भविष्य में ही इसके जन्म की कोई सम्भावना है। यह एक मनोवैज्ञानिक असम्भाविता है।"

–महन्त दिग्विजयनाथ

महन्त दिग्विजयनाथ गोरक्षपीठ (गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश) के पीठाधीश्वर थे। श्रावण पूर्णिमा के दिन १५ अगस्त १९३५ ईस्वी को वे गोरक्षपीठाधीश्वर पद पर अभिषिक्त हुए। सेण्ट एण्ड्रयूज इण्टर कॉलेज में कक्षा ११ में पढ़ते समय सन् १९२० ई. में राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रभावित होकर उन्होंने विद्यालय का परित्याग कर दिया और वे सक्रिय रूप से देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन में सम्मिलित हो गये। इसी समय महात्मा गाँधी के गोरखपुर में आगमन और बाले के मैदान में उनकी विशाल जनसभा के आयोजन को निर्विघ्न रूप से सफल बनाने हेतु 'वालेण्टियर कोर' का गठन करने वाले तथा महात्मा गाँधी के आह्वान पर अपनी पढ़ाई छोड़कर असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित होकर 'चौरीचौरा काण्ड' के प्रमुख नेतृत्वकर्ता नान्हू सिंह (महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज का तत्कालीन नाम) महात्मा गाँधी के मुस्लिम तुष्टीकरण एवं समझौतावादी नीति से दुःखी होकर हिन्दू महासभा के सक्रिय सदस्य बन गये। यह विधि का विधान था अथवा अपने सिद्धान्तों पर अटल रहने एवं भारतीय राष्ट्रीयता के प्रति अटूट श्रद्धा रखने का परिणाम था कि महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन में फाँसी की सजा से (चौरीचौरा काण्ड में) शिनाख्त न हो पाने के कारण मुक्त हुए महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज महात्मा गाँधी की ही हत्या के आरोप में बन्दी बनाये गये। यद्यपि कि वे पुनः निर्दोष सिद्ध हुए। वस्तुतः महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज बचपन से ही क्रान्तिकारी थे। उनमें 'युगपुरुष' के लक्षण प्रारम्भ से ही विद्यमान थे। वे एक धर्माचार्य होने के साथ-साथ एक प्रखर राष्ट्रभक्त सेनानी, समाजसेवी एवं

*पूर्व कुलपति, वी.एस. सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

अध्यात्म और दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान् थे। हिन्दू धर्म-दर्शन के आधिकारिक ज्ञाता तो थे ही, वे एक मौलिक चिन्तक एवं दार्शनिक भी थे। १९६७ से १९६९ तक भारतीय संसद भी उनकी क्रान्तिकारी गर्जना, वाक्पटुता एवं उनके मौलिक विचारों का गवाह बनी।

महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज भारतीय राष्ट्रीयता पर अपनी स्पष्ट राय रखते थे। अनेक स्थानों पर, हिन्दू महासभा के सम्मेलनों, अधिवेशनों में उन्होंने भारतीय राष्ट्रीयता पर अपनी बेबाक टिप्पणी की। भारतीय राष्ट्रीयता पर उनके मौलिक विचार उनके आलेखों एवं भाषणों में देखे-सुने जाते रहे। महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज भारतीय राष्ट्रीयता एवं हिन्दू राष्ट्रीयता को एक दूसरे का पर्याय मानते थे। वे कहते थे कि 'हिन्दुत्व' ही भारत की राष्ट्रीयता है। हिन्दू किसी धार्मिक पन्थ का नाम नहीं है, अपितु देश की राष्ट्रीयता का नाम है। हिन्दू नाम न तो साम्प्रदायिक है और न राष्ट्रविरोधी ही। यह युगों से इस देश की राष्ट्रीयता का बोधक बना हुआ है। यह नाम राष्ट्रीयता का पर्याय इसलिए है कि हिन्दुत्व की थाती राष्ट्रीय एकता की सर्वाधिक सुगठित शक्ति रही है, जिसने विभिन्न जातियों, विरोधी जलवायु, अनेक भाषाओं और धार्मिक विश्वासों की विभिन्नताओं के बीच भारत को एक राष्ट्र बनाया है। हम देखते हैं कि आज भूतल से सभी पुरातन सभ्यताएँ मिट चुकी हैं और संसार की महानतम शक्तियों के निरन्तर आघातों के पश्चात भी भारत विविध जलवायु, जातियों, भाषाओं और धार्मिक विश्वासों के होने पर भी एक राष्ट्र के रूप में जीवित है। इसका कारण 'हिन्दुत्व' की वह शक्ति है जो हूण, शक, सीथियन आदि विभिन्न कबीलों को एकसूत्र में पिरो सकने में समर्थ है। बौद्ध, जैन, सिख आदि अनेक भारत-भूमि में उपजे धार्मिक विश्वास भी हिन्दू राष्ट्रीयता की शक्तिशाली धारा में ही खप गये। हिन्दुत्व एक ऐसा एकीभूत तत्त्व रहा है, जिसने इन सबको एक राष्ट्र के रूप में मिला दिया है। बहुत से विचारक हिन्दू शब्द के अर्थ से घबड़ा जाते हैं। वे यह समझने में असफल रहते हैं कि हिन्दू उस ऐतिहासिक प्रक्रिया की संज्ञा है, जिसने सभी धर्मों, विश्वासों और सामाजिक प्रभावों को एक राष्ट्र के रूप में प्रतिस्थापित किया है।

महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज हिन्दू राष्ट्रीयता की अपनी अवधारणा को स्पष्ट करते हुए 'राष्ट्र' निर्माण प्रक्रिया के सन्दर्भ में लिखते हैं कि- राष्ट्रीयता का निर्माण विदेशी राष्ट्रों की संस्कृति, सभ्यता, मनोभावना एवं पृथक-पृथक महत्त्वाकांक्षाओं के सम्मिश्रण से कभी नहीं होता। दीर्घकाल में विकसित किसी भी भूखण्ड की एक संस्कृति, एक जीवन-मूल्य से उस भूखण्ड के राष्ट्र का निर्माण निर्माण होता है। अर्थात् किसी भी भूखण्ड में निवास करने वाले उस समूह को ही राष्ट्र कहा जाता है- जो उस भूखण्ड की संस्कृति, सभ्यता, परम्परा, इतिहास आदि को मानता हुआ परस्पर एकता की अनुभूति रखता हो।

दिग्विजयनाथ जी महाराज कहा करते थे कि भारतीय राष्ट्रीयता का एकमात्र परिचायक

हिन्दुत्व ही है। भाषा, जाति, प्रदेश और अन्य विघटनकारी प्रवृत्तियों की बढ़ती दुश्चिन्ता का एकमात्र निदान हिन्दुत्व ही है। भारत के विभिन्न तीर्थस्थान, प्राचीन सामाजिक मान्यताएँ, सामान्य आचरण संहिता, जीवन-मूल्य, धार्मिक ग्रन्थों में प्रतिष्ठापित अनुष्ठान आदि ने हमें एक राष्ट्र के रूप में एकत्र होने में महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत की है। हम जानते हैं कि दक्षिण भारत के महान् आचार्यों का सम्मान दक्षिण भारत की अपेक्षा उत्तरी भारत में कहीं अधिक हुआ और भारत के उत्तराखण्ड में प्रवाहित होने वाली गंगा को समूचे देश में दक्षिण, पूर्व और पश्चिम की किसी भी नदी की अपेक्षा अधिक पवित्र और पूज्य समझा जाता है। श्रीराम और श्रीकृष्ण जैसे हमारे राष्ट्र नायकों और उनके जन्म स्थानों को सम्पूर्ण देश में श्रद्धा का केन्द्र माना जाता है। यह केवल हिन्दुत्व के ही व्यापक प्रभाव के कारण सम्भव हुआ है। हमें ज्ञात हैं कि भारत की इसी राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रीय एकता के लिए शंकराचार्य ने भारत के चारों कोनों में चार धार्मिक मठों की स्थापना की थी। 'हिन्दू' की सावरकर द्वारा दी गयी निम्न परिभाषा को महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज भी स्वीकार करते थे-

आसिन्धोसिन्धुपर्यन्ता यस्य भारत भूमिका।

पितृभूः पुण्यभूश्चैव सैव हिन्दुरिति स्मृतः।।

युगपुरुष दिग्विजयनाथ जी महाराज उपर्युक्त परिभाषा को उद्धृत करते हुए कहा करते थे- कितनी असाम्प्रदायिक परिभाषा है! यह किसी विशेष सम्प्रदाय या आश्रम विशेष की ओर इंगित करती प्रतीत नहीं होती। न तो इसके अनुसार शिवलिंग की पूजा करने वाला हिन्दू है, न गायत्री मन्त्र जपने वाला ही। हिन्दू वह है जो इस समग्र भारत भूमि को अपनी पितृभूमि और पुण्यभूमि मानता है। वस्तुतः हिन्दुत्व एक सागर है जिसमें विभिन्न सम्प्रदायरूपी नदियाँ आकर विलीन हो जाती हैं। विलीन होने पर सागरमय हो जाती हैं। वे विभिन्न तरंगों के रूप में लहराती हुई एकमात्र समुद्र की ही शोभा बढ़ाती हैं। उसकी महत्ता की घोषणा करती हैं। अतएव हिन्दू एक राष्ट्र का नाम है, न कि किसी सम्प्रदाय का। हिन्दुत्व एक राष्ट्रीयता का पर्याय शब्द है, जिसने समस्त भारतीय समाज को एक सूत्र में आबद्ध किया। 'हिन्दुत्व' भारत की राष्ट्रीयता है, ऐसी राष्ट्रीयता जिसका भारत के अतिरिक्त अन्यत्र कोई अस्तित्व नहीं। स्मरण रखिये- कितने सम्प्रदाय नष्ट हो गये, नष्ट होंगे और हो रहे हैं। पर हिन्दुत्व सम्प्रदाय नहीं है, वह इन सबसे ऊपर है और अमर है। वह न कभी नष्ट हुआ है, न होने वाला है और न हो ही रहा है। यदि किसी दिन भारत की इस राष्ट्रीयता (हिन्दुत्व) के समाप्त होने की बात सोची जा सकती है तो उसी के साथ यह भी सोच लेना चाहिए कि उस दिन भारत ही समाप्त हो जायेगा।

हिन्दुत्व साधना के शिखर सन्त महन्त अवेद्यनाथ

स्वामी चिन्मयानन्द सरस्वती*

महन्तजी का नाम तो मैं अपने बचपन से सुनता आ रहा था परन्तु उनके नाम का अर्थ बहुत दिनों के बाद जब उनके सम्पर्क में आया तब कहीं समझ में आया। नाम का अर्थ तो समझ में आ गया लेकिन उनके विराट् और गम्भीर व्यक्तित्व की गहराइयों की थाह उनके जीवन के अन्त तक नहीं ले सका। वे हम सब के लिए अवेद्य (न जान सकने योग्य) ही थे। जितना उनको जानने की कोशिश करता था उतना ही उनकी गम्भीरता के समुद्र में डूबता जाता था। वे बहुत विराट् थे तो साथ ही बहुत निकट भी। उनके जीवन के लगभग हर आयाम से जुड़ा रहा हूँ।

मेरा जन्म गोण्डा (उ.प्र.) के एक गाँव में हुआ था, जो गोरखपुर के करीब ही है। हमारे गाँव के आसपास गाँव के साधारण ग्रामीण जनों से उनके अथवा पूज्य महन्त दिग्विजयनाथ, के बारे में तरह-तरह की कथाएँ लगभग उसी तरह सुना करता था, जैसे महाभारत और रामायण की कथाएँ सुनता था। उन कहानियों में एक अवतारी पुरुष अथवा देवताओं और दिव्यात्माओं के बीच के कोई दिव्य पुरुष लगते थे। मानवीय तो कतई नहीं लगते थे। मैं जिस परिवार में पैदा हुआ था यद्यपि वे लोग वैष्णव थे लेकिन उनकी कुल देवी भगवती पाटेश्वरी हुआ करती थीं, जिन्हें लोग अपनी भाषा में देवी पाटन के नाम से जानते थे। भारत-नेपाल सीमा के निकट तुलसीपुर कस्बे, जो अब बलरामपुर जिले में आता है, में बने देवी के इस मंदिर को बहुत मान्यता थी। हमारे परिवार के हर बालक का मुण्डन प्रायः इसी मंदिर के प्रांगण में होता था। मेरा भी मुण्डन इसी मंदिर के आंगन में हुआ था। पहली बार संभवतः वहीं मुझे महन्त जी के दर्शन हुए। गोण्डा नगर में भी मठ की सम्पत्ति थी, वहाँ एक शिव मंदिर जिसका नाम दुःखहरणनाथ था, काफी प्रसिद्ध था। जब मैं माध्यमिक कक्षाओं की पढ़ाई हेतु गोण्डा आया और मेरा प्रवेश टी.आई.सी. में हुआ तो रहने का प्रबन्ध उस मंदिर के ही निकट पटेलनगर में एक वकील के यहाँ हुआ। अब मैं प्रायः दुःखहरणनाथ मंदिर जाने लगा। वहीं से गोरखनाथ मठ के सम्बन्ध में जिन जानकारियों से सरोकार शुरू हुआ वह अब भी जारी है।

कनफड़वा सम्प्रदाय के प्रति जन साधारण में व्याप्त आस्था बड़ी रहस्यपूर्ण होती थी, ये लोग योगी होते हैं इनके पास चमत्कारी सिद्धियाँ होती हैं, ये उड़कर कहीं से कहीं पहुँच जाते हैं और इसी तरह की कई अनेक बातें। यह रहस्य तब और गहरा जाता जब गाँव गाँव घूमने वाले जोगी

*पूर्व गृह राज्यमंत्री, भारत सरकार; मुमुक्षु आश्रम, शाहजहाँपुर-२४२ २२६ (उत्तर प्रदेश)

बाबा अपनी सारंगी पर गाकर राजा भरथरी और बाबा गोरखनाथ की अलौकिक कथाएँ सुनाते। महन्तजी हम सबको गुरु गोरखनाथ ही लगते, उसी तरह गोरा चिट्टा उन्नत ललाट का तेजस्वी व्यक्तित्व भगवे आवरण में अनेक दिव्यताओं का पुंज ही लगता था। साधु-संत की श्रेणी से कहीं बहुत ऊपर नैसर्गिक आभा की एक अलग छवि इनमें दिखती थी। अयोध्या के जटाजूटधारी बाबाओं से ये सर्वथा भिन्न थे। रहन-सहन का स्तर इतना वैभव सम्पन्न कि राजशाही ठाट भी इसके सामने ठहर न सके। उस समय मैं सोच भी नहीं सकता था कि बाबा का इतना निकट सान्निध्य कभी प्राप्त हो सकेगा। हिन्दू महासभा से चुनाव लड़कर संसद और विधान सभा के भारतीय अध्यात्म और हिन्दुत्व का प्रतिनिधित्व करने का दमखम उस समय के किसी साधु-संत के लिए असंभव सा प्रतीत होता था, परंतु महन्त जी ने वह कर दिखाया और अपने साथ और बाद के साधुओं के प्रेरणास्रोत बने।

एक लम्बे समय तक महन्तजी हमारे लिये एक रहस्य ही रहे और वह लम्बा अन्तराल तब समाप्त हुआ, जब मैं राम जन्म भूमि आन्दोलन से जुड़ा और अयोध्या के सरयू तट पर राम जन्म भूमि मुक्ति का संकल्प लेकर लखनऊ तक की पदयात्रा में शामिल हुआ। परमहंस रामचन्द्रदास और महन्त अवेद्यनाथ के नेतृत्व में हमारे जैसे अनेक युवक तथा साधु-संत उस पद यात्रा में थे। लेकिन जाने क्यों, न तो महन्तजी मेरी नजर से हटते थे और न महन्तजी की नजर से मैं ही दूर हो पाता था। मैं तो उनको पहले से ही जानता था लेकिन वह भी मुझे जानते हैं, यह मैं उस समय ही समझ सका। एक अज्ञात आमंत्रण और कुछ कर गुजरने की प्रेरणा उनकी आँखों में मुझे महसूस होती थी। उनका मेरे प्रति सम्बोधन भी अत्यन्त आत्मीय हुआ करता था, जैसे वे अपने किसी बच्चे को बुला रहे हों। यात्रा में भोजन विश्राम आदि की चिन्ता भी लगभग वैसी ही होती थी। संभवतः उस समय तक स्वयं में जिन संभावनाओं का मुझे दूर-दूर तक अनुमान भी नहीं था, उनकी पारखी नजर ने उन्हें भाँप लिया था।

उस यात्रा के लखनऊ पहुँचने पर जब तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री नारायण दत्त तिवारी को ज्ञापन देने का अवसर आया तो मैं यह जानकर हतप्रभ रह गया कि मिलने वालों में मेरा भी नाम है। मुझ जैसे साधारण हैसियत के साधु पर यह महंतजी की कृपा थी। तब से लेकर अन्त तक हर संघर्ष और अभियान में महन्तजी ने मुझे अपने साथ रखा। यहाँ तक कि लोकसभा भी मुझे वहीं ले गये और वहाँ भी उनका वही आत्मीय रिश्ता बना रहा। साथ-साथ संसद जाना, अपने साथ बिठाकर भोजन कराना, प्रातः भ्रमण के लिए साथ जाना। कहीं भी जाना है तो साथ जाना, यहाँ तक कि रामजन्म भूमि आन्दोलन में जेल गये तो वहाँ भी साथ ही रहे। जब पहली बार दिल्ली से गोरखपुर आते हुए वैशाली एक्सप्रेस से कानपुर में तत्कालीन मुलायम सरकार ने उन्हें गिरफ्तार किया, तो मैं भी उनके साथ ही गिरफ्तार हुआ। हम दोनों को गिरफ्तारी के बाद जिम कार्बेट स्थित वन विभाग के एक गेस्ट हाउस में रखा गया, उस समय के सरसंघचालक प्रो. राजेन्द्र सिंहजी 'रज्जू

भैया' को भी लखनऊ से गिरफ्तार कर वहीं लाया गया था। शायद सरकार की नजर में हम तीनों सबसे खतरनाक थे इसीलिये हमें जंगली जानवरों के बीच रखा गया। लेकिन मेरे जीवन के वे बहुत कीमती क्षण थे। हम लगभग १५ दिन वहाँ एक साथ रहे और धार्मिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विषयों पर गंभीर चर्चा तथा विचार मंथन होता रहा। मेरे और महन्तजी का रहन-सहन तो एक सा था ही, रज्जू भैया भी हम लोगों से कुछ अलग नहीं थे। उनकी भी दैनिक चर्या हम लोगों की तरह ब्रह्म मुहूर्त में शुरू होकर रात तक चलती थी। शासन की ओर से यद्यपि सभी प्रबन्ध थे, लेकिन भोजन महन्तजी का रसोइया, जिसे हम लोगों के साथ रहने की अनुमति थी, ही बनाता था। अपने-अपने कपड़े भी हम लोग स्वयं धोते थे। उन दोनों की तुलना में मैं यद्यपि उम्र में बहुत छोटा था, फिर भी ये दोनों महापुरुष मुझसे कोई सेवा नहीं लेते थे, बल्कि हमेशा अपने बराबर का व्यवहार करते थे, जिससे मुझे यद्यपि बड़ा संकोच होता था लेकिन उनकी आत्मीयता के कारण धीरे-धीरे मेरा संकोच भी दूर होता गया। जीवन में पहली बार हम लोग इतने दिन एक साथ रहे। कारावास की उस अवधि से जुड़े कई प्रेरक प्रसंग भी हैं, लेकिन उनकी चर्चा करके लेख का विस्तार करना उचित नहीं है।

सामाजिक समरसता में महन्तजी की रुचि सर्वविदित है, वे जहाँ भी होते, सामाजिक समरसता के पक्ष में कुछ न कुछ सोचते, बोलते और करते रहते थे। उनकी दृष्टि में सामाजिक समरसता राम मंदिर से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण थी। इसीलिये वे कहा करते थे कि राम को रावण पर विजय प्राप्त ही तब हुई जब उन्होंने समाज के सभी वर्गों के भेद को दूर कर अपने साथ जोड़ा। शबरी, निषाद, भील, वानर, भालू सभी राम के साथ थे, इसीलिये वे सफल हुए। हमें भी रामजन्म भूमि पर मंदिर निर्माण में तभी सफलता मिलेगी, जब हिन्दू समाज एक होगा। अपने प्रवचनों में वे हमेशा धर्मान्तरण के भयावह परिणामों की चर्चा किया करते थे, किस तरह काला पहाड़ हिन्दू से मुसलमान बनने के बाद हिन्दुओं के लिये खूँखार और खतरनाक हो गया था, इसका उल्लेख विस्तार से करते थे।

पेशावर मठ उडुवी में विश्व हिन्दू परिषद् के अधिवेशन के दौरान महन्तजी के साथ मैं भी वहाँ उपस्थित था, बात चल रही थी, सामाजिक समरसता की। महन्तजी का कहना था यदि हमें राम जन्म भूमि पर मंदिर निर्माण की यह लड़ाई जीतनी है तो दलित और पिछड़ों को विश्वास में लेना होगा, उनके मन से जातीय संकीर्णता को दूर करना होगा तथा हिन्दुत्व के स्वाभिमान से उनको जोड़ना होगा। जब कुछ धर्माचार्यों ने थोड़ी असहमति जतायी तो महन्तजी का क्षोभ देखने लायक था, वे बैठक छोड़कर उठ खड़े हुए, और तब तक बैठने को राजी नहीं हुए जब तक उन धर्माचार्यों ने अपनी बात वापस नहीं ले ली। काशी में डोम राजा के निमंत्रण को न केवल स्वीकार किया बल्कि देश के तमाम संतों के साथ उसके घर जाकर भोजन भी ग्रहण किया।

गोरक्षा के लिए वे केवल भाषण, सभा और सत्याग्रह तक सीमित नहीं रहे। वे चाहते तो थें

कि भारत सरकार सम्पूर्ण गोवंश के प्रति हिंसा पर रोक लगाये और इसके लिए अपेक्षित कानून बनाये, लेकिन इसके साथ ही वे आंदोलन पर पूरा जोर देते थे। आज जहाँ भी नाथपंथियों के आश्रम अथवा मठ हैं, प्रायः सभी स्थानों पर गौशालाएँ हैं। वे साधु-संतों को प्रायः गौशाला और विद्यालय चलाने को प्रेरणा देते रहे।

देश के प्रायः सभी दलों के नेता व्यक्तिगत रूप से उनका सम्मान करते थे और वह भी तमाम वैचारिक मतभेदों के बावजूद सबको आत्मीयता और सम्मान देने में विश्वास करते थे। १०वीं लोक सभा के दौरान राष्ट्रपति का चुनाव होना था। कांग्रेस ने पंडित शंकर दयाल शर्मा को अपना प्रत्याशी बनाया और भारतीय जनता पार्टी ने एक जनजाति के व्यक्ति को प्रत्याशी बनाया। पार्टी के निर्देशानुसार हम सबको उसी प्रत्याशी को समर्थन देना था लेकिन महन्तजी को जब यह पता चला कि वह गोमांस खाता है, अपना मत उसे देने की अपेक्षा मतदान में हिस्सा न लेना ठीक समझा। यह जानते हुए कि इस मतदान में ह्विप है और उसके पक्ष में मतदान न करने से सदस्यता जा सकती है, वे अपने निर्णय से नहीं डिगे। अपनी वैचारिक निष्ठा के प्रति वे समर्पित थे और अपने निर्णय से उन्होंने भाजपा नेतृत्व को अवगत भी करा दिया था। संसद की कार्यवाही वह कभी नहीं छोड़ते थे, लेकिन आन्दोलनात्मक कार्यक्रम में भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते थे।

परमहंस रामचन्द्रदास से उनकी गहरी मित्रता थी। परमहंसजी एक फक्कड़ साधु थे। उनको किसी विषय पर राजी कर पाना बड़ा कठिन होता था लेकिन महन्तजी का प्रभाव उन पर भी था। वह वही करते और कहते थे, जो महन्तजी चाहते थे। कांग्रेस तथा दूसरे दलों के नेता यदि राम जन्म भूमि के समर्थन अथवा विवाद को सुलझाने में आगे आये तो इसका बहुत कुछ श्रेय पूज्य महन्तजी को ही था।

मैं बदायूँ से जब पहली बार लोकसभा का चुनाव लड़ रहा था उस समय महन्तजी गोरखपुर से लड़ रहे थे, लेकिन अपने चुनाव की परवाह न करके वे मेरे क्षेत्र में आये और दो दिनों तक लगातार रहकर सभाओं को सम्बोधित किया। इतना ही नहीं चुनाव के लिये अपेक्षित संसाधनों को जुटाने में भी मदद करते रहे।

दृढ़प्रतिज्ञ, कठोर, परिश्रमी, सुदृढ़ एवं एक बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी महन्तजी की प्रशासनिक प्रतिभा भी विलक्षण थी। जब से वे गोरखपुर मठ के महन्त दिग्विजयनाथजी के कृपापात्र बने तब से लेकर अन्त तक मठ से जुड़ी सभी संस्थाओं की निरन्तर प्रगति का एक अद्भुत कीर्तिमान तो स्थापित ही किया, देश भर में फैले नाथपंथ की संस्थाओं और साधुओं को भी पुनर्गठित किया। वे योगी महासभा के अध्यक्ष भी रहे। उनकी प्रेरणा से देश में साधुओं की एक बड़ी सेना खड़ी थी जो सामाजिक, धार्मिक क्षेत्र में एक बड़ी ताकत है।

उन्होंने मठ को शिक्षा का एक सशक्त माध्यम बनाया। पूर्वी उत्तर प्रदेश के शैक्षिक इतिहास

में महन्तजी एक ज्योतिपुंज के रूप में खड़े रहे। वे एक आध्यात्मिक योद्धा थे और उनकी लोक विजय की यात्रा अजेय थी। अपने हर विरोध और विरोधी को धूल चटाने में समर्थ होते हुए भी वे अजातशत्रु थे। वे सबके थे और सब उनके। वे एक समर्थ गुरु के समर्थ शिष्य और समर्थ शिष्य के समर्थ गुरु भी थे।

महन्त जी अद्भुत प्रतिभा के अनूठे सन्त थे। जहाँ उनके जीवन में बच्चों जैसी सरलता थी, अपनों के प्रति आत्मीयता और प्यार था वहीं वह अपनी नीतियों, सिद्धान्तों और विरासत में मिली परम्पराओं के प्रति बड़े दृढ़ थे। सामाजिक समरसता और हिन्दुत्व उनकी आस्था के मुख्य विषय थे। एक बार कर्नाटक उड़पी में धर्म-संसद का आयोजन हुआ। सम्भवतः विश्व हिन्दू परिषद् का यह पहला धर्म-संसद था। पूज्य विश्वासतीर्थ और वीरेन्द्र हेगड़े के सहयोग से यह धर्म-संसद सभी आधुनिक संचार सुविधाओं से संवलित और व्यवस्थित था। व्याख्यानों के सभी भाषाओं में अनुवाद की तकनीकी व्यवस्था थी। बात दलितों और उपेक्षितों के साथ समरसता की चल रही थी, कुछ सन्तों की राय थी कि इन परिवारों में इनका विश्वास अर्जित करने के लिए सन्तों को जाना चाहिए और उनके साथ सहभोज आदि की व्यवस्था करनी चाहिए। सदन में उपिस्थत कई सन्त सहमत नहीं थे और उन्होंने जब इस प्रस्ताव का विरोध किया तो पहले तो महाराज ने समय और समाज की जरूरत बताते हुए सबको सहमत करने की कोशिश की लेकिन जब एक बड़े सन्त ने जिनका यहाँ नाम लेना मैं उचित नहीं मानता हूँ कुछ अनुचित शब्दों में प्रस्ताव का विरोध किया तो महाराज का तेवर देखने लायक था। वह एकदम उठ खड़े हुए और लगभग चीखते हुए मुझे कहा कि चल चिन्मयानन्द यह कायरों और मूर्खों की सभा है। यह लोग स्वार्थी और दुराग्रही हैं। यह देश और हिन्दू समाज का सर्वनाश चाहते हैं। सभा में सन्नाटा छा गया। सभी लोग सहम गये और यह प्रस्ताव बिना किसी विरोध के सर्वसम्मति से पारित हो गया।

ऐसे अनेक अवसर हमारी आँखों के सामने हैं जब महन्त जी की दृढ़ता ने अनेक विवादित मसलों में अपने हस्तक्षेप से प्रभावित किया। रामजन्मभूमि का मुख्य आन्दोलन उन्हें अपने पूज्य गुरुदेव से विरासत में मिला था जिसे उन्होंने अपने जीवन का ध्येय बना लिया था और उसे अंजाम तक पहुँचाकर ही इस संसार से गये। आज बाबरी ढाँचा नहीं है, रामजन्मभूमि वहीं है जहाँ रामलला विराजमान हैं, यह ऐतिहासिक निर्णय भी न्यायालय से आ चुका है। सर्वोच्च न्यायालय में लम्बित विवाद महत्त्वहीन है, आज उनकी कमी खल रही है। महन्त श्रीदिग्विजयनाथजी के योग्य उत्तराधिकार का जिस तरह आपने निर्वाह किया था, आज उसी तत्परता और लगन का परिचय आपके शिष्य गोरक्षपीठाधीश्वर योगी आदित्यनाथ भी दे रहे हैं। आज महन्त जी नहीं हैं लेकिन मुझे विश्वास है कि उनके योग्य शिष्य योगी आदित्यनाथ उनके संकल्पों को पूरा करने में कोई कसर नहीं छोड़ेंगे। गुरु गोरखनाथ की अजेय यात्रा हिन्दुत्व के जिस ध्वज को लेकर आगे बढ़ रही है वह विश्व विजयी होकर रहेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

भारतीय राष्ट्रवाद की विशिष्टताएं

शंकर शरण*

.....मैं कहता हूँ कि सनातन धर्म ही हमारे लिए राष्ट्रीयता है। यह हिन्दू जाति सनातन धर्म को लेकर ही पैदा हुई है, उसी को लेकर चलती है और उसी को लेकर पनपती है। जब सनातन धर्म की हानि होती है तब इस जाति की भी अवनति होती है और यदि सनातन धर्म का विनाश संभव होता तो सनातन धर्म के साथ-साथ इस जाति का विनाश हो जाता है। सनातन धर्म ही है राष्ट्रीयता। यही वह संदेश है जो मुझे आपको सुनाना है।

- श्री अरविंद, "उत्तरपाड़ा भाषण" (१९०९)

यही वह विचार है जिसने आज से सौ वर्ष पूर्व संपूर्ण भारत को झकझोर कर खड़ा कर दिया था। आज उन शब्दों का पुनः-पुनः स्मरण और मनन करना अत्यंत आवश्यक हो गया है। ध्यान रहे कि श्री अरविंद ने भारतीय राष्ट्रवाद का कोई नया सिद्धांत नहीं दिया था। अपितु उन्होंने इस देश के एक सनातन सत्य को नये युग में, नई शैली में व्यक्त भर किया था। यदि सौ वर्ष पूर्व संपूर्ण भारत में श्री अरविंद को एक स्वर में भारतीय राष्ट्रवाद का नायक और अग्रदूत[१] माना गया था, तो इसीलिए कि उन्होंने भारतीय समाज की आत्मा को पहचान कर सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय राजनीति का सूत्रपात किया था। इसीलिए वे संपूर्ण भारतवर्ष को जगाने में, उसका आत्मविश्वास पुनः लौटाने में सफल हुए थे।

आज से ठीक सौ वर्ष पहले के राष्ट्रीय वातावरण को आज स्मरण करना कई कारणों से प्रासंगिक हो गया है। जब हमारे महान लेखक और मनीषी बंकिमचंद्र ने वन्दे मातरम् लिखा था (१८७५ ई.) तब कम ही लोगों ने उस पर ध्यान दिया था। किंतु राष्ट्रीय जागृति के एक विशिष्ट क्षण में उसी गीत ने एक ही दिन में भारतीय जन-गण को देश-भक्ति के धर्म में दीक्षित कर दिया। क्यों? इस बिंदु पर विचार करें, तो श्री अरविंद की उक्ति का मर्म स्पष्ट होने लगेगा। जब १९०५ में लॉर्ड कर्जन द्वारा बंगाल के विभाजन के बाद उठे प्रतिरोध के साथ स्वदेशी आंदोलन उत्पन्न हुआ, तब अकस्मात यही गीत पूरे देश को पुनर्जीवन देने और एकता के सूत्र में बाँधने वाला मंत्र बन गया। शताब्दियों बाद पहली बार इसी गीत ने संपूर्ण देश को एक साथ उद्वेलित करके जगाया

*प्रोफेसर, समाज विज्ञान एवं मानविकी शिक्षण विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली, ११००१६

और खड़ा किया। वस्तुतः १९०५-१० के बीच ही वह देश का राष्ट्र-गीत बन चुका था। उस समय बंगाल ही भारत का बौद्धिक-राजनीतिक प्रतिनिधित्व करता था। तब लगभग पूरा देश और कुछ हो निर्भीक तो नहीं ही कहा जा सकता था। वैसी स्थिति में वंदे मातरम् ने भारतवासियों पर जो प्रभाव उत्पन्न किया, वह जादुई मंत्र जैसा ही था। क्योंकि उसने राष्ट्रवादी आंदोलन को, श्रीअरविंद के शब्दों में, कुत्ते के भूँकने से सिंह की गर्जना ('the canine method to leonine') में बदल दिया।

वस्तुतः ६ अगस्त १९०६ को आरंभ हुए दैनिक समाचार पत्र का नाम 'वंदे मातरम्' रखना उस काल की राष्ट्रीय मानसिकता का ही प्रतिबिंब था। उन छः वर्षों के स्वदेशी आंदोलन के ज्वार ने जो उपलब्ध किया वह फिर छः दशकों में भी प्राप्त नहीं किया जा सका। मात्र दो वर्ष तक चले उस पत्र ने राष्ट्रीय पत्रकारिता और राजनीतिक आंदोलन को अपूर्व अभिव्यक्ति दी। पहली बार उसी ने 'पूर्ण स्वराज्य' को भारत का लक्ष्य घोषित किया। वह भी मात्र एक नारे के रूप में नहीं, बल्कि सुचिंतित सिद्धांत और सशक्त, विस्तृत व्याख्यान के आधार पर। श्रीअरविंद ने 'वंदे मातरम्' को राष्ट्रवादी दल के मुख पत्र के रूप में अपनाने की सलाह दी। वही लगभग पूरे काल 'वंदे मातरम्' के वास्तविक संपादक और निर्देशक रहे। साथ ही बंगाल की राष्ट्रवादी पार्टी के नीति-नियंता भी। उन्होंने स्पष्ट किया कि पहले स्वयं भारत में राष्ट्रीय स्वर को सशक्त किए बिना इंग्लैंड के लोगों से भारत के लिए निवेदन या प्रचार का कोई अर्थ नहीं है (यह हमारी विदेश नीति, कूटनीति और विदेश-व्यापार के संबंध में आज भी समीचीन है)। उन्होंने वैसे भी, सिद्धांतः ब्रिटिश लोगों से कोई प्रार्थना न करने का आह्वान् किया जिसे वह भिक्षा-नीति का अंग मानते थे। मातृभूमि के लिए त्याग, वैराग्य धारण करने की प्रेरणा देकर श्री अरविंद ने राष्ट्रवादी युवकों के देश-प्रेम को उनके प्रमुख जीवन-उद्देश्य में बदल दिया। यह कैसे संभव हुआ? मात्र इसलिए कि श्रीअरविंद ने भारतीय राष्ट्रवाद की आत्मा-सनातन धर्म पर स्वयं को दृढ़ता से आरूढ़ किया था। वंदे मातरम्' के बाद उनके द्वारा संचालित-संपादित समाचार पत्रों का नाम ही था 'धर्म' एवं 'कर्मयोगी'।

'वंदे मातरम्' और 'धर्म' के पन्नों पर श्रीअरविंद ने देश के लिए एक नया राजनीतिक कार्यक्रम घोषित और विकसित किया। असहयोग, निष्क्रिय प्रतिरोध, स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा, विदेशी वस्तुओं से लेकर विदेशी शिक्षा और अदालतों का बहिष्कार, लोगों के बीच कानूनी विवादों का लोकप्रिय मध्यस्थ के द्वारा निर्णय आदि इसके प्रमुख अंग थे। श्रीअरविंद की ''निष्क्रिय प्रतिरोध'' शीर्षक प्रसिद्ध लेखमाला 'वंदे मातरम्' में ही पहली बार प्रकाशित हुई थी। उन सबको पढ़कर यह सरलता से समझा जा सकता है कि बाद के वर्षों, दशकों में राष्ट्रीय आंदोलन में जो भी सकारात्मक विचार, नारे और कार्यक्रम चले, उन सबका व्यवस्थित आह्वान् और निरूपण 'वंदे मातरम्' में ही किया जा चुका था। चाहे वह चंद्रशेखर आजाद, भगत सिंह जैसे वीर देशभक्तों के सशस्त्र संघर्ष हों अथवा गाँधीजी का सत्याग्रह, असहयोग आंदोलन-सबकी प्रेरणा 'वंदे मातरम्' के

पन्नों पर विस्तार से देखी जा सकती है।

जब 'वंदे मातरम्' आरंभ हुआ था उस समय तक कांग्रेस दल का सुविचारित मत था कि भारत पर ब्रिटिश शासन एक स्थायी, सामान्य अवस्था है। कांग्रेस का तात्कालीन नरम-दलीय नेतृत्व यह आशा करता था कि 'अगले सौ वर्ष बाद तक भारतवासियों के हाथ में स्थानीय विषयों में किंचित स्वशासन प्राप्त हो सकेगा'। वह भी ब्रिटिश सिंहासन की असीम कृपा से। अतएव कांग्रेस दल की स्थायी नीति ब्रिटिश शासन को बात-बात में गदगद् स्वर में धन्यवाद देना और अत्यंत छोटी-छोटी बातों के लिए अनुरोध करना भर था। वैसी अवस्था में 'वंदे मातरम्' ने जो स्वर उठाया वह अभूतपूर्व साहस और आत्मविश्वास से भरा था। उसमें किसी दयनीयता का लेश-मात्र न था। ब्रिटिश सभ्यता व संस्कृति के समक्ष हीन महसूस करने के बदले उलटे भारतीय सभ्यता-संस्कृति की अतुलनीय श्रेष्ठता उसकी वैचारिकता का दृढ़ आधार था। श्रीअरविंद ने कहा था, ''हम पराए लोगों द्वारा हम पर हमसे एक निम्न प्रकार की सभ्यता थोपने या किसी अधिक उपयुक्त चीज के बहाने हमें अपनी विरासत से दूर रखने को अस्वीकार करते हैं।'' लंबी पराधीनता के कारण भारतीय समाज में आई विकृतियों और कमजोरियों को नोट करते हुए भी उसे ठीक कर लेने की भारत की आंतरिक शक्ति और ऊर्जा के प्रति वे आश्वस्त थे। इस ऐतिहासिक, महान स्वर की महत्ता को आज समझना कठिन हो सकता है, किंतु उसे समझे बिना सनातन धर्म रूपी भारतीय राष्ट्रवाद की विशिष्टता को समझना भी असंभव होगा।

श्रीअरविंद और उनके सहयोगियों ने तबके कांग्रेस नेतृत्व से नितांत भिन्न विचार प्रस्तुत किया। 'स्वराज्य' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग करने का श्रेय बंगला-मराठी लेखक सखाराम गणेश देउस्कर को है जिन्होंने शिवाजी की एक लोकप्रिय जीवनी लिखी थी। उसी में यह शब्द पहली बार आया। किंतु राजनीतिक लेखन और आह्वान् में श्रीअरविंद पहले व्यक्ति थे जिन्होंने 'इंडिपेंडेंस' शब्द का प्रयोग किया और अपने पत्रों में इसे भारतीय राजनीति के एक मात्र लक्ष्य के रूप में निरंतर उद्घोषित किया। उन्होंने ही बंगाल के गरमदलियों को यह प्रेरणा दी कि वे एक दल के रूप में जनता के समक्ष आवें, बाल गंगाधर तिलक को अपना नेता घोषित करें और कांग्रेस व जनमत पर अपना अधिकार करने तथा देश के आंदोलन की बागडोर अपने हाथ में लेने के लिए नरमदलीय नेताओं के विरुद्ध संघर्ष करें। तब विवश होकर कांग्रेस के नरमदलीय नेताओं को उनके चतुःसूत्री कार्यक्रम-स्वराज्य, स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा- को अपने कार्यक्रम में सम्मिलित करना पड़ा। अतः ध्यान देना चाहिए कि यह कार्यक्रम मूलतः श्रीअरविंद और स्वदेशी की देन थी, जिसे बाद में गाँधी जी ने अपने असहयोग आंदोलन[२] में अपनाया।

यह भी ध्यातव्य है कि श्रीअरविंद ने स्वतंत्रता का लक्ष्य ब्रिटिशों के प्रति घृणा अथवा उनके कुशासन, अत्याचार के आरोपों के आधार पर नहीं, बल्कि भारतीय राष्ट्र के स्वतः सिद्ध अधिकार

के बल पर किया था। उन्होंने 'अंग्रेजी और नौकरशाही शासन' की तुलना और विरोध में 'भारतीय और राष्ट्रीय शासन' की पदावली का प्रयोग किया जो आज भी प्रासंगिक है (इस अर्थ में कि नौकरशाही आधारित शासन राष्ट्रीय नहीं, विजातीय है)। श्रीअरविंद ने लिखा, "कोई पराधीन राष्ट्र क्रमशः प्रगति करते-करते स्वतंत्रता तक नहीं पहुँचता, बल्कि स्वतंत्रता प्राप्त करके अपनी प्रगति का मार्ग खोलता है।" ऐसे विचारों ने तात्कालीन कांग्रेस दल के मूल विचारों और अंधविश्वासों पर मर्मांतक कुठाराघात किया जो भारत में ब्रिटिश शासन के द्वारा पहुँचाए गए लाभ, ब्रिटिश न्याय में विश्वास, ब्रिटिश शिक्षा की उपयुक्तता का गुणगान करते थे। इसके विपरीत विदेशी शासन के कारण भारत में जो नपुंसकता, प्रगति में अवरोध, शिथिलता, दरिद्रता, आर्थिक दासता आदि जो बुरे परिणाम हुए थे, उसकी आलोचना 'वंदे मातरम्' और 'धर्म' के पन्नों पर ऐसे तीव्र शब्दों और दृढ़ता के साथ की गई जो पहले कभी नहीं की गई थी। इसने बल दिया कि विदेशी शासन कितना भी उदार क्यों न हो, वह स्वतंत्र, स्वस्थ राष्ट्रीय जीवन का स्थान कभी नहीं ले सकता। इन लेखों के कारण राष्ट्रवादियों के विचारों की सर्वत्र विजय हुई। एक राष्ट्र के विचारों को पलटने और उसे तृहत परिवर्तन के लिए तैयार करने में 'वंदे मातरम्' ने जो प्रभाव डाला वह पत्रकारिता के इतिहास में प्रायः अद्वितीय ही था।

इस प्रकार १९०५-१० के बीच चले स्वदेशी आंदोलन की शक्ति, आत्मविश्वास और राष्ट्रीय प्रसार के समुचित मूल्यांकन के लिए भारतीय राष्ट्रवाद की उस आध्यात्मिक-सांस्कृतिक अपील को समझना अत्यंत आवश्यक है जो श्रीअरविंद के ऊपर उद्धृत शब्दों में व्यक्त हुई थी। इसमें कोई संदेह नहीं कि उस अपील की अंतर्निहित शक्ति के कारण ही जो कांग्रेस आंदोलन तब तक हमारे कुछ उच्च-वर्गीय, अंग्रेजी भाषी बुद्धिजीवियों का आपसी मिलना-जुलना भर था, वह रातो-रात भारतीय जनता के हृदय और मस्तिष्क को छूने में सफल हो गया। जो आंदोलन लॉर्ड कर्जन द्वारा बंगाल के विभाजन के विरुद्ध आरंभ हुआ था, वह श्रीअरविंद एवं 'वंदे मातरम्' के नेतृत्व में पूर्ण स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रीय आंदोलन में बदल गया। बंगाल का विभाजन हो या न हो, यह बात ही पीछे छूट गई। मुख्य प्रश्न यह बन गया कि क्या बंगाल, और पूरे देश में भी ब्रिटिश शासन को स्वीकार करते रहा जा सकता है?

देश की राजनीतिक मानसिकता में इस मूलभूत परिवर्तन का श्रेय सबसे अधिक सनातन धर्म पर आधारित चेतना को अपनाने को ही है। श्रीअरविंद उस धर्म-चेतना से ही शक्ति प्राप्त करते थे और अपने अनुयायियों को शक्तिवान बनाते थे, इसका महत्व समझा जाना चाहिए। 'वंदे मातरम्' की निर्भीकता, प्रखरता, स्पष्टता, प्रभावी भाषा, चुभने वाले व्यंग्य और शाब्दिक चतुराई अपने काल में पूरे देश में अद्वितीय थी। बिपिन चन्द्र पाल ने लिखा है, कि तब भारत का शिक्षित समुदाय प्रत्येक प्रातः तत्कालीन प्रश्नों, घटनाओं पर 'वंदे मातरम्' के निर्णय की प्रतीक्षा करता था। उसके

अनुकरण में पूरे देश के अन्य समाचार पत्रों ने, यहाँ तक कि एंग्लो-इंडियन पत्रों ने भी उसका प्रभाव ग्रहण कर लिया। उसकी सराहना में सभी एकमत थे। यद्यपि आर्थिक दुर्बलता और श्रीअरविंद के जेल चले जाने के बाद 'वंदे मातरम्' की स्थिति निराशापूर्ण हो गई और नवंबर १९०८ में उसका जीवन समाप्त हो गया। दो वर्ष बाद श्रीअरविंद ने भी सक्रिय राजनीति त्याग दी (और मनुष्य के आध्यात्मिक उत्थान और परिष्कार का मार्ग बनाने का महती कार्य आरंभ किया।) किंतु इससे पहले उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद को पुनर्जीवन दे दिया था।

यह था वह आत्मविश्वास जो सनातन धर्म पर आरूढ़ होकर सामाजिक, राजनीतिक स्वर उठाने से पूरे भारतवर्ष में रातो-रात पैदा हो गया था। स्वयंभू नरमदलीय नेताओं द्वारा ब्रिटिश राज का गुणगान अतीत की बात हो गई। उसके बदले, श्रीअविंद के शब्दों में, "लोगों के समक्ष प्रश्न यह बन गया कि क्या भारत-पवित्र ऋषियों का भारत, एक राम, एक कृष्ण और एक बुद्ध को जन्म देने वाला भारत, शिवाजी और गुरू गोविंद सिंह का भारत-क्या उस समय की नियति सदैव किसी विदेशी विजेता के पैरों पर साष्टांग झुकते रहने की है? क्या हम अपना राष्ट्रीय भवितव्य किसी विदेशी की मनमानी और हितों पर समर्पित करेंगे अथवा पुनः अपने आपको गंभीरता से लेते हुए इस जगत में अपना ईश्वर-प्रदत्त मिशन पूरा करने के अधिकार के लिए संघर्ष करेंगे?"[३]

उस प्रसंग की शिक्षा यही है कि भारत के पास सांस्कृतिक-राजनीतिक पराधीनता से लड़ने के लिए सबसे सशक्त अवलंब सनातन धर्म ही था और है। यही श्रीअरविंद ने ठीक से पहचाना था। उन्होंने राजनीति समेत जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सनातन धर्म की सामर्थ्य और मूल्यवत्ता को सामने रखा था। उसी का सफलतापूर्वक प्रयोग करके, देश को जगाकर, एक निरूपाय, भीरू भारतीय जनता को रातो-रात निर्भीक, साहसी बना कर दिखाया था। वह शिक्षा भारतवासियों के लिए सदैव प्रासंगिक है। सनातन धर्म आधारित भारत की महान विरासत ही वह मूलधन है जिससे हमारा सांस्कृतिक-आध्यात्मिक-भौतिक उत्थान होता रहा है, और जिससे दूर होने, जिसकी अवहेलना करने से हमारा पतन हुआ है। इस प्रकार भारत देश या भारतीय राष्ट्रवाद सनातन धर्म से ही निरूपित होता रहा है। जब इसे कोई महापुरूष, मनीषी पहचान कर अपना निर्भीक स्वर उठाता है, तब पूरा देश उसका अनुकरण करने के लिए स्वतः उठ खड़ा होता है अन्यथा नहीं। इसी बात को आत्मसात किए होने के कारण श्रीअरविंद भारत में मात्र प्रशासनिक-राजनीतिक परिवर्तन अथवा तथाकथित औद्योगिक 'प्रगति' या 'विकास' के इच्छुक न थे, जिसमें विदेशी संस्कृति, शिक्षा व उसकी बनाई संरचनाओं को यथावत छोड़ दिया जाता। उनके शब्दों में, "पुनर्जीवन शब्दशः पुनर्जन्म ही है, और पुनर्जन्म कोई बौद्धिक क्रिया से नहीं होता। न वह नीति बदलने से, न मशीन बदल देने से, न थैली में धन भर जाने से होता है। बल्कि वह नया हृदय प्राप्त करने से होता है, अपना सब कुछ बलिदान करके माता के माध्यम से पुनः जन्म लेने से होता है।"

इस प्रकार सनातन धर्म और माता के रूप में पूज्या मातृभूमि का यह विशिष्ट राष्ट्रवादी सिद्धांत भावनात्मक शब्द-जाल नहीं, वरन गहन चिंतन और पश्चिमी एवं भारतीय मनीषा की विशिष्टताओं को आत्मसात करने पर आधारित था। वह सत्य केंद्रित था और भारतवासियों के अपने जातीय अनुभव तथा लोक-स्मृति को छूता था। उन्हें प्रेरणा और आत्मविश्वास प्रदान करता था। यही कारण था कि देश के कोने-कोने में उसकी तुरन्त, सकारात्मक प्रतिक्रिया हुई। एक स्वर से सबने श्रीअरविंद को भारतीय राष्ट्रवाद का पुरोधा मान लिया। जिनके लिए भारत कोई भौगोलिक नाम, कोई धरती का टुकड़ा, भौतिक वस्तु, कोई बौद्धिक अवधारणा नहीं वरन् देवी-स्वरूपा, शक्तिशालिनी माता थी जिसने शताब्दियों से अपने बच्चों का लालन-पालन किया था और जो अब विदेशी अत्याचारी के हाथों कराह रही थी। श्रीअरविंद के शब्दों में, "वह शक्ति जिसे हम भवानी भारती कहते हैं, तीस करोड़[४] लोगों की शक्तियों की जीवंत एकता है", ठीक उसी प्रकार जैसे "सभी देवताओं ने मिल कर अपनी शक्तियों के योग से भवानी महिष-मर्दिनी का आविर्भाव कराया था, जो उनकी संयुक्त एकता की प्रतीक थी", और जिनने उस दुर्दांत अत्याचारी का नाश किया था।

श्रीअरविंद ने राजनीति में देश-प्रेम को सर्वप्रमुख प्रेरणा के रूप में प्रतिष्ठित कराया, अथवा कराने का प्रयास किया था। "निष्क्रिय प्रतिरोध" संबंधी अपने एक लेख में श्रीअरविंद ने मातृ-भूमि के प्रति प्रेम का जीवंत चित्रण किया है जिसमें मातृ-भूमि की मिट्टी उसकी नदियों, वायु के स्पर्श, देश के स्वर को सुनने से होने वाली सुखद अनुभूति, देश के विगत उत्कर्ष पर गौरव, उसके वर्तमान दुःख से होने वाली पीड़ा, भविष्य के लिए आवेग, और देश के लिए सर्वस्व बलिदान करने में होने वाले सुख, आदि का जीवंत वर्णन है। 'वंदे मातरम्' में छपा वह लेख, जिसमें मातृभूमि को देवी और राष्ट्र को माता के इस सशक्त रूप में चित्रित किया गया था, ब्रिटिश सरकार ने प्रसिद्ध 'अलीपुर षड्यंत्र केस' में एक प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया था। इससे उसके प्रभाव का अनुमान किया जा सकता है। देशभक्ति और राष्ट्रवाद की वह भावना जो सनातन धर्म पर निष्ठा पर आधारित थी, अत्यंत प्रभावी थी। उस निष्ठा को परे कर स्वतंत्र भारत में सेक्यूलरवाद पर आधारित जो राजनीति खड़ी की गई, उसके दुष्परिणामों का विधिवत् मूल्यांकन भी इस पृष्ठभूमि में किया जाना चाहिए। तभी हम १९४७ के बाद की भारत-दुर्दशा को ठीक-ठीक समझ सकते हैं।

स्वतंत्र भारत में सत्ता पर वामपंथी गुट का अनायास कब्जा हो जाने से संपूर्ण इतिहास को विकृत करके रखा जाता रहा है। इसी क्रम में मार्क्सवादी, नेहरूपंथी इतिहासकारों ने धीरे-धीरे सनातन धर्म, हिन्दू समाज, इसके दर्शन, रीति-नीति और संपूर्ण विरासत के बारे में तरह-तरह के दुष्प्रचार आरंभ किए। समय के साथ उन्हीं दुष्प्रचारों को पाठ्य-पुस्तकों में भरकर नई पीढ़ियों को भ्रमित, भ्रष्ट करने की भी कुत्सा आयोजित की। इसी का परिणाम है कि आज अनेक पुस्तकों, विवेचनों में यह संकेत मिलता है मानो सनातन धर्म पर आधारित राष्ट्रवाद कोई अंध-राष्ट्रवाद है,

अथवा संकीर्ण हिन्दू पुनरूत्थानवाद। किंतु यह मिथ्या और कुत्सापूर्ण आरोप भर हैं जो वास्तविक आकलनों से प्रमाणित नहीं होते। १९०५-१९१० के काल की सभी घटनाओं और गतिविधियों की सत्यनिष्ठ समीक्षा कुछ दूसरा ही संकेत करती है। श्रीअरविंद और अन्य मनीषियों के विचार स्पष्ट दिखाते हैं कि सनातन धर्म रूपी भारतीय राष्ट्रवाद अंततः पूरी मानवता के आंतरिक, आध्यात्मिक उत्थान का नेतृत्व करने का महती लक्ष्य रखता था। इस अर्थ में वह सहज अंतर्राष्ट्रीयतावादी भी था। किंतु ऐसा अंतर्राष्ट्रीयतावाद जो किसी इस्लामी, मार्क्सवादी या चर्च की विचारधारात्मक तानाशाही, अहंकार, अंधविश्वास या जोर-जबर्दस्ती मतांतरण कराने पर नहीं, वरन मानवीय एकात्मता पर आधारित था। उसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए भारत का स्वतंत्र-स्वाधीन होना एक पूर्वापेक्षा थी। इस बात को हृदयंगम किए बिना उस ऐतिहासिक स्वदेशी आंदोलन की देश-व्यापी अपील को समझना कठिन होगा।

यह कितने दुर्भाग्य की बात है कि आज वही जादुई मंत्र-वंदे मातरम्-जिसने सौ वर्ष पहले संपूर्ण देश को झकझोर कर जगा दिया था, और सबमें नई स्फूर्ति, नई शक्ति का संचार किया था, आज उसे देश के सरकारी सभा-सम्मेलनों में गाया नहीं जा सकता। यहाँ तक कि बाहर भी उसे गाने पर आपत्ति जताई जाती है और शासक-प्रशासक उसे न गाने के निर्देश देते हैं। इससे यही प्रदर्शित होता है कि सनातन धर्म आधारित राष्ट्रवाद ने जो ज्योति जलाई थी, वह हमारे देश के उच्च वर्ग के मानसिक तमस को पूरी तरह नहीं हर सकी थी। फलस्वरूप समय के साथ वह तमस पुनः गहरा हो गया। सन् १९४७ के बाद जवाहरलाल नेहरू और एक धूर्त वामपंथी गिरोह ने जिस सरलता से राज्यसत्ता पर एकाधिकार कर उसे मनमाने रूप से एक घोर हिन्दू-विरोधी दिशा में प्रवृत्त करने में सफलता पाई, उसे इसी तरह समझा जा सकता है।

यदि हिन्दू समाज का उच्च वर्ग सैकड़ों वर्षों की पराधीनता से जनित मानसिक दासता, अथवा उसके अवशेषों में न जकड़ा, भूला होता तो यह कदापि संभव न था कि स्वाधीनता आंदोलन के सबसे बड़े मनीषियों, महापुरूषों के विचारों को स्वतंत्र भारत के राजनीतिक मैनेजर इतनी आसानी से किनारे कर देते। महर्षि दयानंद, बंकिमचंद्र, तिलक, विवेकानंद, श्रीअरविंद, रवींद्रनाथ ठाकुर, महात्मा गाँधी आदि किन्हीं के किसी भी आधारभूत विचार को स्वतंत्र भारत के विधि-विधान, शिक्षा-अर्थनीति, राज्यनीति आदि किसी क्षेत्र में स्थान नहीं मिला। श्रीअरविंद की राष्ट्रीय शिक्षा अथवा गाँधीजी के हिन्द स्वराज की एक भी अनुशंसा स्वतंत्र भारत के राजकीय, बौद्धिक दर्शन में स्थान न पा सकी। यह विचित्र बात कैसे घटित हुई? और इसके विपरीत 'सेक्यूलरिज्म', 'सोशलिज्म', 'ह्यूमन-राइट्स', 'मल्टी-कल्चरलिज्म' आदि तरह-तरह के विदेशी, अ-परीक्षित, अस्पष्ट, अनैतिक विचारों को हमारा मार्गदर्शक सिद्धांत घोषित कर दिया गया? क्यों, कैसे?

यहाँ साथ ही इस पर भी विचार करें कि क्या १९४७ के बाद भारतीय राजनीति, कूटनीति,

ग्राम समाज, सामाजिक व्यवस्था, प्रशासन आदि की जो उत्तरोत्तर दुर्गति होती गई है, क्या उसका इस वैचारिक-सांस्कृतिक भीतरघात से कोई संबंध नहीं। आज पाठ्य-पुस्तकों और विद्वत-चर्चा में राष्ट्रवाद, शिक्षा संस्कृति आदि पर श्रीअरविंद के विचार ही नहीं, उपर्युक्त किन्हीं मनीषी के विचारों का उल्लेख तक नहीं मिलता। प्रायः सभी जगह मार्क्सवादी, ईसाई मिशनरी प्रचारकों की परिभाषाएँ, व्याख्याएँ ही पढ़ने को मिलती हैं जिसके अनुसार भारतीय राष्ट्र का जन्म ही अंग्रेजों के काल में हुआ", कि भारत के एक औपनिवेशिक, आधुनिक बाजार बनने की क्रिया से यह एक राष्ट्र बना। इससे पहले वह कुछ नहीं, मात्र भूगोल था। इस बात को समझने, परखने की आवश्यकता है कि इस प्रकार के विजातीय, हानिकारक, भारतीय सभ्यता, सनातन धर्म विरोधी विचारों, शिक्षा और निर्देशों से ही भारतीय राजनीतिक तंत्र का वह पतन हुआ है, जो आज सर्वत्र देखा जा सकता है।

अतएव, जिस प्रकार आजसे सौ वर्ष पहले मातृ-भूमि और माता के रूप में देश की भावना ने भारतवासियों को शक्ति और आत्मविश्वास दिया था, आज भी प्रकारांतर से उसी की पुनः आवश्यकता है। यह इससे भी प्रमाणित है कि विभिन्न बौद्धिक निर्मितियों, राजनीतिक नारों, विजातीय सिद्धांतों ने न तो भारतवासियों का हृदय जीतने में सफलता पाई है, न ही किसी एक भी घोषित लक्ष्य को पाने में। चूँकि सभी विदेशी दवाएँ, विचारधाराएँ हमारे समक्ष बाँझ साबित हो चुकी हैं, हमें एक बार पुनः उसी मनीषा से मार्गदर्शन मिल सकता है जो सनातन धर्म की थाती है। आज से ठीक सौ वर्ष पहले कहे हुए श्रीअरविंद के यह शब्द जितने सटीक हैं, उतने ही स्थायी महत्व के भी :

> All great awakenings in India, all her periods of mightiest and most varied vigour have drawn their vitality from the fountain- heads of some deep religious awakening. Wherever the religious awakening has been comlete and grand, the national energy it has created has been gigantic and puissant; wherever the religious movement has been narrow or incomplete; the national movement has been broken, imperfect or temporary. The persistence of this phenomenon is proof that it is ingrained in the temperament of the race. If you try other and foreign methods we shall either gain our end with tedious slowness, painfully and imperfectly, or we shall not attain it at all. **(Sri Aurobindo, 1906)**

किंतु दुर्भाग्यवश हमारे देश की वर्तमान प्रचलित बौद्धिकता को ठेक ठीक विपरीत है। वह भारत की अनमोल धर्म-चेतना को ही सभी समस्याओं की जड़ मानती है। हिन्दू जनगण की सहज धर्म-चेतना के विरोध में ही यहाँ 'सेक्यूलरिज्म' की तानाशाही अपनाई गई। आज इसी की आड़ में तरह-तरह की देशी, विदेशी भारत-विरोधी संगठन-अलगाववादी, विखंडनवादी, आतंकवादी, विदेशी मिशनरी, संगठित धर्मान्तरणवादी, इस्लामी विस्तारवादी, आदि-अपना प्रपंच यहाँ चारों ओर फैला रहे हैं। यह संयोग नहीं कि उनके द्वारा संचालित अनेक गैर-सरकारी संगठन (एन.जी.ओ.) और तरह-तरह के संदिग्ध, मानवाधिकारवादी संगठन दिन-रात 'सेक्यूलरिज्म' की ही चिंता करते

रहते हैं। इस चिंताजनक सेक्यूलरिज्म का निरंतर दुरूपयोग देख कर भी हमने बुद्धिजीवी व नेतागण कोई समीक्षा करने के लिए तैयार नहीं। उलटे, सनातन धर्म और हिंदू समाज को ही सभी समस्याओं के लिए उत्तरदायी ठहराकर इसे अधिकाधिक लांछित किया जा रहा है।

जैसे, सनातन धर्म आधारित राष्ट्रवाद एवं वैचारिकता, तथा स्वदेशी आंदोलन (१९०५-१०) की मार्क्सवादियों द्वारा यह आलोचना की जाती है कि उसमें 'हिन्दू रूझान' था और इस प्रकार वह 'सेक्यूलर' न था, और इसलिए उसमें मुसलमान नहीं जुड़े, आदि आदि। इसी आपत्ति के अंतर्गत स्वतंत्र भारत में (मुसलमानों के लिए देश तोड़कर अलग मुस्लिम देश बना लेने के बाद भी) वंदे मातरम् को राष्ट्रगीत नहीं बनाया गया। जबकि तथ्य यह है कि स्वदेशी और वंदे मातरम् के बहुत पहले से, सन् १८५७ के समय भी मुस्लिम नेता किसी भारतीय राष्ट्र जैसी भावना से जुड़े हुए नहीं थे। उनमें से अधिकांश के लिए इस्लामी राज्य के रूप में ही भारत का कोई अस्तित्व था, उससे पहले या भिन्न भारत के प्रति, या किसी भारतीय राष्ट्रवाद के प्रति उनकी वैचारिकता में कोई सहानुभूति नहीं थी।[९]

इसीलिए मुस्लिम नेता और बुद्धिजीवी मौलाना हाली लिखित रचना मुसद्दस (१८७९) और अल्लामा इकबाल के शिकवा (१९०९) तथा जबावे शिकवा (१९१२) जैसी प्रसिद्ध कृतियों के दीवाने थे। उनका मलाल यह था कि इस्लाम का अजेय विश्व-अभियान, 'सातो समंदर सर करने वाला, दीने-हिजाजी का बेबाक बेड़ा, गंगा के दहाने पर आकर डूब गया। मुस्लिम बुद्धिजीवियों में देश-प्रेम या राष्ट्रीय भावना के बदले पुनः भारत में इस्लामी राज कायम करने की चिंता प्रमुख थी। सर सैयद अहमद सन् १८५८-६० में ही कह चुके थे कि हिंदू और मुस्लिम दो कौम हैं जो हमेशा आपस में संघर्षरत रही हैं, और यदि अंग्रेज भारत से चले जाते हैं तो दोनों मिलकर नहीं रह सकते। हिन्दुओं और मुसलमानों के दो भिन्न समुदाय होने की बात इतनी सहज, स्वभाविक मानी जाती थी कि राष्ट्रीय आंदोलन के संपूर्ण काल में, सन् १९४७ तक सभी प्रकार के नेताओं, लेखकों द्वारा हिन्दू और मुस्लिम समुदाय की, उनके विचारों, परंपराओं, दर्शन-संस्कृति, राजनीतिक प्रवृत्ति, भावनाओं, माँगों, आदि किसी भी विंदु की चर्चा बड़ी सहजता के साथ की जाती थी। उस पर यह लज्जास्पद झूठा नाटक कोई नहीं करता था जो १९४७ के बाद के भारतीय नेतृत्व और बुद्धिजीवी वर्ग की अनन्य विशेषता हो गई। यह मिथ्याचार कि 'हिन्दू समुदाय' जैसी कोई चीज नहीं है, न कोई हिन्दू भावना, मनीषा, या परंपरा है। कि जो है केवल 'भारतीय है, और इस भारतीयता में भी केवल वही तत्व गिने जा सकते हैं जिसमें मुसलमान भी सहमत और भागीदार हों। चूँकि इस विचित्र अवधारणा में सनातन धर्म एवं इस्लाम-पूर्व भारत की कोई भी चीज नहीं जोड़ी जा सकती थी, इसलिए सनातन धर्म और हिन्दू संस्कृति की उपेक्षा, अवहेलना और अवमानना स्वतंत्र भारत की बौद्धिकता की एक अनिवार्य शर्त बन गई।

अत: सनातन धर्म पर आधारित राष्ट्रवाद के प्रति निष्ठा जताने अथवा वंदे मातरम् गाने से भारत के मुसलमान राष्ट्रीय आंदोलन से नहीं जुड़े, यह कपट भरा मिथ्याचार है। जिस स्वदेशी आंदोलन के लगभग सभी नेता हिंदू और धर्म प्राण व्यक्ति थे, उनकी भाषा और भाव भूमि हिन्दू होनी सुनिश्चित थी। फिर, उनका विचार ही भारत का पुनर्जीवन और पुनरूत्थान करना था जिसके लिए राजनीतिक स्वतंत्रता एक पूर्वापेक्षा भर थी। अर्थात, मात्र राजनीतिक परिवर्तन करना उनका उद्देश्य ही न था जिसके लिए वे अपनी सर्वप्रधान आस्था को छोड़ देते। किंतु उनके विचारों, आह्वानों में कभी भी गैर-हिन्दू धर्म-विश्वासियों की उपेक्षा नहीं थी। श्रीअरविंद राष्ट्रीय आंदोलन में मुसलमानों की भागीदारी आवश्यक मानते थे। यहाँ तक कि वे मुसलमानों के जागरण का तब भी स्वागत करने के लिए तैयार थे, जबकि वह आरंभ में हिन्दुओं के विरूद्ध 'मिस-गाइडेड' हो। किन्तु मुसलमानों को तुष्ट करने के लिए अपना स्वधर्म छोड़ देना उन्हें स्वीकार्य न था। उनका दृढ़ मत था कि उसके परिणाम उलटे होंगे (जो हुए)। अत: हिन्दुओं द्वारा सनातन धर्म और अपनी पारंपरिक सदाशयता पर दृढ़ रहकर ही मुसलमानों के साथ व्यवहार किया जाना उचित है। तब राजनीतिक क्षेत्र में जैसे निमंत्रण मिले, उसके लिए तैयार रहना चाहिए। श्रीअरविंद के शब्दों में, "जैसा मुसलमान चुने, एक भाई के आलिंगन करते हाथ या मल्ल-युद्ध के हाथ", दोनों के लिए हिन्दुओं को तैयार रहना चाहिए। यही वह सत्यनिष्ठ, आत्मविश्वासपूर्ण टेक हो सकती है जो आज भी भारतीय हिन्दुओं को मुसलमानों के प्रति अपनानी चाहिए, अन्यथा मुस्लिम समस्या का कोई समाधान नहीं है। बाद में भी श्रीअरविंद ने दृढ़ता से कहा था कि चाटुकारिता से हिंदू-मुस्लिम एकता नहीं बनाई जा सकती। कि "तथ्यों की उपेक्षा करने से कोई लाभ नहीं, कभी न कभी हिंदुओं को मुसलमानों से लड़ना पड़ सकता है और इसके लिए उन्हें तैयार होना चाहिए।" पिछले सात दशकों के अनुभव ने श्रीअरविंद की इस बात को कितना सटीक प्रमाणित किया है। न तो गाँधी के मुस्लिम तुष्टिकरण, न स्वतंत्र भारत के हिन्दू-विरोधी सेक्यूलरिज्म, न ही तथाकथित प्रगतिवाद ने कभी मुसलमानों को भारतीय राष्ट्रवाद का स्वभाविक अंग बनाने में सफलता पाई। अत: हिन्दुओं द्वारा मात्र स्वधर्म पर दृढ़ रह कर व्यवहार करना ही मुसलमानों में भी यथार्थ विवेक जमा सकता था कि वह बदले हुए समय में अतीत का साम्राज्यवादी अहंकार और विशेषाधिकार की चाह छोड़कर सच्ची बराबरी के आधार पर विचार करें और तदनुरूप निर्णय लें। यदि हिन्दू नेतागण श्रीअरविंद की सलाह अपना सके होते, तो संभवत: भारतीय मुसलमानों का विवेक जमा होता और वह इस्लामी समाज के बहुप्रतीक्षित सुधार में दुनियाँ के मुसलमानो का भी नेतृत्व कर सकते थे। इस विषय में आज भी सनातन धर्म आधारित राष्ट्रीय चेतना ही हमारे भविष्य का एक मात्र संबल है। न केवल राष्ट्रीय एकता और चारित्रिक शक्ति का निर्माण, वरन आर्थिक, कूटनीतिक, प्रशासनिक नव-निर्माण भी किन्हीं विजातीय सिद्धांतों, परिकल्पनाओं, फार्मूलों का अंध-अनुकरण करके नहीं हो सकता। स्वतंत्र भारत के छ: दशकों की कथित उपलब्धियाँ, छलनाओं और निराशाओं की

सत्यनिष्ठ समीक्षा यही इंगित करेगी।

संदर्भ और टिप्पणियाँ-

१. राष्ट्रीय आंदोलन में श्रीअरविंद के ऐतिहासिक योगदान की संक्षिप्त प्रस्तुति के लिए देखें, कर्ण सिंह, प्रोफेट ऑफ इंडियन नेशनलिज्म (बंबई: भारतीय विद्या भवन, १९९१)

२. यद्यपि गाँधीजी अपनी रणनीति और कार्यनीति निर्धारित करते हुए प्रत्येक विषय में सनातन धर्म की भावना पर दृढ़ नहीं रह सके, जिससे राष्ट्रीय आंदोलन को, और आगे चलकर कांग्रेस दल तथा स्वतंत्र भारत की भी हानि हुई। विशेषकर अहिंसा और इस्लामी समस्या, इन दो बिंदुओं पर गाँधीजी के विचार सनातन धर्म के निर्देशों से भिन्न थे।

३. वंदे मातरम्, १ दिसंबर १९०७

४. उस समय भारत की जनसंख्या यही थी।

५. उदाहरण के लिए देखें ए.आर. देसाई की प्रचलित पुस्तक: सोशल बैकग्राऊंड ऑफ इंडियन नेशनलिज्म (बंबई: पॉपुलर प्रकाशन, १९९४)। यह १९४८ में ही लिखी गई थी, जब पश्चिमी बौद्धिक जगत में मार्क्सवादी अंध विश्वासों का बोलबाला था। किंतु आज भी भारतीय शिक्षण जगत में इस पुस्तक की बड़ी प्रतिष्ठा है।

६. प्रो. मुशीर उल हक ने अपनी पुस्तक 'मुस्लिम पॉलिटिक्स इन मॉडर्न इंडिया, १८५७-१९४७' (मेरठ: मीनाक्षी प्रकाशन, १९७०) में विस्तार से इसकी विवेचना की है कि किस प्रकार अपने इस्लामी विश्वासों के कारण मुस्लिम नेताओं और बुद्धिजीवियों द्वारा राष्ट्रवाद या राष्ट्रीय प्रतिबद्धता को स्वीकार करना कठिन होता है। कि किस प्रकार से मुस्लिम बुद्धिजीवी भी, जो राष्ट्रीय भावनाओं से चालित होते हैं, समय-समय पर विचित्र धर्मसंकट में फँसते हैं। अतः मुस्लिम समुदाय का भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल न होना एक इस्लामी समस्या है, जिसका इससे कोई लेना-देना नहीं कि अन्य समुदाय किस प्रकार की राष्ट्रीय भावना या चेतना रखते हैं। यह आज भी देखा जा सकता है, जब भारत में चहुँ-ओर सेक्यूलरिज्म की सत्ता है, फिर भी राष्ट्रवादी चिंताओं से मुस्लिम समुदाय की दूरी यथावत है। क्योंकि पूरी दुनिया में मुस्लिम समुदाय की मजहबी मानसिकता ही ऐसी है, कि प्रसिद्ध इतिहासकार मुहम्मद मुजीब के शब्दों में, "वह अपने मजहब के बिना तैरने के मजहब के साथ डूबना पसंद करेगा"। मुहम्मद मुजीब, वर्ल्ड हिस्ट्री : अवर हेरिटेज (न्यूयॉर्क : १९६०), पृ. २५७, प्रो. मुशीर उल हक द्वारा उपर्युक्त पुस्तक की भूमिका में उद्धृत।

भारतीय संस्कृति अवधारणा एवं महत्त्व

लालमणी त्रिपाठी*

किसी भी देश की संस्कृति उस देश की आत्मा होती है। जब हम किसी देश की संस्कृति पर विचार करते हैं तो स्वाभाविक रूप से हमारे विचार-विमर्श के अन्तर्गत वे सभी विषय आ जाते हैं जो उस देश की संस्कृति का निर्माण करते हैं। अब सबसे पहले हमें यह देखना है कि लोग संस्कृति शब्द को सामान्य रूप में किस अर्थ में लेते हैं। बहुधा सुरूचि और शिष्ट व्यवहार के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया जाता है, पर किसी समाज में निहित उच्चतम् मूल्यों की चेतना से, जिसके अनुसार वह समाज अपने जीवन को ढ़ालना चाहता है, संस्कृति को समझाया जा सकता है।

संस्कृति शब्द इतना व्यापक है कि उसकी परिधि में राजनैतिक सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक, दार्शनिक एवं कलात्मक उत्थान-पतन तथा उनके विविध उतार-चढ़ाव आते हैं। ये सभी विषय मिलकर ही किसी देश की संस्कृति का निर्माण करते हैं। पर आज कल संस्कृति शब्द का तात्पर्य मात्र भाषा, खान-पान, पहनावा, रहन-सहन, लोक व्यवहार आदि वाह्य लक्षणों से समझा जा रहा है, जबकि यह संस्कृति के स्थूल चिह्न मात्र हैं। वैसे तो ये भी महत्त्वपूर्ण हैं लेकिन हमारी संस्कृति के कई आयाम हैं जो उत्तरोत्तर महत्त्वपूर्ण हैं।

भारतीय संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है-हमारे जीवन-मूल्य यानी कि माता-पिता का आदर, गुरूजनों का सम्मान, संयुक्त परिवार, अतिथि सत्कार, परोपकार, दान की प्रवृत्ति, सामाजिक सहकार की भावना, पेड़-पौधों के प्रति भी संवेदनशीलता, विश्व बन्धुत्व की भावना आदि आदि। यही जीवन-मूल्य सारे हिन्दुओं को सम्मान और आदर का पात्र बनाया है।

आजकल भारतीय संस्कृति की रक्षा और उसके प्रचार की चर्चा चल पड़ी है- यह प्रसन्नता की बात है। वास्तव में किसी देश या राष्ट्र का प्राण उसकी संस्कृति है, क्योंकि यदि अपनी कोई संस्कृति नहीं, तो संसार में उसका अस्तित्व ही क्या? परंतु संस्कृति का क्या अर्थ है और भारतीय संस्कृति है क्या- यह नहीं बतलाया जाता। अंग्रेजी शब्द 'कलचर' का अनुवाद संस्कृति किया जाता है। चूँकि संस्कृति संस्कृत भाषा का शब्द है, अतः संस्कृत भाषा के अनुसार ही इसका अर्थ होना

---

*प्रकाशन व्यवस्था प्रभारी, गीताप्रेस, गोरखपुर (राष्ट्रसंत महन्थ अवेद्यनाथ स्मृति साप्ताहिक व्याख्यान माला के अन्तर्गत दिनांक २१ अगस्त २०१७ को दिया गया व्याख्यान)

चाहिये। 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से भूषण अर्थ में 'सुट्' आगमपूर्वक 'क्तिन' प्रत्यय होने से संस्कृति शब्द सिद्ध होता है।

अब हम संस्कृति की दो सहायक अवधारणाओं की चर्चा करेंगे ये दो अवधारणाएँ हैं- सभ्यता और धर्म, जिनका प्रयोग आजकल संस्कृति के स्थान पर होने लगा है।

सभ्यता की अपेक्षा संस्कृति कहीं अधिक परिष्कृत होती है। सभ्यता तो केवल किसी देश का शरीर है जबकि संस्कृति उसकी आत्मा है। सभ्यता अनुकरणीय है पर संस्कृति अनुकरणीय नहीं है। सभ्यता देश का वाह्य आवरण है पर संस्कृति देश की मिट्टी से पनपता है। सभ्यता अल्पकालीन होती है और थोड़े बहुत समय में ही परिवर्तित होने वाली होती है पर संस्कृति हजारों वर्षों तक नहीं मिटती है। किसी भी देश की संस्कृति का निर्माण हजारों वर्षों तक निरंतर होने वाली प्रक्रिया द्वारा होता है अतः उसके मिटने में उतना ही समय लगता है। इसके आधार पर हम कह सकते हैं कि सभ्यता और संस्कृति का क्षेत्र सर्वथा भिन्न है। यथार्थ में सभ्यता मनुष्यों के सांस्कृतिक विकास की वह स्थिति है जिसमें नगर कहे जाने वाले जनसंख्या के क्षेत्र में वे रहना प्रारम्भ कर देते हैं तथा उच्च श्रेणी के भौतिक जीवन-स्तर के प्रतीक बन जाते हैं, किन्तु उच्च स्तर के भौतिक जीवन में संस्कृति का अंश तभी आता है जब वह उच्च नैतिक जीवन को प्राप्त करने का कोई माध्यम बनें। अब चर्चा करते हैं संस्कृति की सहायक अवधारणा-धर्म की। धर्म अपने विस्तृत अर्थों में संस्कृति के समान भी है और उसके बाहर भी है, पर संकुचित अर्थों में उसका महत्त्वपूर्ण अंग बन जाता है। जहाँ धर्म आन्तरिक अनुभूतियों को प्रकट करता है, जिससे जीवन के अर्थ और उद्देश्य का ज्ञान होता है, वहाँ संस्कृति की मूल आत्मा है, किन्तु जहाँ धर्म का प्रयोग वाह्य रूप में होता है, जिसमें आन्तरिक अनुभूतियाँ प्रतिबिम्बित होती हैं, वह संस्कृति का एक अंश मात्र रह जाती है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि संस्कृति, धर्म और सभ्यता के एक दूसरे के पर्यायवाची नहीं है।

भारतीय संस्कृति की रक्षा और प्रचार की बातें तो चल पड़ी हैं लेकिन संस्कृति की बातें अभी उच्चकोटि के बुद्धि-विशारदों में ही सुनाई पड़ती है और वह भी एक वैचारिक फैशन के रूप में। जनता तक वे पहुँच नहीं सकी हैं। जब तक कोई बीज मंत्र जनता के मर्मस्थल में जम नहीं जाता तब तक वह वातावरण में प्रस्फुटित नहीं हो पाता। जनता इस समय अन्न-वस्त्र से बेहाल है, केवल अकाल का प्रभाव वह जीवन पर देख रही है, सांस्कृतिक ह्रास का प्रभाव उसे दिखाई नहीं दे रहा है। जनता अनुभव नहीं कर रही है कि अकाल की तरह ही असंस्कृत रहन-सहन का भी दुष्प्रभाव व्याधियों के रूप में मनुष्य के शरीर पर पड़ता है। अन्न की तरह ही संस्कृति का दुष्काल भी आत्मा और शरीर दोनों को ग्रस लेता है।

संस्कृति ही मनुष्य को पशु की अपेक्षा विशेषता प्रदान करती है। जिन पशुओं में भी संस्कृति का सौष्ठव है, वे पूज्य कोटि में आ गये हैं। इसीलिये हमारे यहाँ गाय का स्थान सर्वोपरि है। मनुष्यों

से भी ऊपर। केवल दूध देने के कारण नहीं, वैतरिणी पार कराने के कारण नहीं, उसका विशिष्ट व्यक्तित्व इन क्षुद्र स्वार्थों से परे है। वह संवेदनशीलता की मूर्तिमती आत्मा है। उसके भीतर से प्राणिमात्र के लिये अहिंसा का उदय होता है। अब प्रश्न उठता है कि संस्कृति की रक्षा के लिये किया क्या जाए। तो उत्तर है कि स्वराज्य के लिये जैसे रचनात्मक कार्य किया गया है वैसे ही संस्कृति के लिये भी कुछ रचनात्मक कार्य करने की आवश्यकता है। संस्कृति की लंबी-चौड़ी बातें करने के बजाय यदि मानव मात्र को परिष्कृत करने के लिये दैनिक जीवन में सुरूचि का संचार अथवा संस्कारिता का उन्मेष किया जाए तो संस्कृति स्वत: सजीव हो उठेगी।

संस्कृति को देव-प्रतिमाओं की तरह केवल पाषाण पूजा नहीं देनी है, उसे जीवन में जीवित करना है, उसे जन संस्कृति बना देना है। संस्कारिता की दृष्टि से देखने पर सर्वसाधारण ही नहीं विशिष्ट जन भी प्राय: जीवन के निम्न धरातल पर ही दिख पड़ते हैं। क्या निर्धन क्या संपन्न, क्या शिक्षित क्या अशिक्षित, क्या आदर्शवादी क्या यथार्थवादी, सब एक ही सतह पर हैं। सबके जीवन की दैनिक प्रणाली प्राय: एक सी ही दूषित, कुत्सित और असंस्कृत है।

हमारे प्रतिदिन की छोटी-मोटी बातें जैसे-खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना, चलना-फिरना, हिलना-मिलना, बात-बर्ताव, हाट-बाट, घर-द्वार, झाड़-बुहार, अपनाव-दुराव, साज-सँवार, सेवा-सत्कार आदि इन्हीं की संस्कारिता में संस्कृति का मूल है। अवश्यकता है, हम जहाँ खड़े हैं, जहाँ हमारे पैर हैं, वहीं के अगल-बगल की धरती को अपनी संस्कारिता से सुन्दर बनाने का प्रयत्न करें। हमें नागरिकता नहीं, संस्कारिता चाहिये। नागरिकता में पारस्परिक स्वार्थों का सामूहिक संगठन है, संस्कारिकता में सामाजिक चेतना का संगठन है। हमें मनुष्य को मानसिक स्नान कराकर दुष्प्रवृत्तियों का परिष्कार करना है।

अब चर्चा करते हैं भारतीय संस्कृति की कुछ प्रमुख विशेषताओं की। कुछ लोग कहते हैं कि भारतीय संस्कृति हिन्दू संस्कृति नहीं, मुस्लिम संस्कृति नहीं, बौद्ध संस्कृति नहीं, सामाजिक संस्कृति है। एक हद तक यह बात स्वीकार की जा सकती है। यह तीनों का क्या सबका अतिक्रमण करती है। भारतीय संस्कृति ने किसी विचारधारा के आगे समर्पण नहीं किया, न उसने इस दृष्टि से किसी वस्तु को आत्मसात किया कि उस वस्तु का नामोनिशान न रहे। उसने विविधता को, अनेक रूपता को बराबर आदर दिया है, प्रश्रय दिया है। भारतीय संस्कृति जीवन को केवल भोग्य के रूप में नहीं देखती, वह जीवन को भोक्ता के रूप में देखती है

चिन्ता की बात है कि आज की संस्कृति जीवनीय न होकर भोग्य हो रही है। नारी भी सहधर्म चारिणी न रहकर केवल शपनीय मात्र होती जा रही है। उसके भीतर का मातृत्व अपनी महिमा खोता जा रहा है। इसके पीछे मानव की प्रदूषित दृष्टि ही मुख्य रूप से काम कर रही है। यदि दृष्टि शुद्ध होती तो हम नारी के भीतर मातृत्व की संभावना देखते, तो हमारा जीवन इतना पैशाचिक न

होता। हमारी संस्कृति में जितनी साधनाएँ हैं उसमें नारी का निरादर न करने का व्रत लेने का विधान है क्योंकि नारी के भीतर चैतन्य सबसे अधिक प्रकाशमान है।

भारतीय संस्कृति सबसे प्राचीन और अपरिवर्तनीय सनातन आर्य संस्कृति है। यही वास्तव में मानव संस्कृति है। इस संस्कृति में मनुष्य जीवन का प्रधान और एक मात्र लक्ष्य है मोक्ष, ज्ञान अथवा भगवत्प्राप्ति। इसी कारण इसमें जीवन की प्रत्येक क्रिया और चेष्ठा इसी लक्ष्य पर ध्यान रखकर की जाती है।

भारतीय संस्कृति का महत्व उसकी अपनी विशेषताओं के कारण है। भारतीय संस्कृति की सबसे प्रमुख विशेषता है- कर्म और पुनर्जन्म। भारतीय संस्कृति में कर्म और पुनर्जन्म का सिद्धान्त अनुभव सिद्धरूप से मान्य है। कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है- कर्मानुसार जन्मान्तर की प्राप्ति होती रहती है। जब तक भगवत्प्राप्ति या मुक्ति नहीं हो जाती तब तक यह जन्म मरण का प्रवाह चलता रहता है। इस सिद्धान्त में अनन्तकालीन स्वर्ग या नरक नहीं है। स्वर्ग के सुख भोगकर अथवा नरक के दु:ख भोगकर जीव पुन: अपने कर्मानुसार अच्छी बुरी योनियों में जन्म लेता है। मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है और फल में परतंत्र है। निषिद्ध कर्म और आचरण से नरक आदि लोक और नीच पशु-पक्षी आदि योनियाँ प्राप्त होती हैं और पवित्र वैध कर्मों के फलस्वरूप स्वर्गादि लोक अथवा उत्तम श्रेष्ठ वर्ण की मानव योनि प्राप्त होती है।

भारतीय संस्कृति की दूसरी प्रमुख विशेषता है-आश्रम धर्म। भारतीय संस्कृति का साध्य त्याग है, भोग नहीं। संसार के तुच्छ, अल्प, सीमित और दु:खमिश्रित भोगों में आसक्ति न रखकर जीवन को त्यागमय बनाना इसमें महत्त्व की बात मानी जाती है। भारतीय संस्कृति में स्वाभाविक ही भोगी की अपेक्षा त्यागी का स्थान ऊँचा है। महान् से महान् व्यक्ति भी त्यागी महात्माओं की चरण धूलि सिर पर चढ़ाने में अपना सौभाग्य समझता है। किसके पास कितना अधिक धन-ऐश्वर्य है, इसका कोई महत्त्व नहीं है। महत्त्व है इस बात का कि कौन कितना बड़ा त्यागी है।

हमारे आश्रम धर्म में आरम्भ से ही त्याग की शिक्षा दी जाती है उसका प्रारम्भ धार्मिक शिक्षा और पवित्र रहन-सहन-ब्रह्मचर्याश्रम से होता है। गृहस्थाश्रम में भी वह त्यागमय भोग का जीवन बिताता है और अन्त में वानप्रस्थ और संन्यास-आश्रमों में पूर्णत: उच्चतर धर्म की ओर लगता है। इस प्रकार गृहस्थाश्रम की भिति ब्रह्मचर्याश्रम है तो उसका लक्ष्य वानप्रस्थ आश्रम और संन्यास है। पुत्र की इच्छा हिन्दू इसलिये करता है कि उसे गृहस्थाश्रम का भार सौंपकर स्वयं धर्म की ओर लग सके। महाराज मनु का उदाहरण पर्याप्त होगा।

भारतीय संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता वर्ण-भेद है। Struggle For existence (जीवन के लिये संग्राम) नहीं, प्रतिस्पर्द्धा का अभाव भारतीय संस्कृति का ध्येय है और इसी के एक उपाय स्वरूप वर्ण-प्रथा का विधान है। वर्ण-प्रथा का मतलब है कि सांसारिक संपत्ति के लिये अपने वर्ण

और जाति की यानी पैत्रिक आजीविका को अपना कर उससे संतुष्ट रहना और उसके द्वारा जो संपत्ति प्राप्त हो, उसे समाज में वितरण करना। जन्म से ही वृत्ति नियत होने से न तो किसी में कभी प्रतिस्पर्धा का भाव आता है न कोई किसी की वृत्ति छीनने का प्रयत्न करता है।

वर्णों में न तो आत्मा की दृष्टि से कोई भेद है और न कर्मभेद से उनमें कोई बड़ा-छोटा है। अपने-अपने स्थान पर सभी का समान महत्त्व है। सभी अन्योन्याश्रित हैं, एक दूसरे के पूरक और सहायक हैं तथा सभी की अपने-अपने स्थान पर विशिष्ट उपयोगिता है।

भारतीय संस्कृति की एक और प्रमुख विशेषता है- संयुक्त पारिवारिक जीवन। इसका भी उद्देश्य कुटुम्ब के सब मनुष्यों को उनके धर्म, अर्थ और काम के साधन में समुचित स्वतंत्रता का अवसर देना और साथ ही पारस्परिक सहयोग देना है क्योंकि प्रधान उद्देश्य यही है कि प्रत्येक की आत्मा को उसकी योग्यता के अनुसार पूर्व विकास की ओर अग्रसर करना। पारस्परिक सहयोग के लिये परस्पर के प्रति आदर का भाव रखा गया है। यदि पुत्र के लिये 'मातृदेवो भव', 'पितृदेवोभव' है तो पिता के लिये 'पुत्रादिच्छेत् पराजयम्' और 'प्राप्तेतु षोडशेवर्षे पुत्रे मित्रत्वमाचेरत्' है। यदि पत्नी के लिये उपदेश है कि वह पति को देवता समझे तो पति के लिये भी यह है कि वह स्त्री को देवी स्वरूपा समझे- 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।' जहाँ नारियों की पूजा होती है वहाँ देवताओं की प्रीति होती है।

संतुष्टो भार्ययाभर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्तेव कुले नित्यं कल्याणं तन्त्र वैधुवम्।

जिस कुल में पत्नी से पति प्रसन्न है और पति से पत्नी प्रसन्न है, निश्चय ही उस कुल में कल्याण का सर्वदा निवास रहता है।

भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषताओं की चर्चा में विवाह संस्कार पर चर्चा करना भी अनिवार्य लग रहा है। भारतीय संस्कृति में विवाह कभी न टूटने वाला एक परम पवित्र धार्मिक संस्कार है। सामाजिक समझौता नहीं है। यह इन्द्रिय सुख भोग के लिये नहीं, बल्कि पुत्रोत्पादन के द्वारा परलोक गत पितरों को सुख पहुँचाने और देवताओं को तुष्ट करने के लिये है। इसमें विवाह-विच्छेद की बात तो दूर रही, जन्म-जन्मान्तर तक पति-पत्नी का सम्बन्ध बना रहता है। भारतीय संस्कृति में धर्म नियंत्रित काम की स्वीकृति विवाह के माध्यम से ही मिलती है। भारतीय संस्कृति में जिसको व्याहते हैं उसे जीवन भर चाहते हैं और पश्चात्य संस्कृति में जिसे चाहते हैं उसे व्याहते हैं। इसी प्रकार हमारी संस्कृति में १६ संस्कारों की चर्चा है। मूर्ति उपासना है, शौच-अशौच है जिस पर चर्चा किया जा सकता है।

संक्षेप में भारतीय संस्कृति का मुख्य गुण विषमता, प्रतिस्पर्धा, और अशान्ति को दूर कर समता, समानता और शान्ति का राज्य स्थापित करना है। यही उसका गौरव है और यही उसकी

उपयोगिता है।

भारतीय-संस्कृति के कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताओं पर यहाँ प्रकाश डाला गया है। वस्तुतः भारतीय संस्कृति अध्यात्म-प्रधान है। व्यावहारिक लोकहित का पूरा ध्यान रखते हुए सत्य और न्यायपूर्ण साधन से अनासक्त होकर लौकिक उन्नति करना और उसमें भी जीवन के चरम लक्ष्य भगवान् को कभी न भूलते हुए क्रमशः भगवान् की ओर बढ़ते रहना इसका प्रधान स्वरूप है। पवित्र भारत वर्ष में महान् संस्कृति का उदय हुआ है, इसी से भारत धन्य है और धन्य रहेगा।

गायन्ति देवाः किलगीतकानि
धन्यावस्तु ते भारतभूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पद मार्ग भूते
भवन्ति भूयः पुरूषाः सुरत्वात।।

देवता लोग भी निरंतर यही गाया करते हैं जिन्होंने स्वर्ग और मोक्ष के मार्गभूत भारतवर्ष में जन्म लिया है, वे पुरूष हम देवताओं की अपेक्षा अधिक सौभाग्यशाली हैं।

अंत में हम यह संदेश देना चाहते हैं कि संसार के लोग निष्पक्ष भाव से भारतीय संस्कृति के भव्य एवं दिव्य स्वरूप को समझें और यहाँ के निवासियों का तो यह परम् कर्तव्य ही है कि वे जो आज अपने घर की महान् संस्कृति और उसके पावन सिद्धान्तों से अनभिज्ञ रहकर परमुखापेक्षी बन रहे हैं, अपनी पवित्र संस्कृति की अवहेलना करके केवल अर्थ और अधिकार के पीछे पड़कर सनातन धर्म के विनाश में ही कल्याण की भावना कर रहे हैं और फलस्वरूप उत्तरोत्तर पाप ताप के दुःखप्रद कीचड़ में फँसते जा रहे हैं, शीघ्र चेतें। अपनी संस्कृति को जानें, समझें और अपनायें।

आत्माभिमान व गौरव को बढ़ाने वाला है : पितृतीर्थ गया

महेश कुमार शरण*

किसी भी देश अथवा जाति का प्राण उसका गौरवपूर्ण इतिहास होता है। कल, आज और कल एक ही समय प्रवाह के अविभाज्य अंग हैं। बीता हुआ कल जिसे हम भूतकाल कहते हैं, वर्तमान काल आज में सूक्ष्म रूप में निहित रहता है तथा आनेवाला कल भविष्य को प्रभावित करता है। इसीलिए इतिहास की प्रासंगिकता है।

महाभारतकार ने इतिहास के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा–

वृतं यत्नेन संरक्षेत वित्तमायाति याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणः वृत्ततस्तु हतः।।

अर्थात् इतिहास की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। धन तो आता और जाता है। धन से हीन होने पर कोई नष्ट नहीं होता पर इतिहास और अपना प्राचीन गौरव खो देने पर विनाश निश्चित है।

भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास में नगरों का अपना विशिष्ट स्थान रहा है। साथ ही इस महत्त्व को अक्षुण्ण बनाने के लिए हमारे मनीषियों ने इन नगरों के साथ धार्मिक महत्त्व भी जोड़ दिया ताकि अपने महत्त्व को चिरस्थायी रख सकें। इस कारण ऐतिहासिक दृष्टिकोण से गया का महत्त्व प्राचीन काल से मोक्षनगरी के रूप में प्रसिद्ध है।

अपने अतीत का वह पुण्य स्मरण हमें वर्तमान में सक्रिय बनाने, प्रेरणा प्रदान करने और देश में उचित स्थान ग्रहण कर आवश्यक कार्य और कर्तव्य करने को प्रेरित करता है। गया में पितरों के लिए नारकीय यातनाओं से मुक्ति हेतु श्रद्धापूर्वक पिण्डदान की परम्परा इसी कड़ी में है और इसी कारण गया को पितृतीर्थ के रूप में परिभाषित किया गया है। गया हिन्दुओं की मोक्षभूमि मानी जाती है क्योंकि अपने पूर्वजों की मुक्ति के लिए प्रायः हर हिन्दू गया आकर पितृपक्ष के अवसर पर उन्हें पिण्ड देकर नरक की यातनाओं से मुक्त कराते हैं। गयाजी स्थित पिण्ड दान हेतु कुल ३८२ पिण्ड वेदियों में से अब केवल ५०–५५ वेदियों का बचा रहना इस बात का प्रमाण है कि सामान्य

*पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष, स्नातकोत्तर प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन विभाग, गया कॉलेज, गया (मगध विश्वविद्यालय गया) बिहार
सम्पर्क- ०९४५२७७८५५४, अपराजिता, २६ आर, बैंक कालोनी, पादरी बाजार, गोरखपुर-२७३०१४
अध्यक्ष, भारतीय इतिहास संकलन समिति, गोरक्ष प्रान्त, गोरखपुर

जन धर्मस्थलों को भी अपने निजी स्वार्थ के लिए नहीं छोड़ते हैं।[४]

गया वह पुण्य विष्णु तीर्थ है जहाँ प्राचीन काल से अबतक हिन्दू यहाँ आकर श्रद्धापूर्वक अपने पितरों की मुक्ति हेतु श्राद्ध करते हैं। प्रागैतिहासिक काल में मगध का यह नगर व्रात्यों की नगरी कीकट और कालान्तर में गयाजी, अन्दर गया, ब्रह्म गया, विष्णु नगरी, विष्णु धाम, ब्रह्म गंगा, ब्रह्मपुरी और बिहार जिला के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस नगर की महिमा का वर्णन हमारे धार्मिक ग्रन्थों में है। मत्स्यपुराण में ऐसा कहा गया है[५]–

पितृतीर्थं गयानाम सर्वतीर्थवरं शुभम्
यत्रास्ते देव देवेशः स्वमेव पितामहं।
तत्रैषा पितृभिर्गीता गाथा भागमभीप्सुभिः
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्।
यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषभुत्सृजेत्॥

अर्थात् गया नामक पितृतीर्थ सभी तीर्थों में श्रेष्ठ एवं मंगलदायक है, वहाँ देव देवेश्वर भगवान् पितामह स्वयं ही विराजमान हैं। वहाँ श्राद्ध में भाग पाने की कामना वाले पितरों द्वारा यह गाथा गायी गयी है- "मनुष्यों को अनेक पुत्रों की अभिलाषा करनी चाहिए क्योंकि उनमें से यदि एक भी पुत्र गया की यात्रा करेगा अथवा अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान कर देगा या नील वृष (सांड़) का उत्सर्ग कर देगा तो हमारा उद्धार हो जाएगा।"

गया धाम के पग-पग पर तीर्थ हैं तथा यह श्रेष्ठ तीर्थ के नाम से भी सम्बोधित होता है क्योंकि एक ही स्थान पर सभी तीर्थों के समवेत रहने से इस गया नगर को श्रेष्ठ तीर्थ कहा जाने लगा। तीर्थ के सम्बन्ध में यह श्लोक पठनीय है- **तरति पापादिकम् यस्मात् तत्तीर्थम्।** अर्थात् वह स्थान विशेष जहाँ जाने से पापों का क्षय हो जाता है-वह तीर्थ है। हमारे धर्मग्रन्थों में कहा गया है- जिस प्रकार शरीर के अंग विशेष विशेष पवित्र होते हैं उसी प्रकार पृथ्वी के कुछ स्थल पवित्र होते हैं और यही पवित्र तीर्थस्थल तीर्थ कहे जाते हैं। पृथ्वी पर जितने भी पवित्र स्थल हैं वे प्रायः पर्वतों, नदियों के निकट हैं। ऐसा इसलिए है कि ऋषियों ने इन्हीं स्थलों पर बैठकर तपस्या की है- अतः यह तपोभूमि होती है।[६] **सद्भिः समाश्रितो भूमीभागस्तीर्थाच्यते।** अर्थात् जिस स्थान पर सज्जन पुरुष एवं सन्त-महात्मा निवास करते हैं वह स्थान तीर्थ कहलाता है।

भारत के तीर्थस्थलों में गया का माहात्म्य एक प्राचीनतम तीर्थस्थल के रूप में है। इस स्थान की पवित्रता को देखते हुए लोग गयाजी कहकर सम्बोधित करते हैं। यहाँ तीर्थ यात्रियों के आगमन की परम्परा बहुत पुरानी है। पितृपक्ष के अवसर पर देश के ही नहीं वरन् नेपाल, मॉरिशस, बर्मा, भूटान, तिब्बत, सूरीनाम, बांग्लादेश, पाकिस्तान आदि देशों में रहने वाले हिन्दू लोग भी गया आकर अपने पूर्वजों के लिए पिण्डदान कर उन्हें नरक की यातनाओं से उद्धार कर उन्हें मुक्त कराते हैं

तथा एक सबसे महत्त्वपूर्ण पिण्डवेदी वैतरणी में जाकर गयावाल पण्डों का आशीर्वाद प्राप्त कर कुल खानदान के मृत आत्माओं को वैतरणी प्राप्त करवाते हैं। अतः इस अवधि में कश्मीर से कन्याकुमारी तथा काठियावाड़ से कामरूप तक के लाखों श्रद्धालु इस नगर में पधारते हैं और अपने पूर्वजों की आत्मा की शान्ति के लिए पितर पूजा एवं श्राद्धकर्म निष्ठापूर्वक सम्पादित करते हैं। ये श्रद्धालु अपनी वेशभूषा, भाषा, रहन-सहन तथा समस्त आचार-विचारों के साथ गया आते हैं और इस नगर की जीवन-शैली के साथ इनका स्वभावतः आदान-प्रदान होता है। इस प्रकार गया में एक वृहत्तर सारस्वत परम्परा का निर्माण होता है जिसके अन्तर्गत अनेकता में एकता के यथार्थ भारतीय रूप का सहज दर्शन परिलक्षित होता है। ज्ञान, विज्ञान, धर्म, शिक्षा, संस्कृति और मोक्ष की नगरी के अतिरिक्त गया कला, संगीत, व्यापार और वैभव की नगरी प्राचीन काल से है। नगर की प्राकृतिक छटा, कूप, वापी, तड़ाग, उद्यान यहाँ की समृद्धि के द्योतक हैं।

पुराणों के अनुसार गया की कथा गयासुर से जुड़ी है। असुर होकर भी गयासुर का समस्त जीवन लोकमंगल और मानव कल्याण के उद्देश्य से प्रेरित था। देवताओं के आग्रह पर भगवान् विष्णु ने स्वयं देवलोक से गया जी आकर नाटकीय ढंग से पराक्रमी राजा गयासुर का वध किया। मृत्यु के समय भी उसने भगवान् विष्णु से प्रार्थना की और कहा कि यदि वे वरदान ही देना चाहते हैं तो पाँच कोस के इस क्षेत्र को गयातीर्थ की संज्ञा दी जाय और सभी देवी-देवता यहाँ विराजमान होकर लोक-कल्याण करें। इसी क्रम में श्रीविष्णु के चरण-चिह्न एक शिलाखण्ड पर अंकित हो गये। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि गया जी में भगवान् विष्णु अपनी अमिट छाप छोड़ गये और उनके नाम पर गयाजी विष्णुनगरी के नाम से प्रचलित हो गया। देवलोक से भगवान् विष्णु मृत्युलोक गया जी क्या आये, गया जी के ही होकर रह गये और आज गदाधर रूप में विद्यमान हैं।

पितरों का उद्धार करने वाली अन्तःसलिला फल्गु यहाँ है जिसकी महिमा का वर्णन वायुपुराण में इस प्रकार है-

गंगा पादोदकं विष्णोः फल्गु ह्यर्यादि गदाधरः।
स्वर्यंहि द्रवरूपेण तस्माद गंगाधिकं विदुः॥

फल्गु नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित विष्णुपद मन्दिर प्रत्येक सनातन धर्मावलम्बियों के लिए एक पवित्र तीर्थ है। मन्दिर के गर्भगृह में भगवान् विष्णु के चरण-चिह्न अंकित हैं। इस स्थान को सभी दृष्टियों से परम पवित्र माना गया है। गया में श्राद्ध कर्म तथा पिण्डदान का जो विधान है उसके लिए विष्णुपद का यह स्थान एक मुख्य वेदी के रूप में प्रतिष्ठित है। यह मन्दिर काले ग्रेनाइट पत्थरों को तराशकर बनाया गया है। इन्दौर की महारानी अहिल्याबाई होलकर ने अपने शासनकाल में सन् १७८७ ई. के आस-पास बनवाया था और इसके शिल्पी जयपुर (राजस्थान) से बुलाये गये थे। मुख्य मन्दिर एक खुला मण्डप है जो ३८ वर्गफीट में है पर बाहरी फर्श तक का मन्दिर मण्डप

८२½ फीट लम्बा है। मण्डप की छत आठ कतारों में खड़े प्रस्तर स्तम्भों पर टिकी हुई है। इसकी गुम्बज एवं पहाड़ी गुफा की आकृति में आठ पहल वाली है। भूमि की सतह से गुम्बज तक की ऊँचाई १०० फीट है। मन्दिर १२ वर्षों में पूर्णरूपेण बन सका। इस विष्णुपद मन्दिर की वास्तुकला दक्षिण भारत के कांजीवरम् मन्दिर की बनावट के समान है। मन्दिर मण्डप तथा इसके प्रांगण की देवमूर्तियों से भरे इस स्थान में एक ऐसा आध्यात्मिक वातावरण तैयार होता है जिससे किसी व्यक्ति की आत्मा पवित्र हो जाती है। इन मूर्तियों में गयेश्वरी, गया कुमारी, जगदम्बा, लक्ष्मीनारायण, दत्तात्रेय, अष्टशक्ति दुर्गा, गदाधर, गया राज, रुद्र, सहस्रवेदी, नवग्रह, नरसिंह, फल्गीश्वर, शिव, जरासन्ध कहलाने वाली अष्टादशभुजी देवी आदि की मूर्तियाँ बड़ी ही जीवन्त हैं। मन्दिर के द्वार के सामने की गजमूर्ति सूँड में फल-फूल लिये ऐसी खड़ी है जैसे विष्णु के पद में वह नित्य प्रसाद अर्पण कर रही है। इनके अतिरिक्त भी अनेक प्रस्तर प्रतिमाएँ हैं जो फल्गु नदी तट तक फैले मन्दिर प्रांगण में धर्मारण्य क्षेत्र से लाकर रखी गयी हैं।

वायुपुराण के ४७वें अध्याय में गया के ६२ तीर्थों की व्यापक चर्चा है। इस पुराण में गदाधर तीर्थ की जितनी महिमा गायी गयी है उतनी विष्णुपद की नहीं जबकि आज सर्वाधिक महत्त्व गया में विष्णुपद का ही है। अक्षयवट, विष्णुपद, उत्तरमानस, दक्षिण मानस, काश्यप-पद, प्रेतशिला, रामशिला, मंगला गौरी और पिता महेश्वर अत्यन्त पूजनीय स्थल हैं। वायुपुराण[4] में ऐसा वर्णन है जब पुत्र गया जाये तो उसे ब्रह्मा द्वारा प्रकल्पित ब्राह्मणों को ही आमन्त्रित करना चाहिए। ये ब्राह्मण साधारण लोगों से ऊँचे होते हैं। जब वे सन्तुष्ट हो जाते हैं तो देवों के साथ पितर लोग भी सन्तुष्ट हो जाते हैं; उनके कुल, चरित्र, ज्ञान, तप आदि पर ध्यान नहीं देना चाहिए और जब वे गया के ब्राह्मण गयावाल सम्मानित होते हैं तो यजमान - सम्मान देने वाला संसार से मुक्ति पाता है-

यदि पुत्रो गयां गच्छेदत्कदाचित्काल पर्ययात्।
तानेव भोजयेद्विप्रान ब्रह्मणाये प्रकल्पिताः॥

वायुपुराण[5], अग्निपुराण[6] एवं गरुड़पुराण[7] में भी ऐसा वर्णन है कि जब गयासुर गिर गया और उसे भगवान् विष्णु द्वारा वरदान प्राप्त हो चुका तो उसके उपरान्त ब्रह्मा ने गया के ब्राह्मणों को ५५ ग्राम दिये और ५ कोस तक विस्तृत गयातीर्थ दिया, उन्हें सुनिश्चित घर, कामधेनु गौएँ, कल्पतरु दिये; पर यह भी आज्ञापित किया कि न तो भिक्षा माँगें और न किसी से दान ग्रहण करें, पर लोभवश ब्राह्मणों ने धर्म (यम) द्वारा सम्पादित यज्ञ में पौरोहित्य किया, यम से दक्षिणा याचना की और उसे ग्रहण कर लिया। अतः ब्रह्मा ने उन्हें शाप दिया कि वे सदा ऋण में रहेंगे और कामधेनु, कल्पवृक्ष एवं अन्य उपहार छीन लिये। अग्निपुराण[8] ने इतना जोड़ दिया है कि ब्रह्मा ने उन्हें शाप दिया कि वे विद्याशून्य होंगे और लालची हो जाएँगे-

स्थितां यदि गयायां ते शप्तास्ते ब्रह्मणा तदा।
विद्याविवर्जिता यूयं तृष्णायुक्ता भविष्यथ॥

इस प्रकार के शाप को सुनकर ब्राह्मणों ने ब्रह्मा से पुनः प्रार्थना की और अपनी जीविका के लिए किसी अन्य साधन की माँग की। ब्रह्मा द्रवीभूत हुए और कहा कि ब्राह्मणों की जीविका का साधन गयातीर्थ होगा जो इस लोक के अन्त तक चलेगा और जो लोग गया में श्राद्ध करेंगे और उनकी पूजा करेंगे अर्थात् उन्हें पुरोहित बनायेंगे और दक्षिणा देंगे – वे ब्रह्मा की पूजा का फल पायेंगे। इससे यह स्पष्ट होता है कि वायुपुराण के इस प्रकार के लेखन के समय गया के ब्राह्मणों (गयावालों) की वे ही विशेषताएँ थीं जो आज हैं और उन्होंने गया की तीर्थयात्रा को अपना व्यापार समझ लिया। गयावाल ब्राह्मणों का एक प्रारम्भिक ऐतिहासिक उल्लेख बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन (११८३ ई.) के शक्तिपुर ताम्रपत्र में पाया जाता है–'**श्री बल्लाल सेन प्रदत्त गयाल-ब्राह्मण हरिदासेन प्रतिगृहीत पञ्चशतोत्पत्तिक क्षेत्रं पांटकाभिधान शासन विनिमयेन।**' पुराणों की वाणी का यह परिणाम हुआ कि गया के ब्राह्मणों ने एक अपना समुदाय बना लिया जिसमें किसी अन्य के प्रवेश की गुंजाइश नहीं है। गयावाल के आपसी झगड़े एवं पुरोहितों ने उनके झगड़े को अंग्रेजों के शासनकाल में इंग्लैण्ड की प्रिवी कौंसिल तक ले गये।

पितृपक्ष के अवसर पर पटना की ओर से आने वाले कट्टर हिन्दू श्रद्धालु पुनपुन नदी के तट पर मुण्डन करवाकर गया पहुँचते हैं। अपने पूर्वजों की नारकीय यातनाओं से मुक्ति दिलवाने के लिए गया में आये हुए श्रद्धालु किसी गयावाल ब्राह्मण के चरण पूजते हैं। गयावाल या उनके प्रतिनिधि श्रद्धालुओं को गया और उसके निकटवर्ती वेदियों के पास ले जाते हैं। पुरोहित को अक्षयवट के पास मनोनुकूल दक्षिणा मिलती है और गयावाल ब्राह्मण पुष्प की माला यात्री की अंजलि पर रखता है, सुफल घोषित करता है और उच्चरित करता है कि यात्री के गया आने से पितर लोग स्वर्ग जाएँगे। अपने ही कुलों में इस धर्म व्यापार को सीमित रखने के लिए गयावालों ने विलक्षण परम्पराएँ अपना ली हैं।

पुत्रहीन गयावाल अपनी गद्दी का उत्तराधिकारी किसी गयावाल को ही बना देता है जो अपने को उसका दत्तक पुत्र मानता है। यहाँ पर यह दत्तक प्रथा वास्तविक दत्तक प्रथा नहीं है। अतः दत्तक पुत्र अपने जन्मकुल में ही अपने अधिकार रख लेता है और उसका सम्बन्ध अपने वास्तविक कुल से नहीं टूटता। इसी से कभी-कभी एक ही गयावाल चार-चार गद्दियों का अधिकार पा लेता है (अर्थात् एक साथ कई लोगों द्वारा दत्तक बना लिया जाता है)। प्रत्येक गयावाल के पास बही होती है जिसमें उसके यजमानों के नाम एवं पते रहते हैं तथा वे अपना हस्ताक्षर भी कर देते हैं और ऐसा निर्देश कर देते हैं कि उनके वंशज उसी गयावाल कुल के लोगों को अपना पुरोहित मानें। इस प्रकार गयावालों की बड़ी-बड़ी हवेलियाँ और उससे सम्बन्धित भिन्न-भिन्न प्रकार के साजो-सामान इस कलियुग में राजा और राजमहल की याद को जीवन्त बनाते हैं। गयावालों की अपनी कूट-भाषा भी है जिसका प्रयोग वे बाहरी श्रद्धालुओं के समक्ष अपनों से वार्तालाप क्रम में करते हैं।

सन् १८५७ ई. की सैनिक राज्य क्रान्ति भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन की पहली कड़ी के रूप में हम देखते हैं कि ब्रिटिश शासकों ने सुरक्षा की दृष्टि से गया का नवनिर्माण प्रारम्भ कर दिया। गया की पुरानी घनी बस्ती विष्णुपद मन्दिर के चारों ओर पिता महेश्वर तक मुख्यतः गलियों में तथा फल्गु नदी के किनारे पिता महेश्वर से उत्तर की ओर रामशिला पर्वत की ओर बिखरी हुई थी। चार फाटकों के बीच बसा गया शहर यहाँ के धार्मिक महत्त्वों को सँजोये गया नगर की सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं कला की गौरवमयी कहानी बतला रही है और अपनी प्राचीनता का भी हमें स्मरण करा रही है कि यह शहर विश्व के प्राचीन नगरों में एक है जिसका समृद्धिशाली इतिहास सदियों पुराना है तथा जो सृष्टि निर्माण काल से जुड़ा हुआ है।

मोक्षधाम गया हिन्दू धर्मावलम्बियों के लिए आस्था का केन्द्र है। सिख, इस्लाम, ईसाई और जैन धर्मावलम्बी भी गया की ओर सहज ही श्रद्धा से देखते हैं। हर संघर्ष और आन्दोलन की जन्मभूमि गया रहा है। ज्ञान एवं धर्म के साथ यह क्रान्तिकारियों तथा सामाजिक परिवर्तनकारियों की प्रिय कर्मभूमि रहा है। भौगोलिक एवं सांस्कृतिक बिहार को बंगाल से पृथक कर बिहार एवं उड़ीसा के नाम से प्रशासनिक पहचान देते हुए २२ मार्च १९१२ ई. को सर चार्ल्स स्टुअर्ट बेली ने लेफ्टिनेण्ट गवर्नर का कार्यभार ग्रहण कर १ अप्रैल १९१२ ई. को स्वतंत्र रूप से कार्य करना प्रारंभ कर दिया। उड़ीसा से भी पृथक् होने के लिए बिहार प्रान्त के लिए गठित समिति तथा आन्दोलन का प्रारम्भ गया से ही हुआ था जिसमें गया निवासी स्वर्गीय नन्दकिशोर लाल ने गया में ही रहकर इस कार्य के लिए सक्रिय भूमिका निभायी थी और बिहार के पृथक्करण की नींव गया में ही डाली थी।

पुरातत्त्व एवं ऐतिहासिक धरोहर के रूप में गया की शक्तिपीठ मंगलागौरी, कामाख्या संकटा, ढ़ोंगेश्वरी, कौलेश्वरी आदि दर्शनीय पूजा-स्थल अपने आप में सम्प्रदाय विशेष एवं धार्मिक मान्यता के इतिहास के साथ पुरातत्त्व के महत्त्व को समेटकर पर्यटन क्षेत्र में अपना विशेष स्थान रखते हैं। गया शहर के उत्तरी छोर पर रामशिला पर्वत के पूर्वी भाग में शैवाल गणेश की हरे मूँगे की प्रतिमा अद्वितीय महत्त्व का पर्यटन क्षेत्र है। बेला से १० किलोमीटर की दूरी पर पूरब की ओर नागार्जुनीय गुफा अपने स्वरूप गठन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण इतिहास को समेटकर आज भी गया को पर्यटन भूमि में महत्त्वपूर्ण स्थान दे रहे हैं।

सुरम्य पहाड़ी, मनभावन झरना, बरसाती नाले व विशाल उपवन के बीच बसा यह गया नगर देश के प्राचीन समृद्ध शहरों में एक है। देश के जिन क्षेत्रों में धर्म, साहित्य व इतिहास की रचना की गयी उसमें प्राचीनकालीन मगध प्रदेश के अन्तर्गत गया का भी स्थान है जिसे आज श्राद्ध, तर्पण और पिण्डदान की अकाट्य नगरी के रूप में प्रतिष्ठा दी गयी है। गया की महिमा का वर्णन हमें छह पुराणों में मिलता है जिनमें से कुछ को यहाँ लिखा भी गया है जिनसे यह स्पष्ट होता है कि गया को भगवान् विष्णु और माता मंगला गौरी का आशीर्वाद प्राप्त है। गया की कथा विष्णुभक्त

धर्मनिष्ठ असुर गयासुर पर मूल रूप से निर्भर है। मान्यता है कि गयासुर के पुण्य प्रताप का ही ही प्रभाव है कि आज भी इस नगरी को श्रद्धाभाव से गयाजी कहा जाता है। भक्तों की नजर में पाँचवें धाम के रूप में ख्यात् गया में श्राद्ध, पिण्डदान और देवताओं के दर्शन के लिए वर्ष भर तीर्थयात्रियों की भीड़ लगी रहती है। विश्व के हर कोने में रहने वाले हिन्दू श्रद्धालु जीवन में एक बार गया के दर्शन करने की अभिलाषा रखते हैं। गरुड़ पुराण से हमें यह जानकारी मिलती है कि गया पृथ्वी का सर्वश्रेष्ठ स्थल है। जीवन-चक्र से मुक्ति और स्वर्ग प्राप्ति की भावना ने गयातीर्थ के धर्मानुष्ठान को इस घोर कलियुग में जीवन्त बनाये रखा है। इसके अतिरिक्त इस विष्णु नगरी में श्री विष्णु मन्दिर के अतिरिक्त दर्जनों वैष्णव मन्दिर, माता मंगला गौरी मन्दिर सहित लगभग बीस देवी मन्दिर, लगभग तीन दर्जन शिव मन्दिर, श्री भैरो मन्दिर, विश्वकर्मा मन्दिर, शनि मन्दिर, प्राकृतिक देव मन्दिर एवं चौक चौराहे पर बने मन्दिरों के कारण गया की ख्याति सम्पूर्ण देश में है।

अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि पितृपक्ष मेला और पिण्डदान आदि अनुष्ठान राष्ट्रभक्ति और राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने वाले हैं, जातीय भेदभावों को भूलकर सामाजिक सौहार्द्र सुदृढ़ करने वाले हैं तथा समृद्धि को बढ़ावा देने और लोकतंत्र तथा विश्व कल्याण की भावना से ओतप्रोत है। वास्तव में इतिहास लेखन का सभ्यता के विकास में अभूतपूर्व योगदान है। मानव जीवन के समस्त परोक्ष-अपरोक्ष विषयों का लेखन इतिहास है जिसमें तथ्यान्वेषण आवश्यक है। राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में, राष्ट्र विकास एवं चेतना में क्षेत्रीयता के महत्त्व, क्षेत्रीय जनता की गतिविधियों का रेखांकन कर उसका प्रकाशन आवश्यक है। यह समाज और आर्थिक व्यवस्था की उन्नति, मानव विकास पूर्व की घटनाओं से सबक और विभिन्न विषयों के अन्तःसम्बन्धों को भी विवेचित-विश्लेषित कर सकता है। इसीलिए एक विकसित इतिहास चेतना की सतत वर्तमानता किसी समाज को जीवन्त बनाये रखने की एक आवश्यक शर्त होती है।

सन्दर्भः

१. बलदेव प्रसाद द्वारा लिखित गया के प्राचीन तीर्थों के नाम, दि सोसायटी ऑफ इण्डियन कल्चर द्वारा प्रकाशित गया, १९५४ - सम्पूर्ण पुस्तक पढ़ें।
२. मत्स्यपुराण - २२.४.५६
३. ऋग्वेद - १०/१४६/१; स्कन्दपुराण - ११.११
४. वायुपुराण - ८५/२५-२७
५. वही - १०६/७३-८४
६. अग्निपुराण - ११४/३३-३९
७. गरुड़पुराण - ८२/२
८. अग्निपुराण ११४/३७
९. एपिग्राफिया इण्डिका - जिल्द २१, पृ. २११ एवं २१९
विशेष द्रष्टव्य- रवि, डॉ. राकेश कुमार सिन्हा का- (१)पी-एच.डी. शोधप्रबन्ध- गया के प्राचीन देवोस्थलों का ऐतिहासिक सर्वेक्षण, (२) डी.लिट् शोधप्रबन्ध- गया की पिण्ड वेदियाँ (मगध विश्वविद्यालय बोधगया)

ऐतिहासिक गाँवों की धरती मगध

राकेश कुमार सिन्हा 'रवि'*

अखिल विश्व के मानस पटल पर ऐतिहासिक, पुरातात्त्विक और आध्यात्मिक धरती के रूप में मगध की गौरव गरिमा का व्याख्यान यत्र-तत्र-सर्वत्र हुआ है। इतिहास की जाग्रत भूमि और पुरातत्त्व का अनूठा क्षेत्र मगध ही है जो आरम्भिक एक हजार वर्षों से ज्यादा कालावधि तक सम्पूर्ण देश का सिरमौर बना रहा। आज भले ही मगध प्रदेश बिहार की भूमि में सिमट गया है पर कभी इसका क्षेत्र बहुत विशाल रहा और आज के झारखण्ड, ओडिशा, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश से लेकर बंगाल तक की भूमि के भाग इसी मगध राज्य में सम्मिलित थे जिसकी वैभवता व गौरव गरिमा के वर्णन न सिर्फ साहित्यिक कृतियों में वरन् पुरातात्त्विक साक्ष्यों से भी प्राप्त होता है।

तकरीबन नौ जिलों में आबाद आज का मगध प्रदेश दस हजार से अधिक बड़े गाँवों का विशाल साम्राज्य है जिसका अपना गौरवपूर्ण इतिहास रहा है। ये महनीयता के प्राप्त गाँव पटना, गया, जहानाबाद, नवादा, औरंगाबाद, नालन्दा, शेखपुरा, जमुई, लखीसराय आदि जनपद में आबाद हैं जिनमें नवपाषाणकालीन स्थल से लेकर आधुनिक युग के इतिहास सम्पन्न गाँव की गणना की जा सकती है। इन प्रदेशों में नगर-क्षेत्र में विराजमान धरोहर, स्मारक व प्राच्य विरासत से तो कमोवेश यहाँ के लोग परिचित हैं पर सुदूर गाँव क्षेत्र के पुरासम्पन्न गाँव की चर्चा अभी तक अपूर्ण व अप्रचारित है। समृद्ध व स्वर्णिम प्राचीन और सोचनीय व दुखद वर्तमान का रूप लिए मगध के ये सभी स्थल इतिहास-पुरातत्त्व के ऐसे दस्तावेज हैं जिनके अध्ययन अनुशीलन से मगध की महिमा और भी मुखरित हो उन्नति के पथ पर शेखरिभूत होगी और ऐसे ही गाँवों की चर्चा प्रस्तुत आलेख का मुख्य उद्देश्य है।

महिमायुक्त गरिमामय धरती जैसे तीन शब्दों के प्रथमाक्षरों से निर्मित मगध भारतीय इतिहास की वही भूमि है जहाँ आरम्भिक काल से आज तक कोई-न-कोई स्मारक व धरोहर का निर्माण हुआ है और इतिहास के हरेक कालखण्ड में यह धरती किसी-न-किसी रूप में चर्चित रही है। समय के साज पर अभ्युदित व विकसित ऐसे स्थानों की चर्चा इस प्रकार की जा सकती है-

*'अखिलेशायन', गोदावरी (पैरोस्थान), गया - ८२३००१ (बिहार); e-mail : kumardrakesh85@gmail.com

कुर्किहार

सम्पूर्ण मगध ही नहीं वरन् पूरे बिहार के पुरास्थल में कुर्किहार का सुनाम है जहाँ से तथागत की विविध शैली की मूर्तियाँ पाषाण और खासकर अष्टधातु की प्राप्त हुई हैं। यह स्थान गया से २६ कि.मी. दूरी पर है जहाँ वजीरगंज मोड़ से पुरा होकर जाना सहज है। यहाँ अभी भी तीन बड़े टीले हैं साथ ही यहाँ विराजित वागेश्वरी मन्दिर में हिन्दू-बौद्ध मूर्तियों की उपस्थिति दर्ज है। यहीं पास में है 'हड़ाही स्थान', जहाँ से श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी हरण की कथा को सम्बद्ध किया जाता है। कुर्किहार का प्राच्य नाम 'कुण्डिनपुर' है जिसे कहीं-कहीं कुर्क विहार भी कहा गया है। इसी के पास धुरियावाँ और सिंधौल नामक प्राच्य स्थल है जहाँ तथागत के विग्रह देखे जा सकते हैं।

केसपा

राजे-रजवाड़ों की धरती टिकारी से ११ कि.मी. उत्तर कश्यपापुरी है जिसे आजकल केसपा कहा जाता है। प्राचीन काल में यह सप्तर्षियों में एक कश्यप मुनि का साधना स्थल था जहाँ बौद्ध काल में महाकश्यप का निवास-स्थान बना। विश्वास किया जाता है कि गया से जुड़े तीनों कश्यप वर्ग - गया कश्यप, नदी कश्यप और उरुवेल कश्यप का यही साधना स्थल था जहाँ आज भी माँ तारा मन्दिर व उसमें स्थापित दर्जनों पालकालीन विग्रहों का दर्शन किया जा सकता है। मन्दिर के बाहरी चबूतरे पर तीन दर्जन से अधिक खण्डित मूर्तियाँ हैं और पास में ही गढ़ क्षेत्र का दर्शन होता है। यहाँ गाँव क्षेत्र में भी मूर्तियाँ रखी गयी हैं।

बराबर

मगध के लोकाख्यानों में 'हिमालय' के नाम से चर्चित बराबर वही पर्वत है जहाँ विश्व में प्रथमेव आधुनिक युग में आजीविक साधुओं के निवासार्थ पाषाण गुफाओं का निर्माण कराया गया। यहाँ कुल मिलाकर सात बड़े-बड़े व अलंकृत पाषाण गुफा विराजमान हैं जिनके निर्माण का श्रेय सम्राट् अशोक और उनके पौत्र दशरथ को दिया जाता है। पर्वत की तलहटी में पातालगंगा और शिखर खण्ड पर 'सिद्धेश्वर-महादेव मन्दिर' है जिसके प्रथम स्थापन व पूजन का श्रेय बलिपुत्र बाणासुर को दिया जाता है। मौर्यकालीन विरासत के रूप में चर्चित बराबर जहानाबाद जिले में है जहाँ गया जिले के बेलागंज व जहानाबाद के मखदुमपुर से होकर जाना सहज है। वर्ष १९९६ में यहाँ एक संग्रहालय भी बनाया गया है जहाँ बराबर क्षेत्र से प्राप्त मूर्त अवशेषों का बेजोड़ संग्रह है।

कौआडोल

बराबर से ७ कि.मी. दूरी पर कौआडोल पर्वत है जहाँ पाषाण खण्ड में फ्रेमतुमा काट-काटकर शताधिक हिन्दू व बौद्ध मूर्तियों का अंकन देखने योग्य है। पर्वतीय खण्ड के सटे सामनेर गाँव है जिसे कभी 'श्रमणपुर' कहा जाता था। यहाँ आठ फीट ऊँची व आकर्षक मुखमण्डल के लिपियुक्त तथागत के विग्रह देखे जा सकते हैं। पास में ऊँचे टीले पर पाषाण स्तम्भों का दर्शन

इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि कभी यहाँ विशाल बौद्ध विहार की उपस्थिति दर्ज थी। पाषाण कलाकारिता का ऐसा विशिष्ट उदाहरण मगध में अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। जानकारी मिलती है कि यहाँ बाल श्रमणों को दीक्षित किया जाता था।

गुरपा पर्वत

गया से ४५ कि.मी. दूर गया-गोमो रेल खण्ड पर गुरपा स्टेशन से गुरपा पर्वत तक जाया जा सकता है जिसे गुरुपाद गिरि भी कहा जाता है। यहाँ पर्वत शिखर पर प्राचीन व नवीन बौद्ध स्तूप व मनौती स्तूप के दर्शन किये जा सकते हैं। गुफा मन्दिर, माँ गुरुपाषिणी का स्थान व गुरुपाद जी का साधना भवन यहाँ का प्रमुख आकर्षण है। लगभग ११०० फीट ऊँचे इस पर्वत का सम्बन्ध गुरुपाद जी से है जिन्हें यत्र-तत्र महाकश्यप भी कहा गया है। सम्राट् अशोक के जमाने में भी यहाँ एक स्तूप निर्माण की चर्चा मिलती है। पर्वत के तीन शिखरों में एक अनगढ़ शिखर के तलीय भाग में प्राच्य ईंटों का ढेर यह बताने में सक्षम है कि पालकाल में यहाँ एक चैत्य था।

धराऊत

मगध के हिन्दू-बौद्ध स्थलों में धराऊत की चर्चा प्रथम पंक्ति में की जाती है। राजा चन्द्रसेन की नगरी धराऊत में राजा के नाम पर ही विशालतम पोखर है जिसे चन्द्रोखर (चन्द्र पोखर) कहा जाता है जो आज भी २००० x ८०० फीट लम्बा-चौड़ा है। जहानाबाद जिले में अवस्थित यहाँ तक मखदुमपुर बाजार से ११ कि.मी. दूरी तय करके आया जा सकता है जहाँ तालाब किनारे बुद्ध मन्दिर, नृसिंह मन्दिर व बूढ़े महादेव का स्थान है। यहाँ गाँव के प्रदेश के पूर्व तीन बड़े-बड़े टीले देखे जा सकते हैं जिन पर आज दलित बस्तियों का साम्राज्य कायम हो गया है। यहाँ से विपुल मात्रा में हिन्दू-बौद्ध मूर्तियाँ, स्वर्ण-रजत व ताम्र सिक्कों के साथ मनौती स्तूप, मनके, चूड़ियाँ व तीन तरह के मृद्भाण्ड मिलते हैं। कभी यहीं बौद्ध जगत् का प्रसिद्ध 'गुणमति विहार' था जहाँ की यशःकृति दूर देश तक विस्तृत थी और नालन्दा विश्वविद्यालय के उपपीठ के रूप में वर्षों तक यह विहार ख्यातनाम रहा।

बाँकेबाजार

गया जिले का यह पर्वतीय स्थल रॉक-पेण्टिंग के नाम पर खूब चर्चित है जहाँ ललथरवा गाँव से कच्चे मार्ग द्वारा जाया जा सकता है। यहाँ पर्वत पर बने बौद्ध स्तूप, महाविहार के अंशावशेष व मनौती स्तूप के खण्डित अंश का दर्शन इस तथ्य में बल प्रदान करता है कि पाषाण काल से बुद्ध काल तक यह स्थल चर्चित रहा। वर्ष १९८३ में यहीं पास के पर्वत पर शिवलिंग की प्राप्ति व सूर्य मन्दिर निर्माण के बाद यह स्थल पर्वतीय तीर्थ के रूप में चर्चित हो गया है। यहाँ से गुप्तकालीन कला-कृतियों के अतिरिक्त पाल काल के पुरावशेष भी प्राप्त हुए हैं। इस पर्वत पर यत्र-तत्र पुरावशेष को देखने से प्रतीत होता है कि लम्बी अवधि तक यह पर्वत जनाबाद रहा।

पचार

औरंगाबाद जिले में रफीगंज से साढ़े तीन कि.मी. दूरी पर पचार पर्वत है जहाँ एक छोटे गुफा में तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ जी की प्रतिमा देखी जा सकती है। यहीं पर खण्डित हिन्दू व बौद्ध मूर्तियाँ भी हैं तो पास में पालकालीन विहार के अंश भी मौजूद हैं। मगध में जैन धर्म का एक पुरातन साधना केन्द्र है पचार, जिसका नवशृंगार रफीगंज के जैन परिवारों द्वारा किया गया है। ऐसे रफीगंज शहर में भी एक आकर्षक व विशाल जैन मन्दिर है जो करीब १०० वर्ष प्राचीन है।

दुब्बा-भूरहा

गया जिले के गुरुआ प्रखण्ड में अवस्थित दुब्बा विशाल गढ़ व बुद्ध मूर्तियों के लिए चर्चित है। इस गाँव में बुद्धमूर्ति, मनौती स्तूप, पाषाण स्तम्भ व खण्डित मूर्ति भरे पड़े हैं। पास में ही है भूरहा अर्थात् झुरणाहा तीर्थ जहाँ दुर्वासा ऋषि ने साधना के बाद एक जलीय स्रोत का उद्धार किया। ऐसा कहा जाता है कि भारत देशीय सातों पवित्र नदियों का जल साल भर निकलता रहता है। चूँकि यह छिद्र से निकलता है अत: इस कारण यह भूरहा कहलाता है कारण कि मगही में छिद्र को 'भूर' कहते हैं। यहाँ विशुआनी पर्व में हरेक अप्रैल में विशाल मेला लगा करता है। इसी के आगे का मण्डा पर्वत भी ऐतिहासिक है।

देव

भारतवर्ष में प्रायश: देवालय पूर्वाभिमुखी बनाये जाते हैं पर पश्चिम प्रवेश द्वार का यह सूर्य मन्दिर बिहार के मध्यकालीन देवालयों में चर्चित है जहाँ सूर्य देवता अपने तीनों रूपों में; यथा उदयाचल, मध्याह्न व अस्ताचल विराजमान हैं। मन्दिर का शिखर व अलंकरण भुवनेश्वर के लिंगराज मन्दिर से साम्य रखता है। मन्दिर के बाहरी परकोटे में प्राच्य हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ देखी जा सकती हैं। यह पाल काल की उत्कृष्ट कृति है। कहते हैं औरंगजेब के जमाने में मन्दिर विध्वंसकों ने यह घोषणा की थी कि अगर यह मन्दिर सत्य, निष्ठा व आस्था का दिव्य प्रमाण है तो यह रातोरात पश्चिममुखी हो जाए नहीं तो सुबह ये तोड़ दिया जायेगा। विवरण है उसी रात मन्दिर पूर्व से पश्चिममुखी हो गया। ऐसे गौर से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि मन्दिर पश्चिम रुख से बनाया ही गया है। यहाँ ठीक बगल में देव राजवंश का किला व आगे बड़ा सूर्यतालाब देखा जा सकता है।

उमगा

पर्वत पर ५२ तालाब व ५२ मन्दिर के लिए प्रसिद्ध उमगा राष्ट्रीय राजमार्ग २ पर मदनपुर के ठीक पास है। यहाँ का मन्दिर भी देव सूर्य मन्दिर, से मेल खाता है। यहाँ पर्वत पर शिव मन्दिर, जगन्नाथ मन्दिर, माँ उमंगेश्वरी का स्थान व प्राचीन देवालय देखे जा सकते हैं। वर्ष २०१५ में पहली

बार यहाँ 'उमगा महोत्सव' का आयोजन जनवरी में किया गया जहाँ पर्यटन विभाग से काफी कुछ कार्य कराये गये। इस पूरे पर्वत पर निर्माण के विस्तृत दास्तान भ्रमण के बाद जाना-समझा जा सकता है। यहाँ पहाड़ी शिखर पर चार मन्दिरों के ध्वंसावशेष हैं।

अपसढ़

नवादा जिले के वारीसअलीगंज (वारसलीगंज) से यहाँ आना सहज है जहाँ से कुल दूरी ६ कि.मी. की है। मागध गुप्तवंश के केन्द्र अपसढ़ में विष्णु मन्दिर की चर्चा प्रायशः इतिहास की पुस्तकों में है पर आज वहाँ एक विशाल गढ़ (उस पर कटी सिर की काले पत्थर की बुद्ध मूर्ति) व पास में वाराह स्थान देखा जा सकता है। विशाल शिवलिंग, देवी मूर्ति, स्थान-स्थान पर रखे खण्डित मूर्ति व आगे का पार्वती तालाब व पार्वती गुफा इसके इतिहास-पुरातत्त्व के तत्त्व को और भी समृद्ध बनाता है। राजा आदित्यसेन की नगरी अपसढ़ में देवी द्वारा बनाये देवालय तो अब नहीं हैं पर इसी महारानी ने सुप्रसिद्ध देवघर के महादेव मन्दिर निर्माण में योगदान दिया था।

देवकली

गया जिले के परैया प्रखण्ड में स्थित व गुरुआ प्रखण्ड की सीमा रेखा में अवस्थित यह एक पुरा सम्पन्न गाँव है जहाँ गाँव के बाहरी भाग में विशाल तालाब व पालकालीन मूर्तियों से समृद्ध देवालय का दर्शन किया जा सकता है। देवकली में गाँव के किनारे एक ओर आवासीय भवन तो दूसरी तरफ समानान्तर क्रम से गढ़ का विशाल क्षेत्र आज भी देखा जा सकता है। यहाँ के शिवलिंग पर पाषाण ढक्कन का प्रयोग अनूठा व आश्चर्य भरा है। सम्भवतः लोग लिंग की पूजा कर उसे ढँक दिया करते होंगे। इस पूरे गाँव में गणेश, भैरव, सूर्य, विष्णु, उमाशंकर, लक्ष्मी-विष्णु, लकुलीश, सिंहवाहिनी दुर्गा व चित्रगुप्त के साथ सैकड़ों खण्डित मूर्ति व पाषाण खण्ड देखे जा सकते हैं। यहाँ से मूर्ति की चोरी भी बार-बार हुई है। हमारे सर्वेक्षण क्रम में यहाँ से एक मन्दिर का ध्वंसावशेष का भी पता चला जिसकी रिपोर्ट पाते ही के.पी. जायसवाल संस्थान पटना इस दिशा में कार्य आगे बढ़ा रहा है।

टिकारी किला

मगध में राजे-रजवाड़ों के नाम की जहाँ चर्चा चलती है उनमें टिकारी का शान-मान सर्वाधिक रहा। आज भी यहाँ ५२ आँगन व ५२ दरवाजे के विशाल किले का खण्डहर देखा जा सकता है जहाँ दिन में ही जाने में डर लगता है। इस नगर की किलेबन्दी, प्रवेश द्वार का दर्शन व स्थान-स्थान पर दुर्ग व रक्षा-प्राचीर इस नगर की वैभवता को दर्शाता है जहाँ आज वीरानी का साम्राज्य कायम है। किले के बगल का देवालय व सामने का तालाब भी उपेक्षित है।

गुनेरी

यह मगध का सौभाग्य रहा कि इसी धरती पर तथागत बुद्ध को आत्मज्योति की संप्राप्ति

हुई और वह स्थल बोधगया के नाम से विश्व विश्रुत हुआ और इसकी चर्चा संसार के देशों में है। तथागत ज्ञान पाकर धर्मचक्र प्रवर्तन हेतु मृगदाव (सारनाथ) गये और मार्ग में जहाँ-जहाँ विश्राम किये उनमें गुनेरी प्रथम पड़ाव व रात्रि विश्राम स्थल के रूप में जाना जाता है। यहाँ की बुद्ध मूर्ति के नीचे अंकित अभिलेख प्रतिहारवंशीय राजा का उल्लेख करता है। यहाँ के मन्दिर में लगभग सौ पुरावशेष हैं जिनमें हिन्दू व बौद्ध विग्रह दोनों हैं। पास में तालाब के पास भी कुछ खण्डित मूर्तियाँ हैं। पुरातत्त्व विभाग द्वारा संगृहीत होने के बाद यह स्थल उपेक्षित है।

कावँर

सम्पूर्ण मगध में अपनी विशाल गढ़ के लिए कावँर का नाम लिया जाता है जो कभी ५२ सूबा गढ़ के नाम से प्रसिद्ध रहा है। यहाँ गढ़ के पास ही महादेव स्थान में पचास के करीब पालकालीन मूर्तियाँ हैं। यहाँ के गढ़ पर अब रास्ता बन गया है। आज सम्पूर्ण गढ़ अतिक्रमण का शिकार है। इस गढ़ से छोटे-बड़े आकार के मृदभाण्ड के साथ मनके, पाषाणखण्ड, चूड़ियाँ, हड्डी व खण्डित विग्रह की प्राप्ति यत्र-तत्र होती रहती है। इसी के आगे 'आंती' नामधारी ऐतिहासिक गाँव है जिसका सम्बन्ध मगध के महान विदूषक पं. देवन मिश्र से जोड़ा जाता है। कावँर जाने के लिए कोंच से दरेरजी मोड़ जाना होता है। यह स्थान गया से ४२ कि.मी. दूरी पर है।

मरहक पहाड़ी व बैजू तीर्थ

आज भी मगध के गर्भ में कितने ही पुरावशेष दर्ज हैं यह कौन जानता है? ऐसा ही एक लिंग का धरती से उदय सन् २००० के श्रावण तीज तिथि को हुआ। यह स्थान गया शेरघाटी पथ पर चेरकी के सन्निकट मोरहर नदी के किनारे है। यहाँ पर्वत पर पाषाण खण्डों की बनायी गयी सीढ़ी करीब १५०० वर्ष प्राचीन है। मृदभाण्ड के खण्ड, ईंटों के टुकड़े व काले पत्थर की खण्डित मूर्तियाँ यहाँ की प्राचीनता के मूक प्रमाण हैं। आज यह स्थान बैजू तीर्थ बन गया है जहाँ श्रावण के दिनों में दूर-दूर से लोग आते हैं।

चिलोर

गुरुआ प्रखण्ड में विराजमान यह स्थान मिट्टी के विशाल राजप्रासाद के लिए प्रसिद्ध रहा जहाँ आज भी २५ फीट ऊँचा गढ़ है। यह मोरहर के किनारे श्री बैजूतीर्थ के दूसरी तरफ है। यहाँ से उत्कृष्ट व सुघड़ मृदभाण्ड की प्राप्ति हुई हैं जिनमें उत्तरी कृष्ण मार्जित मृदभाण्ड (NEP) प्रमुख है। कहते हैं यहाँ पहले कोल राजाओं का गढ़ था। इसके आसपास 'बारा', 'राजन', 'कोलौना', 'येरकी' व आगे 'नसेर', 'तरोवा' तक कोल गढ़ी के अवशेष देखे जा सकते हैं।

हसराकोल-शोभानाथ विशुनपुर

गया जिले में जहाँ खूब मूर्ति पायी गयी वही है विशुनपुर, जहाँ गया नवादा पथ पर पुनौवा मोड़ होकर हसराकोल शोभानाथ पार करके जाया जा सकता है। राजगीर बोधगया के बीच का यह

स्थल बुद्ध के जमाने से चर्चित रहा है। ऐसे पुनावा में भी देवीस्थान में चार दर्जन से अधिक देव विग्रह देखे जा सकते हैं। हसराकोल भी कोल राजाओं का पुरातन आबाद क्षेत्र है जहाँ आज एक शिवमन्दिर विराजित है वह भी खण्डित। शोभानाथ पर्वत के शिखर पर एक आयताकार विशाल चबूतरा है जहाँ तथागत धर्मोपदेश देकर स्थानीय जनों को उपकृत किया। विशुनपुर की मूर्तियाँ देश के बड़े बड़े संग्रहालयों में हैं जहाँ से सूर्य, विष्णु व देवी की मूर्ति विपुल मात्रा में मिली है।

तपोवन

मगध में ब्रह्मा जी के चारों पुत्र यथा- सनत, सनत्कुमार, सनक, सनातन के नाम पर चार प्राचीन कुण्ड यहाँ बने हैं जहाँ मकर संक्रान्ति के दिन दूर देश के लोगों के आगमन से मेला लग जाता है। जेठियन पर्वत पार करके यहाँ तक आया जा सकता है जिसके एक तरफ रखा प्राचीर की भाँति लम्बवत पर्वत है। यहाँ का पानी भी राजगीर की भाँति गर्म व स्वास्थ्यप्रद है। यहाँ हरेक तीन वर्ष पर मलमास (अधिकमास) का मेला लगा करता है। यहाँ ब्रह्माचरण मन्दिर, कपिलेश्वर महादेव मन्दिर, कुण्ड मन्दिर व मनौतीस्थान के साथ दो दर्जन से अधिक पुरामहत्त्व के देव विग्रह यत्र-तत्र रखे हैं।

जेठियन

पुरातन काल में 'ज्येष्ठिवन' के नाम से चर्चित यह स्थान गया से ४५ कि.मी. दूरी पर है जहाँ अतरी होकर आना सहज है। यहाँ बुद्ध मन्दिर, चार शैली की बुद्ध मूर्ति, विशाल तालाब, देवी स्थान आदि देखा जा सकता है। यहाँ की प्रसिद्धि इस बात से है कि तथागत भगवान् बुद्ध को यहाँ लाठी (बाँस) से मारा गया और बाँस को फेंकते ही वह खेत में लगकर पुनः हरा-भरा हो गया। जापान के यंग ब्याज एसोसिएशन ने यहाँ का मन्दिर जापानी स्टाइल में ही बनवाया है जिसके पीछे मनौती स्तूप व खण्डित मूर्तियाँ रखी हुई हैं।

नगमा गढ़

गुरुआ क्षेत्र के दर्जनों गढ़ के बीच यह एक विशालकाय गढ़ क्षेत्र है जहाँ से मूर्तियाँ, स्तम्भ, मृदभाण्ड व मनौती स्तूप का विशाल संग्रह प्राप्त होता रहता है। इस गढ़ के पास रिंग बेल कूप का दो उदाहरण मिला है। यहाँ महाविहार के अवशेष प्राप्त हुए हैं। यहाँ एक मन्दिर में बुद्ध की आकर्षक व प्रभावोत्पादक मूर्ति देखी जा सकती है। उसकी छत पर भी मूर्तियों का भण्डार है। पास में ही 'देवरिया' गाँव भी पुरासम्पन्न है।

दाबथू एवं लाट

जहानाबाद जिले के हुलासगंज प्रखण्ड में दाबथू प्राचीन देवालयों के लिए प्रसिद्ध रहा है जहाँ आज भी चार प्राचीन व खण्डित मन्दिर के अवशेष देखे जा सकते हैं। कहते हैं पहले यहाँ का नाम 'देवदतू' था जहाँ हरेक देवता का देवालय था। इस गाँव में खण्डित मूर्तियाँ यत्र-तत्र हैं। इसी गाँव से तीन कि.मी. दूरी पर लाट गाँव है जहाँ ५२ फीट का एकाश्म स्तम्भ न जाने कब से

खेतिहर भूमि के बीच खुले आकाश के नीचे पड़ा है। स्थानीय लोग इसे 'लाट बाबा' कहते हैं और पैसा-पूजन सामग्री चढ़ाते हैं। इससे जुड़ा भवन कितना बड़ा होगा यह इस स्तम्भ को देखकर अंदाजा लगाया जा सकता है।

कोंच

अपने ईंट निर्मित शिव मन्दिर के लिए चर्चित कोंच गया से ३५ कि.मी. दूरी पर है जहाँ नागर शैली में आयताकार प्लेटफॉर्म पर शिव मन्दिर बना है इसे कोचेश्वर मन्दिर कहा जाता है। मन्दिर के अन्दर कक्ष में और बाहरी बरामदे में नीचे की ओर कुल मिलाकर चार दर्जन से अधिक उत्कृष्ट मूर्तियाँ देखी जा सकती हैं जिनमें दशावतार, गणेश, वाराह, बुद्ध, सूर्य, विष्णु, शिवलिंग, भैरव व उमाशंकर प्रमुख हैं। यह मन्दिर राज्य पुरातत्त्व विभाग द्वारा संगृहीत है। इसी से तीन कि. मी. दूरी पर मोंक गाँव है जहाँ माँ वागेश्वरी की पालकालीन सात फीट ऊँची आकर्षक प्रतिमा है।

संदेश्वर-जयपुर

संदेश्वर-जयपुर नामक स्थान गया जिले के फतेहपुर प्रखण्ड में ढाढर नदी के किनारे है। संदेश्वर शिव मन्दिर के लिए तो जयपुर विशाल गढ़ क्षेत्र के लिए प्रसिद्ध है जहाँ गढ़ पर निर्माण के भी कुछ अंश प्राप्त होते हैं। संदेश्वर भक्त प्रह्लाद के गुरु संडमार्क जी का साधना स्थल है जहाँ विशाल शिवालय व पास में तालाब है। मन्दिर परिसर में एक से बढ़कर एक उत्कृष्ट मूर्त विग्रहों का संग्रह देखने लायक है।

कोच्चो

गया जिले में नृसिंह देवता के पूजन के लिए प्रसिद्ध यह स्थान गुरारू-गुरुआ सड़क मार्ग पर डिहा के सन्निकट है जहाँ मन्दिर परिसर में एक से बढ़कर एक पालकालीन उत्कृष्ट विग्रह दर्शनीय हैं। यहाँ मन्दिर प्रवेश के लिए रखे सीढ़ी के रूप में प्राचीन स्तम्भ पुरातन मन्दिर के ही अंश हैं। पास में बारह फीट से ज्यादा ऊँचा गढ़ है जहाँ जंगली झाड़-फूस का साम्राज्य कायम है।

देवकुण्ड

औरंगाबाद के हसपुरा से देवकुण्ड जाना सहज है जहाँ च्यवन ऋषि का साधना स्थल आज भी विराजमान है। यहाँ एक बड़े प्राकृतिक तालाब के पास ही दूधेश्वर नाथ महादेव का मन्दिर व विशाल ठाकुर बाड़ी देखा जा सकता है। यहाँ के मधुश्रवा (मदसरवां), भृगुरारी और देवकुण्ड को मिलाकर च्यवनांचल कहा जाता है जहाँ से च्यवन ऋषि का सम्बन्ध रहा है। महामुनि भृगु जी का आश्रम भृगुरारी में तो मदसरवां में श्री महेश्वरनाथ जी का प्राचीन व महिमाप्रद मन्दिर है।

उतरेण-पाली

सम्पूर्ण मगध में कुछ ऐसे भी पुरासम्पन्न गाँव हैं जो ठीक अगल-बगल में हैं और दोनों नाम जुड़वा रूप में साथ-साथ प्रस्तुत किये जाते हैं। ऐसा ही इतिहास-पुरातत्त्व से समृद्ध गाँव

उतरेण–पाली है जो गया से कोंच जाने के मार्ग में पर्चानपुर मोड़ से आगे सड़क के एक तरफ पाली तो दूसरी तरफ उतरेण की अवस्थिति है। उतरेण का सम्बन्ध अभिमन्यु की पत्नी महासुन्दरी उत्तरा से जोड़ा जाता है तो पाली का विशाल हद (तालाब) पालकालीन है जहाँ पास में दर्जनों पालकालीन खण्डित मूर्तियाँ देखी जा सकती हैं। उतरेण के सोमेश्वर महादेव मन्दिर में भी पालकालीन विग्रह पुराने समय से पूजित हैं।

धर्मारण्य-सरस्वती तीर्थ

बोधगया से निरंजना नदी पुल पार करके रति विगहा होकर सरस्वती तीर्थ सिंलौजा होकर धर्मारण्य तीर्थ तक जाना सहज है। सरस्वती तीर्थ वही स्थान है जहाँ छोटा नागपुर के पठार से निकली दोनों पहाड़ी नदी धारा लीलाजन (निरंजना) व मोहाने (मुहाने) का अदृश्य सरस्वती से संगम होता है। यहीं संगम पर 'सरस्वती मन्दिर' है जहाँ हरेक सोमवती अमावस्या को मेला लगा करता है। मन्दिर में साढ़े पाँच फीट का मातृ विग्रह के साथ पास में बोधगया के गिरि परिवारों का समाधि स्थल देखा जा सकता है जिस पर विविध आकार-प्रकार के शिवलिंग विराजित हैं। यहीं से चार कि.मी. दूरी पर धर्मारण्य है जहाँ महाभारत काल में पाण्डवों ने चातुर्मास किया था। यहाँ के रहट कूप और धर्म कूप का सम्बन्ध श्राद्ध पिण्डदान से है जहाँ पितृपक्ष में धार्मिक अनुष्ठान के नाम पर दूर-दूर से लोग आते हैं। यहीं पास का 'हथियार' गाँव भी ऐतिहासिक है जहाँ गढ़ के अंश मिलते हैं।

मखपा

टिकारी प्रखण्ड में अवस्थित यह स्थान टिकारी केसपा मार्ग पर है जहाँ मार्ग के किनारे ही एक बड़े प्राचीन टीले पर स्थापित देवालय में उत्कृष्ट पालकालीन मूर्त्ति शिल्प के साथ वराह देवता का विशाल विग्रह देखा जा सकता है। शाकलद्वीपी (शाकद्वीपीय) ब्राह्मणों का यह प्राचीन गाँव मध्यकाल में टिकारी राज्य के अधिकार क्षेत्र में पुष्पित-पल्लवित होता रहा।

लखैपुर

गया जिले के मोहनपुर प्रखण्ड में मोहाने नदी किनारे प्रखण्ड मुख्यालय से दो कि.मी. दूरी पर अवस्थित यह गाँव है जहाँ गाँव किनारे नदी के पास विशाल गढ़ व प्राचीन मन्दिर के अवशेष मिलते हैं। यहाँ से प्राप्त एक मूर्ति के पादखण्ड को के.पी. जायसवाल शोध संस्थान के निदेशक डॉ. विजय कुमार चौधरी मौर्यकालीन बताते हैं। यहाँ जलेश्वरनाथ का प्राचीन मन्दिर है। गढ़ के ऊपर कूप व ईंटों का दर्शन होता है। रानी लखिया के नाम पर यह स्थान 'लखैपुर' कहलाया जहाँ विकट परिस्थिति आने पर रानी ने कुएँ में छलांग लगाकर अपनी इज्जत बचायी परन्तु उनकी जान न बच सकी।

दरबार

बोधगया महन्त का यहाँ दक्षिणवर्ती शासन केन्द्र स्थापित था जहाँ आज भी गढ़ के अंश और उसी पर दरबार का तीन मंजिला मठ व पास में दरबारेश्वर शिव मन्दिर देखा जा सकता है। यहाँ मठ में सहस्रबुद्धा पैनल दीवार में लगा है तो पास के देवी स्थान में मनौती स्तूप भी रखा हुआ है। यहीं से तीन कि.मी. आगे 'मदेरिया स्थान' है जहाँ पर्वत पर 'देवी' व 'भैरो' का दो छोटा-छोटा मन्दिर है। यहाँ श्रावण पूर्णिमा को विशेष मेला लगा करता है।

डुंगेश्वरी

बोधगया के चतुर्दिक पवित्र सप्त बौद्ध स्थलों में डुगेश्वरी की गणना की जाती है जहाँ तथागत को मध्यम मार्ग की प्राप्ति हुई थी। यहाँ एक गुफा में डुंगेश्वरी देवी का स्थान है तो नये जमाने का बुद्ध मन्दिर भी आकर्षक है। वर्ष २०१५ के बुद्ध महोत्सव में यहीं से 'ज्ञान यात्रा' का आयोजन किया गया जो साढ़े छः कि.मी. दूरी तय करके बोधगया में सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

मीरा विगहा

जहानाबाद जिले के टेहटा रेलवे स्टेशन से मीरा विगहा जाना सहज है जहाँ पुरातत्त्वशास्त्री प्रकाश चरण प्रसाद जी की टीम ने एक प्राचीन मन्दिर का उद्‌भेदन किया। आज यह स्थान अन्नपूर्णा तीर्थ के रूप में ख्यात् है जहाँ के क्षेत्र में सैकड़ों पालकालीन मूर्तियाँ देखी जा सकती हैं। गढ़, टीले, तालाब व प्राचीन मृदभाण्डों की अधिकता स्पष्ट करती है कि पहले यहाँ मन्दिर नगरी की उपस्थिति दर्ज रही।

अमारुत

लीलाजन किनारे आम के बाग के कारण इस स्थान का नाम 'अमारुत' पड़ा है जहाँ आज भी सोलह फीट से ज्यादा ऊँचा गढ़, प्राचीन मन्दिर व मृदभाण्ड देखे जा सकते हैं। सड़क के दूसरी तरफ कोठवारा गाँव है जहाँ १९वीं शताब्दी का शिवालय स्थापित है। अमारुत का सम्बन्ध कोल राजगढ़ी के रूप में चर्चित है तो यहाँ बुद्ध के आगमन की भी चर्चा है।

पोगर

औरंगाबाद जिले में रफीगंज से आठ कि.मी. दूरी पर धावा नदी के किनारे पोगर गाँव है जिसे प्राच्य काल में पुष्पदन्तपुर कहा जाता था। यहाँ गाँव में ग्यारह शिवलिंग चारों तरफ व बीच में स्थापित हैं। गाँव में ही गढ़ व प्राचीन तालाब और कूप के दर्शन होते हैं। आगे सिन्धी गाँव है जिसका सम्बन्ध शृंगी ऋषि से जोड़ा जाता है।

पंडारक

मगध के सूर्य पूजन केन्द्रों में इसकी गणना की जाती है जो पटना-मोकामा रेल व सड़क

मार्ग पर विराजमान बाढ़ से निकट है। यहाँ का सूर्य मन्दिर 'पुण्यार्क' के नाम से प्रसिद्ध है जहाँ प्राचीन मन्दिर में पालकालीन विग्रह देखे जा सकते हैं। पास में ही विशाल सरोवर है जिसे सूर्यकुण्ड कहा जाता है।

गिरहिण्डा

शेखपुरा जिले में अवस्थित यह पर्वत शेखपुरा नगर से सटे है जहाँ पर्वत पर शिवशंकर का महिमामय मन्दिर है। इस पर्वत का सम्बन्ध भीम की पत्नी हिडिम्बा से जोड़ा जाता है। नये जमाने में यहाँ कुछ निर्माण होने से इस स्थान की रौनकता बढ़ी है।

मधड़ा

दूर-दूर तक शीतला तीर्थ के रूप में चर्चित यह स्थान नालन्दा जिला मुख्यालय से तीन कि.मी. पश्चिम बिहारशरीफ-एकंगरसराय मार्ग पर अवस्थित है। मन्दिर में पालकालीन कृतियों का समृद्ध भण्डार है। पास में ही एक प्राचीन कुण्ड है। यहाँ शीतलाष्टमी को दूर-दूर से लोगों के आने के कारण मेला लग जाता है।

सीतामढ़ी

नवादा जिले के मैसकौर प्रखण्ड में सीतामढ़ी मौर्यकालीन गुफा मन्दिर के लिए प्रसिद्ध है जहाँ सीता माता का निर्वासित जीवन व्यतीत हुआ था। यहाँ लव व कुश से जुड़े पर्वतीय खण्ड व प्राचीन तालाब देखा जा सकता है। पास में विशाल मठ, ठाकुरबाड़ी व नये जमाने का देवालय दर्शनीय है।

इन महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक पुरातात्त्विक स्थलों के अतिरिक्त जिलावार कुछ स्थलों का वर्णन आवश्यक जान पड़ता है; इनमें नवादा में सोनसा, गुणांवा, खनमां, गगटा, सूपौल, हडिया, हर मन्दिर, देवनगढ़, ककोलत, रजौली का संगत व सप्तर्षि पर्वत आदि प्रमुख हैं।

औरंगाबाद जिले में अम्बा, नवीनगर संगत, मनौरा, सलैया, सिहुली, चमंडी, शमशेर नगर, पवई आदि का सुनाम है। गया जिले में झरना-सरेन, नरावट, बिन्दा, अतरी, डबूर, तिलैया, सीतायक, बारी, नाद परैया, काण्ठा, सोलरा, शेरपुर, गोथू, चंडी स्थान, हरदवन, अम्भकारण्य, नीमा, इलरा-दुलरा, दुभहल, खिरियांवा, पैंगरा, सिमुआरा, ताराडीह, लाव, पत्थरकट्टी, जीरी, कोठो, खजवती, डीवर, मलटिया, ऐर-पथरी, अमैठा, महेर, एरू, टनकुप्पा, सरवां, अगन्धा, नेउरी, रौनागढ़, चाकन्द, चूरी, रेवई, अरई, चंदेला, इटवां, जीरी, मंझियांवा, नौधरिया, औरैल आदि प्रमुख स्थल चर्चा योग्य हैं।

ऐतिहासिक नालन्दा जिले में आशा स्थान, मनेर, सिलाव, तेल्हाड़ा, बड़गाँव, चण्डी-मों, पावापुरी, हिलसा, परवलपुर, घोड़ा कोटरा (घोड़ा कटोरा), गिरियक, अस्थावां, नूर सराय, एकंगर

सराय आदि स्थानों में प्राचीन सभ्यता संस्कृति के तथ्य व तत्त्व आज भी देखे जा सकते हैं।

जहानाबाद जिले में काको, कल्पा, भेलावर, कालानौर, करपी, धेंजन, किंजर, च्यटोल, धनगाँवा, केऊर, कुरुआ, अरहित, ओकटी, सिहाटी, सुप्पी आदि पुरास्थल प्रमुख हैं।

पटना जिले में मणियक, खगौल, कुम्हरार, पुनपुन, अगमकुआँ, तारेगना, सण्डास्थान, मनेर, वैकुण्ठपुर, उमानाथ स्थान, खुशरूपुर व दानापुर के साथ फुलवारीशरीफ क्षेत्र में प्राच्य स्मारक व धरोहर के दर्शन किये जा सकते हैं।

इन सबके साथ शेखपुरा जिले के सामस की चर्चा भी आवश्यक जान पड़ती है जो आज विष्णु तीर्थ के रूप में बिहार में चर्चित हुआ है। अरवल जिले का लाटी भी एक व्यापक सम्भावनाओं वाला पुराक्षेत्र है जहाँ गाँव के बाहरी क्षेत्र में विशाल गढ़, गाँव में सती स्थान व विशाल तालाब के साथ मध्ययुगीन मठ इसके प्राचीन समृद्धता का मूक गवाह है। लखीसराय में बदहिआ, महारानी स्थान और गढ़ी विष्णुपुर में प्राचीन सभ्यता-संस्कृति के तत्त्व जमींदोज हैं। इसी जिले में सूर्यगढ़ा भी एक पालकालीन स्थल है।

सम्पूर्ण मगध में ऊपरवर्णित ऐतिहासिक-पुरातात्त्विक महत्त्व के इन स्थलों के अतिरिक्त और भी कुछ स्थल हैं जिन्हें चिह्नित कर उनके ऐतिहासिक महत्त्व पर कार्य जारी है। पर इतना तो तय है कि पूरे देश में ऐसे गढ़-टीलों की सर्वाधिक संख्या मगध में ही है जिनके उत्खनन व अन्वेषण के अभाव में प्राच्य वैभव आज भी जमींदोज है। अब धीरे-धीरे इन पर ध्यान जाना एक शुभ संकेत है जहाँ सैकड़ों वर्षों का इतिहास आज भी दफन है। इससे जहाँ मगध की गौरव गरिमा में श्रीवृद्धि होगी वहीं इतिहास की पुस्तकों में नये पन्नों का सृजन होगा, इसमें कोई शक नहीं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

१. हैमिल्टन बुकानन – पटना ऐण्ड गया इन १८११-१८१२ बी.एच. जैक्सन द्वारा सम्पादित, पटना, १९३५

२. त्रेणीमाधव बरुआ – गया ऐण्ड बोधगया, कलकत्ता, १९३५

३. श्री गदाधर प्रसाद अवष्ठ, बिहार अब्दकोष, पटना, १९५४

४. जगचन्द्र विद्यालंकार और श्री पृथ्वी सिंह मेहता – बिहार : एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन, लहेरियासराय, १९४०

५. देवसहाय त्रिवेद प्राङ्मौर्य बिहार, पटना, १९५४

आधुनिक जीवन की विसंगतियों के समाधान में 'प्रश्नोपनिषद्' की भूमिका

सुशील कुमार पाण्डेय 'साहित्येन्दु'*

मानव प्रगति के अनेक सोपानों को पार कर चुका है। वह चन्द्रमा तक तो पहुँच ही गया है आकाशगंगा के रहस्यों की खोज में लगा है। 'क्लोन' के आविष्कार के माध्यम से वह प्रकृति को भी चुनौती देने लगा है। अब उसके लिए जीवन अबूझ पहेली नहीं रहा। यदि ध्यानपूर्वक गम्भीरता से विचार किया जाय तो इतना सब कुछ होने के बावजूद उसे 'आत्मिक शान्ति' नहीं है। उसे आत्म-सुरक्षा का भय इतना सता रहा है कि वह इतनी संख्या में परमाणु बम बना चुका है जिससे धरती पर जीव जगत् का कई बार सम्पूर्ण विनाश किया जा सके। क्या विधाता की रचना 'सृष्टि' को मानव निर्मित 'संहारक अस्त्रों' में समाता हुआ देखा जाय? उसकी लोभ की पराकाष्ठा पर कहीं विराम लगना चाहिए? आत्मिक शान्ति के अभाव में उसके मनोविकारों की चिकित्सा होनी चाहिए? वर्तमान युग की इन मानसिक त्रासदियों से यदि बचना है तो हमें पुनः उपनिषदों की ओर दृष्टिपात करना होगा, उनकी मान्यताओं को अपनाना होगा तभी वर्तमान समाज की विसंगतियाँ दूर हो सकेंगी।

उपनिषद् का आशय है गुरु के निकट रहस्यमय ज्ञान की प्राप्ति के लिए बैठना। उपनिषद् साहित्य में जीवन और जगत् के रहस्यों का उद्घाटन निरूपण तथा विवेचन किया गया है।[1] उपनिषदों की संख्या में मतभेद है। ऐसा कहा जाता है कि चारों वेदों की एक सहस्र एक सौ अस्सी उपनिषदें हैं परन्तु इस समय सब उपलब्ध नहीं हैं। प्रमुख बारह उपनिषद् हैं- ईशावास्य, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, वृहदारण्यक, कौषीतकि तथा श्वेताश्वतर। प्रकृत आलेख का वर्ण्य-विषय प्रश्नोपनिषद् से सम्बन्धित है। अथर्ववेद की पिप्पलाद संहिता के ब्राह्मण ग्रन्थ का एक अंश प्रश्नोपनिषद् कहलाता है। इसमें प्रश्नोत्तर के रूप में ब्रह्मतत्त्व का निरूपण किया गया है। इसलिए इसका यह नामकरण हुआ। इस उपनिषद् में पिप्पलाद ऋषि ने सुकेशा आदि छः ऋषियों के छः प्रश्नों का क्रम से उत्तर दिया है। यद्यपि वर्ण्य-विषय प्रधानतः ब्रह्मनिरूपण ही है तथापि उसमें अनेक ऐसे उपयोगी शब्दसूत्र, भावसूत्र तथा गुणसूत्र हैं जो आज दिग्भ्रमित, संत्रस्त भयाकुल तथा दिशाविहीन मानव को सकारात्मक दिशा दे पाने में सर्वथा सुसमर्थ हैं। हम

*पटेल नगर, पत्रालय- कादीपुर, जनपद- सुल्तानपुर (उ.प्र.)-२२८१४५; मो. ९५३२००६९००

भौतिक प्रगति कितनी भी कर लें पर आत्मिक उन्नति के अभाव में सब कुछ दो कौड़ी का ही रहेगा। आत्मा की शान्ति तथा आध्यात्मिकता की प्राप्ति में ही मानव जीवन की सार्थकता और सफलता है। मानसिक विकारों से दूर रहना ही सामाजिक सामंजस्य का सर्वोत्तम मार्ग है।

आज का समाज मानसिक विकारों से ग्रस्त है। वह स्वार्थान्ध हो रहा है। पग-पग पर कुटिलता देखी जा रही है। मिथ्याभाषण दैनिक जीवन का अनिवार्य अंग बन गया है। असत्य का दिनचर्या में समावेश हो चुका है। राग-द्वेष ने मानव मस्तिष्क को घेर रखा है। छल-कपट पग-पग पर दिखलायी पड़ रहा है। समाज में समरसता तथा आत्मीयता का लोप प्रत्यक्ष है। समाज विच्छृंखलित हो रहा है। व्यक्ति जर्जर हो चुका है उसमें नैतिकता का बल नहीं। साधना का साहस नहीं। इस मानसिक विकार को दूर कर यदि मानव को सच्चा 'मानव' बनना है, यदि समाज को सर्वोपयोगी होना है तो उसे प्रश्नोपनिषद् की शरण में जाना पड़ेगा। महर्षि पिप्पलाद कबन्धी ऋषि के प्रश्न के उत्तर में कहते हैं- "जिनमें कुटिलता का लेश भी नहीं है, जो स्वप्न में भी मिथ्या भाषण नहीं करते और असत्यमय आचरण से सदा दूर रहते हैं, जिनमें राग-द्वेषादि विकारों का सर्वथा अभाव है, जो सब प्रकार के छल-कपट से शून्य हैं, उन्हीं को वह विकाररहित विशुद्ध ब्रह्मलोक मिलता है जो इनसे विपरीत लक्षणों वाले हैं, उनको नहीं मिलता।"[२]

आज तनाव सर्वत्र व्याप्त है। तनाव का मूल असन्तोष तथा अल्पकाल में बिना परिश्रम के अधिक पाने की दुर्लालसा है। महर्षि पिप्पलाद भार्गव ऋषि के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं- "हे प्राण! जो तेरा स्वरूप वाणी, श्रोत्र, चक्षु आदि समस्त इन्द्रियों में और मन आदि अन्तःकरण की वृत्तियों में व्याप्त है उसे तू कल्याणमय बना ले। अर्थात् तुझमें जो हमें सावधान करने के लिए आवेश आया है, उसे शान्त कर ले और तू शरीर से उठकर बाहर न जा। यह हम लोगों की प्रार्थना है।[३] उपनिषद् का ऋषि शान्ति का कारण स्वयं में ढूँढ़ता है। प्राणशक्ति ही व्यक्ति को गतिशील बनाती है अतएव ऋषि प्राण को ही सम्बोधित करता है। जब प्राण कल्याणमय तो उससे संचालित इन्द्रियाँ भी शुभ पन्थ की ओर अग्रसर होंगी जो व्यक्ति तथा समाज दोनों के लिए लोककल्याणकारी होता है। प्राण से ऋषि की प्रार्थना है कि तुम शरीर में शान्त भाव से सकारात्मक ऊर्जा उत्पन्न करो ताकि व्यक्ति भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर हो सके। महर्षि पिप्पलाद की यह कामना सार्वकालिक तथा लोकहितकारी है।

हम लोकतंत्र में जी रहे हैं। लोकतंत्र की दृढ़ता और उपयोगिता तभी अक्षुण्ण बनी रहेगी जब हम लोकतंत्र के विभिन्न स्तम्भों को मजबूत बनाये रखेंगे। लोकतंत्र केन्द्र है, जनता, नेता, व्यापारी, शिक्षक, शिक्षार्थी आदि समाज के अंग लोकतंत्र के चारों ओर अविच्छिन्न भाव से प्रतिष्ठित हैं। महर्षि पिप्पलाद आश्वालयन मुनि के प्रश्न के उत्तर में कहते हैं- "जिस प्रकार भूमण्डल का चक्रवर्ती सम्राट् भिन्न-भिन्न ग्राम, मण्डल और जनपद आदि में पृथक-पृथक अधिकारियों की नियुक्ति करता है और उनका कार्य बाँट देता है, उसी प्रकार यह सर्वश्रेष्ठ प्राण भी अपने अंगस्वरूप

अपान, व्यान आदि दूसरे प्राणों को शरीर के पृथक्-पृथक् स्थानों में पृथक्-पृथक् कार्य के लिए नियुक्त कर देता है।"[४] महर्षि पिप्पलाद का आशय है कि सत्ता का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए। केन्द्रीकरण होने पर एक हाथ में सीमित हो जाने पर निरंकुशता, क्रूरता तथा कठोरता जन्म लेती है। सामान्य जीवन में भी हम देखें तो यदि छत को एक ही स्तम्भ पर खड़ा करने का प्रयत्न किया जाय तो पहले वह खड़ा ही नहीं होगा, यदि हो भी गया तो वह कमजोर होगा। भगवान् श्रीकृष्ण चाहते तो गोवर्द्धन को अकेले उठा लेते किसी ग्वाले को लाठी का टेक लगाने को न कहते पर श्रीकृष्ण ने प्रत्येक ग्वाले का महत्त्व समझा और उससे सहयोग की अपेक्षा की। इससे ग्वालों को विश्वास हो गया कि 'मैं भी उपयोगी हूँ' और उन्होंने श्रीकृष्ण के कन्धे से कन्धा मिलाकर पर्वत उठाने का कठोर और अविश्वसनीय कार्य चुटकी बजाने में कर दिया। आज के भौतिक युग में सत्ता के केन्द्रीभूत कर लेने की इच्छा बलवती हो चली है। महर्षि पिप्पलाद प्राण से प्रार्थना करते हैं- तू ही नियामक है अतः पृथक-पृथक रूप से सम्बन्धित को कार्यभार दिया जाय जिससे सन्तुलन बना रहे।

आज मानव के पास भोग-विलास के अनेक साधन उपलब्ध हैं। यह भी सत्य है कि 'भोग' से कभी 'भोग' पूर्ण नहीं होता और न मानव मन तृप्त होता है। वह असीमित वासना की प्राप्ति के लिए तीव्र गति से हाँफते हुए दौड़ रहा है। मृगमरीचिका उसकी नियति बन चुकी है। उससे शान्ति कोसों दूर चली गयी है। उपनिषद् का ऋषि सनातन सत्य का प्रवचन करता है। उसने मानवीय अन्तहीन पिपासा का समाधान भी ढूँढ़ा है। महर्षि पिप्पलाद सत्यकाम के प्रश्न के उत्तर में कहते हैं कि ॐकार के ध्यान से मानसिक शान्ति मिलती है। उनके शब्दों में, "ॐकार का चिन्तन करने वाला मनुष्य यदि विराट परमेश्वर के 'भूः', 'भुवः' और 'स्वः'-इन तीनों रूपों से भूलोक के ऐश्वर्य में आसक्त होकर उसकी प्राप्ति के लिए ॐकार की उपासना करता है तो वह मरने के बाद अपने प्रापणीय ऐश्वर्य की ओर प्रेरित होकर तत्काल पृथ्वी लोक में आ जाता है। ॐकार की पहली मात्रा ऋग्वेदस्वरूपा है, उसका पृथ्वी लोक से सम्बन्ध है अतः उसके चिन्तन से साधक को ऋग्वेद की ऋचाएँ पुनः मनुष्य शरीर में प्रविष्ट करा देती हैं। वह उस नवीन मनुष्य जन्म में तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा से सम्पन्न उत्तम आचरणों वाला श्रेष्ठ मनुष्य बनकर अतिशय ऐश्वर्य का उपभोग करता है।"[५]

प्रश्नोपनिषद् के इस चिन्तन में मानवीय जीवन की सकारात्मक मूल्यवत्ता का सन्देश सन्निहित है। ॐकार का चिन्तन विवेक को जाग्रत तथा शरीर को क्रियाशील बनाता है। वह सतोगुण का परिपोषक होता है। वस्तुतः मानव ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति है तो मानव का भी कर्तव्य है कि वह अपने मूलस्रोत-ईश्वर को न भूले। आज के समाज में व्याप्त अनेक विभीषिकाओं, महामारियों का मूल स्वयं मानव है।

प्रश्नोपनिषद् मानता है कि असत्य के पाँव टिकते नहीं। असत्य किसी का आत्यन्तिक सम्बल

नहीं हो सकता। असत्य के बल पर पायी गयी पद-प्रतिष्ठा एक दिन धूल-धूसरित हो जायेगी। एक बार कोसल देश का राजकुमार हिरण्यनाभ सुकेशा ऋषि के पास आया और उनसे पूछा, "भारद्वाज! क्या तुम सोलह कलाओं वाले पुरुष के विषय में जानते हो?" सामान्य व्यक्ति से यह प्रश्न पूछा गया होता तो वह तत्काल उत्तर देता-'मैं जानता हूँ बल्कि मैं ही सही जानता हूँ।' अज्ञानी बनकर अपमानित होना ठीक नहीं। आज के बाजारीकरण, उदारीकरण और वैश्वीकरण के युग में इन नवीन सामन्तों/कारपोरेट जगत् के 'मसीहाओं' का मानना है कि वे ही सब कुछ जानते हैं और जो कर रहे हैं वह बहुत ठीक है जबकि सत्य इस वक्तव्य से कोसों दूर है। लेकिन आचार्य सुकेशा सत्यवादिता पर जोर देते हुए अपनी अल्पज्ञता स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं, "भाई मैं उसे नहीं जानता, जानता होता तो तुम्हें अवश्य बता देता। न बताने का कोई कारण नहीं है। तुम अपने मन में यह न समझना कि मैंने बहाना करके तुम्हारे प्रश्न को टाल दिया है; क्योंकि मैं झूठ नहीं बोलता। झूठ बोलने वाले का मूलोच्छेद हो जाता है, वह इस लोक में या परलोक में – कहीं भी प्रतिष्ठा नहीं पा सकता।"[६] आज आवश्यकता है सुकेशा ऋषि के उक्त कथन को चरितार्थ किया जाय।

समाचार-पत्रों का अधिकांश भाग हिंसा तथा दुराचारमूलक समाचारों से भरा रहता है। दूरदर्शन विश्व भर की दुर्घटनाओं को जिनके मूल में स्वयं मानव है जिसे मानवीय कुप्रवृत्ति को रोक कर बचाया जा सकता है, दिखाता रहता है। जिस त्रासदी का मूल स्वयं मानव है क्या उसे मिटाया नहीं जा सकता है? मिटाया जा सकता है पर जब सब स्वयं को परमात्मस्वरूप मानें-एक पिता का पुत्र मानें-अपने जैसा ही मानें। क्षेत्र, मानवों की आकृति-प्रकृति अलग-अलग हो सकती है पर सारे क्षेत्र हैं तो पृथ्वी के ही अंश, सारे मानव अन्ततः एक ही आदि माता-पिता के गुणसूत्र से संचालित हैं। लेकिन इसे कौन मानता है? कितने लोग मानते हैं? महर्षि पिप्पलाद, सुकेशा के प्रश्नों का उत्तर देते हुए बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कहते हैं, "जिस प्रकार भिन्न-भिन्न नाम और रूपों वाली ये बहुत सी नदियाँ अपने उद्गम स्थान समुद्र की ओर दौड़ती हुई समुद्र में पहुँचकर उसी में विलीन हो जाती हैं, उनका समुद्र से पृथक कोई नाम-रूप नहीं रहता- वे समुद्र ही बन जाती हैं, उसी प्रकार सर्वसाक्षी सबके आत्मरूप परमात्मा से उत्पन्न हुई ये सोलह कलाएँ (अर्थात् यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड) प्रलय काल में अपने परमाधार परम पुरुष परमेश्वर में जाकर उसी प्रकार विलीन हो जाती हैं।"[७] यदि हमें दुःखदग्ध जगत् अमानवीय होते मानव में सुख-शान्ति की प्रतिष्ठा करनी है तो प्रश्नोपनिषद् के उक्त कथन के आलोक में अलीक-सत्य का तिरस्कार करना ही होगा।

प्रश्नोपनिषद् का शान्तिपाठ मानवीय मूल्यों के संरक्षण का घोषणा-पत्र है जिसका आज तेजी से क्षरण हो रहा है। इस शान्तिपाठ में कहा गया है-"हम अपने कानों से शुभ कल्याणकारी वचन ही सुनें, निन्दा, चुगली, गाली या दूसरी-दूसरी पाप की बातें हमारे कानों में न पड़ें और हमारा अपना जीवन यजनपरायण हो-हम सदा भगवान् की आराधना में लगे रहें। नेत्रों से हम सदा कल्याण का दर्शन करें। किसी अमंगलकारी अथवा पतन की ओर ले जाने वाले दृश्यों की ओर हमारी दृष्टि

का आकर्षण कभी न हो। हमारी आयु भोग-विलास या प्रमाद में न बीते। हमें ऐसी आयु मिले जो भगवान् के कार्य में आ सके।"[८]

यदि हमें युगीन समस्याओं से मुक्ति पानी है, विश्व शान्ति की स्थापना करनी है तो हमें प्रश्नोपनिषद् की मान्यताओं को चरितार्थ करना पड़ेगा जिनकी त्रयकालिक प्रासंगिकता स्वयंसिद्ध है।

सन्दर्भ:

१. डॉ. राजबली पाण्डेय, हिन्दू धर्मकोश, पृ. ११७

२. 'तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति'
–प्रश्नोपनिषद् (ईशादि नौ उपनिषद् – गीताप्रेस, गोरखपुर), पृ. १५९

३. या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या च चक्षुषि।
या च मनसा सन्तता शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः॥ (ईशा., पृ. १६६)

४. यथा सम्राडेवाधिकृतान्विनियुङ्क्ते एतान्ग्रामानेतान्ग्रामान्धितिष्ठ
स्वेत्येवमेवैष प्राण इतरान् प्राणान्पृथक्पृथगेव संनिधत्ते। (ईशा., पृ. १६६)

५. स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभि
सम्पद्यते ..... सम्पन्नो महिमानमनुभवि। (उक्त, पृ. १८९)

६. नाहमिमंवेद। (उक्त, पृ. १९४)

७. स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः ..... भवति तदेषश्लोकः। (उक्त पृ. १९७-१९८)

८. ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम.....देवहितं यदायुः। (उक्त पृ. १८५ तथा २०१)

भारत में शिवोपासना का प्राचीनतम स्वरूप

अजय कुमार मिश्र*
राखी रावत**

शिव की उपासना जो कालान्तर में हिन्दू धर्म के अन्तर्गत एक विशिष्ट सम्प्रदाय के रूप में विकसित हुई अपने मूल रूप में अत्यन्त प्राचीन है। कुछ विद्वानों ने इसे वैदिक एवं अवैदिक धाराओं के संगम का परिणाम माना है। जब हम प्राचीन विश्व की संस्कृतियों में व्याप्त धार्मिक विश्वासों पर विचार करते हैं तो यह पाते हैं कि देवताओं की उपासना प्राचीन मानव ने मुख्यतः भय या लोभ के कारण प्रारम्भ किया अर्थात् देवों की पूजा या तो इच्छानुकूल फल प्राप्ति हेतु की जाती रही या भय से मुक्ति हेतु। प्रारम्भिक अवस्था में ही कुछ देवों का स्वरूप मंगलकारी था तो कुछ का भयंकर। दूसरी कोटि के देवताओं की उपासना अनिष्ट निवारण के उद्देश्य से उनके भय के कारण की जाती थी। शिव भी हिन्दू जनमानस में प्रारम्भ में एक भयंकर देव के रूप में कल्पित थे किन्तु कालान्तर में उनके विनाशक स्वरूप के साथ-साथ कल्याण स्वरूप की परिकल्पना भी विकसित हुई।

यद्यपि शैवमत का स्पष्ट विकास वैदिक युग से दिखायी देता है किन्तु पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आलोक में प्रागवैदिक भारत में भी शिवोपासना के प्रमाण मिलते हैं। मार्शल आदि अधिकांश पुरातत्त्ववेत्ताओं ने सैन्धव सभ्यता के नगर स्थलों से प्राप्त योगी की प्रतिमा के आधार पर यह मत व्यक्त किया कि सैन्धववासी भी ऐसे किसी देवता से परिचित थे। मोहनजोदड़ो से एक पुरुष आकृति योगासन या पद्मासन मुद्रा में बैठी हुई प्राप्त हुई जिसके तीन मुख हैं तथा सिर पर सींग है। इस प्रतिमा के चारों तरफ हिरण, हाथी, गैंडा तथा शेर के चित्र हैं। मार्शल आदि विद्वानों ने इसे आदि शिव की प्रतिमा मानी है।[1] सैन्धव सभ्यता के अन्तर्गत इसकी उपासना प्रमुख देव के रूप में होती थी। हड़प्पा सभ्यता के अन्तर्गत एक पुरुष देवता की उपासना पशुपति योगी तथा नटराज के रूप में प्रचलित थी। सम्भवतः यह पौराणिक शिव का प्राग रूप था। पिगट तथा ह्वीलर एवं डॉ. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय आदि विद्वानों ने भी इसी मत को स्वीकार किया है। गोरखपुर विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो. वी.एस. पाठक ने भी इस आकृति में उत्तर वैदिक साहित्य एवं महाभारत में

*एसो. प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, पी.जी. कालेज, आश्रम बरहज,देवरिया;
** प्रवक्ता, प्राचीन इतिहास, रंजू सिंह महाविद्यालय सोनाड़ी, देवरिया

वर्णित 'त्रिशीर्षाविश्वरूप' की झलक विद्यमान मानी है। असम्भव नहीं कि हड़प्पा सभ्यता का आदि शिव वैदिक आर्यों में 'त्रिशीर्षाविश्वरूप' के नाम से पूजित हो गया हो। चूँकि हड़प्पा सभ्यता के अन्तर्गत लिंगोपासना की परम्परा भी प्रचलित रही तथा यह सर्वविदित तथ्य है कि पौराणिक हिन्दू धर्म में लिंगोपासना निश्चित रूप से शैव धर्म से सम्बद्ध है। इसलिए यह सहज कल्पनीय है कि हड़प्पा सभ्यता के अन्तर्गत भी लिंगोपासना आदि शिव से सम्बद्ध रही हो। चूँकि लिंग उर्वरता का प्रतीक है अतः यह भी अनुमेय है कि आदि शिव की अवधारणा हड़प्पा सभ्यता में उर्वरता के देवरूप में भी रही हो। यदि इस अनुमान को सत्य मान लिया जाय तो हमें स्वीकारना होगा कि शैव धर्म संसार का प्राचीन धर्म है। शैवमत महत्त्वपूर्ण सम्प्रदायों में से एक है जिसके प्राचीनतम सन्दर्भ सिन्धु सभ्यता से प्राप्त होते हैं। मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक मुहर में तीन चेहरे से युक्त सिर पर शृंग हुई तथा पीठ पर आरूढ़ प्रतिमा है जो सिंह, हाथी, भैंसा तथा हिरणों से घिरी हुई है। परवर्ती काल में इस प्रतिमा का तादात्म्य पाशुपति शिव से की गयी। इतना ही नहीं यहाँ से उत्खनन में लिंग तथा योनियों की भी प्राप्ति हुई है। पश्चिमी एशिया में लिंग तथा योनि की प्रतीक पूजा होती रही है।[1]

यद्यपि यह भी सत्य है कि कुछ विद्वानों ने शिव को अनार्यदेव माना जबकि शिव एक महत्त्वपपूर्ण वैदिक से हैं। यजुर्वेद के षोडशोध्याय के प्रारम्भ में ही कहा गया है-'**नमस्ते इत्यस्य परमेष्ठी क्रुत्स ऋषिः रुद्रो देवता आर्ष गायत्री छन्दः षडज स्वरूपः नमस्ते रुद्रमन्यव उतोत दूषवे नमः बाहुभ्यासुत ते नमः।**' कुछ विद्वानों ने यह आशंका जतायी कि रुद्र वैदिक देवता तो हैं लेकिन शिव से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है किन्तु वास्तविकता इससे भिन्न है क्योंकि रुद्र के लगभग ४२ नामों का उल्लेख इसी अध्याय में किया गया है। यथा- गिरिशन्त, शिवा, शिवेन, अध्यवो चदाधिकवता कपर्दिनाशिवो भव, वलम्बुश जगत्पति आदि २० नाम ऐसे हैं जिन्हें रुद्र को अभिविहित किया गया है। यही नहीं 'नमः सोमायच रुद्रायच नमस्ताम्राय चारुणायच, नमः शंभयाम च नमो भवाय च नमःशंकराय चमयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय' आदि रुद्र के नाम का ही पर्याय है। इससे स्पष्ट है कि रुद्रशिव एक विशिष्ट वैदिक देव हैं। शिवपूजा जो वैदिक कर्मकाण्ड का एक भाग है- ताम्रश्मयुगीन काल से पूर्णतया सम्बद्ध है इसलिए उसे अनार्य मानना तर्कसंगत नहीं है। वैदिक काल में रुद्र रूप ही अधिक ख्याति प्राप्त रहा।[2] उसके व्यक्तित्व के दो रूप विध्वंसात्मक तथा परोपकारी का वर्णन प्राप्त होता है।[3] यजुर्वेद तक आते-आते इनका पशुपति रूप स्थापित हो गया था।[4] इन्हें बच्चों का रक्षक तथा अच्छे स्वभाव का प्रदाता माना गया।[5] यजुर्वेद के त्र्यम्बकं सूक्त में रुद्र को अम्बिका का सम्बन्धी बताया गया।[6] अथर्ववेद में रुद्र को नीलशिखाण्डिन के नाम से सम्बोधित किया गया।[7] ये काले रंग के थे तथा लाल घोड़े पर सवार रहते थे।[8] श्वेताश्वतरोपनिषद् में रुद्र को ईशा महेश्वर तथा ईशान कहा गया।[9] इन्हें ब्रह्मा तथा

सृष्टिकर्ता कहा गया।[११] रुद्रदेव के अन्य कई उद्धरण उपनिषदों में इन्हें तमोगुण से मुक्त संकेतित करते हैं।[१२]

गृह सूत्रों में रुद्र को प्रायः शिव तथा शंकर की संज्ञा प्रदान की गयी।[१३] गृह्य सूत्रों में पहली बार मूर्तिपूजा का उल्लेख मिलता है[१४] तथा बौधायन गृह सूत्र में विष्णु तथा शिव की प्रतिमा का वर्णन प्राप्त होता है।[१५] इसी सूत्र में पहली बार शिवलिंग शब्द का भी प्रयोग किया गया।[१६] पाणिनि ने अष्टाध्यायी में रुद्र के लिए भव तथा शर्व का प्रयोग किया।[१७] महाकाव्यों में रुद्र को रचनात्मक कार्यों में संलग्न बताते हुए पुण्यात्मा कहा गया।[१८] महाभारत में रुद्र को विधाता, विश्वव्यापी, सर्वशक्तिमान तथा त्रिकालदर्शी कहा गया।[१९] यहीं नन्दी को शिव का वाहन बताया गया।[२०] पतंजलि ने शिव के अनेक नामों का उल्लेख करते हुए 'शिवभागवत' सम्बोधन दिया। यहीं शिव तथा स्कन्द की मूर्तियों का भी उल्लेख है।[२१]

शिव का विकसित रूप पुराणों में देखने को मिलता है जहाँ इन्हें सृष्टिकर्ता, विश्वकारण अनश्वर, सर्वशक्तिमान, परब्रह्म तथा उच्च देव की संज्ञा दी गयी।[२२] कुमारगुप्त के मंत्री पृथ्वीशेष के अभिलेख से शिवलिंग का संकेत मिलता है। साथ ही उज्जयिनी तथा तक्षशिला से प्राप्त सिक्कों पर लिंग का अंकन है। कुषाणों के सिक्कों पर भी शिव का उल्लेख है।[२३] आदित्यसेन के अफसढ़, अवन्तवर्मन के नागार्जुन तथा प्रखरसेन के ताम्रपत्र लेख में भी शिव का उल्लेख है।

शैवधर्म का मूल रूप वेदों में मिलता है। ऋग्वेद में शिव के लिए रुद्र शब्द का प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद में 'रुद्र' का उल्लेख अन्तरिक्ष मण्डल के मध्यम श्रेणी के देवता के रूप में मिलता है। ऋग्वैदीय रुद्र का स्वरूप अत्यन्त भयंकर है, विद्युत उनका आयुध है जिससे क्रोध की स्थिति में वे द्विपदों तथा चतुष्पदों का आहत करते हैं। इसीलिए ऋग्वेद में उनकी प्रार्थना पशुओं तथा परिजनों की सुरक्षा के सन्दर्भ में की गयी है। यद्यपि यह स्पष्ट नहीं कि ऋग्वैदिक रुद्र प्रकृति के किस पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं। किन्तु उसके सम्बन्ध में प्राप्त विवरणों के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि वे प्रकृति के संहारक रूप के ही प्रतिनिधि रहे होंगे। वैयाकरणिक दृष्टि से 'रु' धातु का अर्थ क्रन्दन करना, चिल्लाना या दहाड़ना आदि है। पौराणिक कथाओं के अनुसार ब्रह्मा जनसृष्टि करने में असमर्थ रहे तो क्रोध में उनके आँसू बहने लगे। आँसुओं से भूत-प्रेतों की सृष्टि हुई उसी समय उनके मुख से एकादश रुद्र उत्पन्न हुए। उत्पन्न होते ही इन्होंने बहुत जोर-जोर से क्रन्दन किया इसीलिए उन्हें रुद्रनाम दिया गया। ऋग्वेद की स्तुतियों में भी रुद्र के कठोर, भयंकर एवं विनाशक रूप का ही वर्णन अधिक प्राप्त होता है। मैक्डानेल ने रुद्र का अग्नि से साम्य देखते हुए उसे विनाशक विद्युत के रूप में झंझावात के विध्वंसक रूप का प्रतीक माना है। इसी का समर्थन कीथ तथा भण्डारकर ने भी किया है।

वैदिक साहित्य में रुद्र के स्वरूप में क्रमिक विकास दिखायी देता है। इनके लिए अनेक

प्रकार के विशेषणों का प्रयोग मिलता है। अथर्ववेद तथा यजुर्वेद की संहिताओं में रुद्र का विराट रूप दिखायी देता है। उत्तर-वैदिक काल तक आते-आते विभिन्न प्रकार के समान प्रकृति वाले देवता वैदिक रुद्र में समाहित हो गये। इस समय तक रुद्र के व्यक्तित्व में कुछ अन्य पर्वतीय तथा वनवासियों द्वारा पूजित देवता भी निमज्जित हो गये। अथर्ववेद में रुद्र के लिए 'शर्व', 'भव', 'ईशान' तथा महादेव आदि विशेषणों का प्रयोग हुआ है। इस समय तक इन्हें व्याधियों का उत्पन्नकर्ता एवं विनाशक माना जाने लगा था। रुद्र को औषधियों एवं वनस्पतियों का स्वामी मानने के साथ-साथ मृत्यु का भी देवता माना गया। अथर्ववेद में इन्हें प्रसन्न करने के लिए नरबलि देने का उल्लेख मिलता है। रुद्र के भयंकर स्वरूप का ज्ञान इस बात से भी होता है कि इन्हें यज्ञ का भाग घरों में नहीं बल्कि जंगल या नदी के किनारे दिया जाता था। अर्थात् इस समय तक रुद्र का निकट आना दुःखदायी माना जाने लगा था। इसीलिए बलि देकर उन्हें दूर रखने का प्रयत्न किया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय रुद्र की उपासना समाज के निम्न वर्गों में अधिक लोकप्रिय था। क्योंकि यजुर्वेद में उन्हें 'वनों का स्वामी', 'निषादों का स्वामी', 'तस्करों का स्वामी' तथा 'हत्यारों का स्वामी' कहा गया है। यजुर्वेद में इनके लिए 'गिरिचर' तथा 'गिरीश' उपाधियाँ भी वर्णित की गयी। पौराणिक साहित्य में भी शिव को कैलास पर्वत पर निवास करने वाला कहा गया है। वेदों में रुद्र की पत्नी के विषय में कोई स्पष्ट विवरण नहीं मिलता। यजुर्वेद में अम्बिका को इनकी भगिनी कहा गया है। सम्भवतः उपनिषद् काल तक रुद्र के सम्मान में विशेष वृद्धि हुई क्योंकि श्वेताश्वतरोपनिषद् में रुद्र का वर्णन परमेश्वर या सर्वोच्च देव के रूप में किया गया।

रामायण तथा महाभारत काल तक तो शिव की उपासना अतिशय लोकप्रिय हो गयी थी। रामायण में शिव की पूजा के प्रमाण अनेक सन्दर्भों में प्राप्त होते हैं। रावण शिव का अनन्य भक्त था। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने लंका पहुँचने के पूर्व शिवलिंग की स्थापना कर स्वयं उसकी पूजा-अर्चना विधि-विधान से की थी। रामायण में शिव से सम्बन्धित अनेक कथाएँ- विषपान, गंगावतरण, शिव-पार्वती विवाह तथा स्कन्द-जन्म आदि की प्राप्त होती हैं। रामायण में इन्हें 'हर' और 'वृषध्वज' आदि उपाधियाँ भी दी गयीं। शिव के परिचर नन्दी का उल्लेख भी सर्वप्रथम इसी ग्रन्थ से हुआ। महाभारत में अर्जुन द्वारा शिव को प्रसन्न करने हेतु हिमालय में की गयी तपःचर्या का वर्णन है, किरातवेषधारी शिव से अर्जुन का संघर्ष होता है तथा बाद में उन्हें शिव से पाशुपत अस्त्र प्राप्त हुआ। महाभारत में दार्शनिक रूप में शिव को परमब्रह्म माना गया। इस समय तक शिव की उपासना पार्वती के साथ-साथ की जाने लगी थी। अब शिव भयंकर के साथ-साथ सौम्य रूप के भी देवता हो गये थे। पापियों के विनाश हेतु इनके भयंकर संहारकर्ता तथा साक्षात् काल रूपों का भी वर्णन किया गया। रामायण तथा महाभारत में शिव की उपासना तपस्या एवं भक्ति बतायी गयी है। महाभारत में शिवोपासना मानवाकार तथा लिंगाकार दोनों रूपों में होने लगी थी।

ऐतिहासिक काल में शिव की उपासना के प्रमाण न केवल साहित्यिक स्रोतों से बल्कि

पुरातात्त्विक स्रोतों से भी मिलते हैं। पतंजलि ने मौर्य सम्राटों द्वारा शिव तथा स्कन्द की मूर्तियाँ बनवाकर बेचने का उल्लेख किया है। पतंजलि के महाभाष्य में शिव भागवतों का वर्णन यह प्रमाणित करता है कि मौर्य तथा शुंग काल में शिवोपासना का प्रचलन रहा। रैप्सन की धारणा है कि मानव रूप में सर्वप्रथम शिव का चित्रण गोण्डोफर्नीज की मुद्राओं पर हुआ है। अश्वघोष के 'बुद्धचरित' में भी शिव का वर्णन अनेक स्थानों पर हुआ है। शुंग तथा सातवाहन युग में शैवमत की लोकप्रियता का अनुमान इसी बात से लगाया जाता है कि विदेशी यवन तथा कुषाण शासक भी इधर आकृष्ट हो चुके थे। प्रारम्भिक कुषाण शासक विमकेडफिसेस की मुद्राओं पर 'सर्वलोकईश्वरस माहेश्वरस' लेख अंकित है इससे उसके शैव धर्मानुयायी होने का संकेत मिलता है। कुषाणों के समय गंगाधारी तथा मध्य भारत में नाग जाति की अनेक छोटी-छोटी शाखाएँ राज्य कर रही थीं जिन्हें भारशिव नाग कहा गया है। इनके विषय में यह किंवदन्ती प्रचलित है कि ये अपने कन्धों पर शिवलिंग वहन करते थे। इन नाग शासकों ने शैवधर्म को विशेष प्रोत्साहन प्रदान किया। कदाचित कुषाण काल में ही शैवधर्म के प्रसिद्ध सम्प्रदाय पाशुपत मत का उदय हुआ जिसके संस्थापक के रूप में कहीं-कहीं श्रीकण्ठ का, तो कहीं नकुलिश का नाम मिलता है। भारतीय नाट्यशास्त्र में शिव को परमेश्वर त्रिनेत्र, नीलकण्ठ तथा वृषांक आदि नामों से भी सम्बोधित किया गया है। इस ग्रन्थ में शिव को नृत्यकला का महान आचार्य तथा नटराज कहा गया है।

गुप्त युग में वैष्णव धर्म के साथ-साथ शैव धर्म चरमोत्कर्ष पर दिखायी देता है। समुद्रगुप्त की 'प्रयाग प्रशस्ति' में गंगावतरण का वर्णन है। चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य का एक मंत्री वीरसेन शैवमत का पोषक रहा। नकुलिश की शिष्य-परम्परा के १०वें आचार्य उदिताचार्य ने (जो चन्द्रगुप्त द्वितीय के समकालीन थे) मथुरा में ३४ मितेश्वर की प्रतिमा स्थापित करायी थी। करमदण्डाभिलेख में कुमारगुप्त के मंत्री पृथ्वीसेन द्वारा शिवमन्दिर दान करने का उल्लेख है। स्कन्दगुप्त के सिक्कों पर वृषभ का अंकन उसके शैव मतानुरागी होने का प्रमाण है। गुप्तकालीन प्रसिद्ध कवि कालिदास शैव धर्मानुयायी रहे। उन्होंने रघुवंश में शिव को परमेश्वर की संज्ञा देते हुए पार्वती के साथ उनकी स्तुति की है। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के प्रारम्भ तथा अन्त में शिव की स्तुति है। गोकर्ण के शिव, काशी के विश्वनाथ तथा उज्जैन के महाकाल का परिचय भी कालिदास साहित्य से प्राप्त होता है। इस समय तक शिव के विषय में अनेक विस्मयजनक कथाएँ प्रचलित हो चुकी थीं। यथा- इनके द्वारा मस्तक पर गंगा तथा चन्द्रमा को धारण करने का विश्वास तथा भुजंगों की माला धारण करने की बात जनमानस में बैठ चुकी थी। शिव परिवार में पत्नी रूप में पार्वती तथा पुत्रों के रूप में गणेश तथा कार्तिकेय की परिकल्पना ने मूर्तरूप ग्रहण कर लिया था।

पुराणों में शिवोपासना का स्पष्ट रूप दृष्टिगोचर होता है। इस काल में शैव धर्म के अन्तर्गत शिव को परमब्रह्म मानते हुए एकेश्वरवादी धारणा का विकास हुआ। स्कन्दपुराण में वर्णित है-पशुपति, सर्वज्ञ सर्वतत्त्वों के मूल तत्त्व सनातन रुद्र भगवान् ने कहा है कि "सृष्टिकर्ता ब्रह्मा से

भी पहले मैं प्रथम ईश्वर था, वर्तमान में भी मैं ईश्वर हूँ तथा भविष्य में भी मैं एकमात्र ईश्वर रहूँगा। मेरे अतिरिक्त कोई ईश्वर नहीं है।" पुराणों में लिंग पूजा का भी वर्णन मिलता है। मत्स्यपुराण के अनुसार त्रिपुरदाह के समय शिवलिंग को सिर पर रखकर बाणासुर ने उपासना की थी। पुराणों में शिव की उपासना मानवाकार एवं लिंगाकार मूर्तियों के रूप में वर्णित है। पुराणों में ही शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप की भी कल्पना की गयी है। मत्स्यपुराण में शिव को अर्द्धनारीश्वर की संज्ञा देते हुए कहा गया कि ब्रह्मा के वरदान से पार्वती शिव के साथ स्थायी रूप से संयुक्त हो गयी थीं। शैव तथा वैष्णव धर्मावलम्बियों ने सामंजस्य बनाये रखने के लिए शिव तथा विष्णु की सम्मिलित रूप (हरिहर) की कल्पना की। गुप्तकालीन समन्वयवादी उदार विचारधारा ने त्रिमूर्ति के रूप में ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की उपासना आरम्भ की। एलिफेण्टा की त्रिमूर्ति इस प्रकार की प्रसिद्ध मूर्ति है।

सम्राट् हर्ष तथा उनके राजकवि बाणभट्ट भी शिवोपासक रहे। ह्वेनसांग ने सम्पूर्ण भारत में प्राप्त शिव मन्दिरों का उल्लेख किया है तथा वाराणसी को १०० मन्दिरों वाला शैवधर्म का प्रधान केन्द्र बताया है। राजपूत युग में भी उत्तर तथा दक्षिण भारत में शैव धर्म का प्रचार-प्रसार हुआ। इस काल के लेखों से ज्ञात होता है कि शिव की स्तुति 'ॐ नमः शिवाय' से होती थी। खजुराहो के पाँचवें लेख में शिव को एकेश्वर माना गया। परमार, चन्देल, प्रतिहार, चांद तथा गाहड़वाल आदि शासकों के लेखों से शैव धर्म में उनकी रुचि का अनुमान लगाया जा सकता है। पाल शासक नारायण पाल द्वारा स्वयं बौद्ध होने के बावजूद सहस्रों शिव मन्दिरों का निर्माण कराया गया था। दक्षिण भारत में भी पौराणिक शैवोपासना का छठीं से तेरहवीं शताब्दी तक अत्यधिक प्रचार हुआ। इसी समय मथुरा तथा ऐलोरा के प्रसिद्ध शिव मन्दिरों का निर्माण हुआ। पुराणों से ज्ञात होता है कि शिव की उपासना के कुछ विशेष दिन निश्चित थे। मत्स्यपुराण में 'कृष्णाष्टमी' के दिन शिव की आराधना का वर्णन है जबकि सौर पुराण में 'अनंगत्रयोदशी' की उपासना का उल्लेख है। मत्स्यपुराण में शिव चतुर्दशी का विशेष महत्त्व बताया गया है। इसके अतिरिक्त पुराणों में उमा-महेश्वर व्रत का वर्णन मिलता है जो पूर्णिमा, अमावस्या, चतुर्दशी या अष्टमी को किया जाता है। आज भी शिवोपासना प्रतिमाह त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा वसन्त ऋतु में शिवरात्रि का व्रत करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि शैवधर्म तथा शिवोपासना का प्राचीन भारत में अपना विशिष्ट स्थान रहा है जिसमें सिद्धान्तों की विभिन्नता के आधार पर अनेक सम्प्रदाय विकसित हुए। आज भी भारतीय जनजीवन में शिवोपासना लोकप्रिय है। शैव मन्दिर तथा मठ भारत के प्रत्येक कोने में स्थित हैं। सामान्य भारतीय धर्म में आज विष्णु तथा शिव दोनों की समान रूप में उपासना प्रचलित है- यही इस धर्म तथा उपासना पद्धति की लोकप्रियता की प्रत्यक्ष प्रमाण है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

१. मार्शल जे, मोहनजोदड़ो ऐण्ड द इण्डस सिविलाइजेशन, भाग १, पृ. ५२, प्लेट १२ १७

२. सिंह ब्रा ह आ. ना. ई. पृ. १

३. ऋग्वेद-६.४.१०, ४.१२.१६, ९.१३.३

४. पैकडानेल, वैदिक माइथालोजी, पृ. ७८

५. वाजसनेयी संहिता, ९.३९

६. तैत्तिरीय संहिता, २, २, १०

७. यजुर्वेद, १.८, ६

८. अथर्ववेद, २.२७.६

९. अथर्ववेद, ११.२.१८

१०. श्वेताश्वतरोपनिषद्, ३.११, ४.१०, ४.११

११. वही, ३, २-४, १०.२४

१२. वही, ३.६

१३. सिंह, ब्रा आ.ना.ई. पृ. ४

१४. बौधायन गृह सूत्र- ३, २, १३, १६

१५. वही, ३, २, १६, १४

१६. पाणिनि अष्टाध्यायी, १. ४९, ३३, ५३

१७. रामायण, बालकाण्ड, ३६, ९-१०

१८. रामायण, उत्तरकाण्ड, १६.८

१९. महाभारत-कर्णपर्व, २४, ६१, ६३

२०. पातंजलि महाभाष्य, ३-९९

२१. लिंगपुराण, २, २१, ४९

२२. वायुपुराण, २४-१०७

२३. बनर्जी, जे.एन., डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आककोनाग्राफी, पृ. १२०-२१

प्रो. राजेन्द्र मिश्र की एकांकियाँ और दहेज प्रथा

मधु सत्यदेव*
रीना सिंह**

वर्तमान संस्कृत साहित्य के उद्भट्ट विद्वान प्रो. राजेन्द्र मिश्र ने अपने समस्त एकांकी संग्रहों में जिन एकांकियों को सृजित किया, उनमें से बहुत सी दहेज प्रथा के अद्यतन प्रचलन को इंगित करती हैं तथा साथ ही साथ दहेज प्रथा के बहुपक्षीय कारकों को भी प्रकाश में लाती हैं।

प्रो. मिश्र द्वारा लिखित 'अभीष्टमुपायनम्' नामक सामाजिक एकांकी में दहेज समस्या के कई व्यक्तिगत, सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों को उद्घाटित किया गया है। जहाँ एक तरफ दहेज के उत्पन्न होने के कारणों को चित्रित किया गया है, वहीं दूसरी ओर दहेज न लेने की कुप्रवृत्ति को भी इंगित किया गया है। उस एकांकी के कथासार में 'सेठ दीवानचन्द अपने सुयोग्य पुत्र आलोक का विवाह धनकुबेर सेठ तुलसी राम की कान्वेण्ट-शिक्षिता कन्या डॉली से करना चाहता है। इसी बहाने सेठ दीवानचन्द तुलसीराम की फैक्टरियों का स्वामित्व पा सके।'[१] इस तथ्य को दीवानचन्द ने विमला से वार्तालाप करते समय स्पष्ट किया-'हे भाग्यवती! आज वह समय आ गया है, जब मनुष्य चन्द्रमा पर जा रहे हैं। आज समस्त प्रकार के गुण धन में ही है। धन और आभूषण के बिना स्त्री निरर्थक है। यदि मेरा पुत्र रूपवान है, गुणवान है, नैतिकता और सदाचार से युक्त है तो क्यों न दहेज के रूप में विशाल सम्पत्ति को अर्जित करूँ।'[२]

इस एकांकी के माध्यम से विवाह के व्यापारीकरण को भलीभाँति प्रदर्शित किया गया है। यदि हिन्दू विवाह के परम्परागत रूपों पर विचार करें तो प्रो. मिश्र यह पाते हैं कि परम्परागत रूप से हिन्दू विवाह एक धार्मिक संस्कार था, लेकिन दहेज प्रथा के कारण बहुत तेजी से व्यापारीकरण होता जा रहा है। इस सम्बन्ध में दीवानचन्द और विमला के वार्तालाप से यह तथ्य प्रदर्शित होता है। दीवानचन्द द्वारा विमला को समझायी गयी युक्ति 'विवाह' से विशाल सम्पत्ति का अर्जन होगा यह सुनकर विमला उद्बोधित करती है कि हे प्रभो! यह कैसी दुर्विचार है। पुत्र को बेचेंगे क्या? क्या पुत्र को भेड़-बकरी अथवा अन्न की भाँति देख रहे हैं। जब सही भाव पायेगा, बेंच दिया।[३] तत्पश्चात् दीवान चन्द घबड़ाते हुए धार्मिक विश्वासों और उद्धरणों की सहायता लेते हुए अपने ही

*एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत एवं प्राकृत भाषा, दी.द.उ.गो.वि.वि. गोरखपुर
**दी.द.उ.गो.वि.वि. गोरखपुर

कथनों पर अडिग रहते हुए कहते हैं, 'हे विधाता न जाने स्त्रियों की बुद्धि कैसी होती है? अरे भाग्यवती, क्या राजा दशरथ के द्वारा श्री राम बेचे गये थे? अथवा क्या राजा जनक के द्वारा अपनी पुत्री सीता को बेचा गया? विवाह के सम्बन्ध में तो दहेज के रूप में धन का लेना और देना तो होता ही है। इस तरह का व्यवहार तो प्राचीन धार्मिक व्यवस्था के अन्तर्गत ही आता है।'[४]

दीवानचन्द ने अपने कुटिल सोच चतुराई से विमला को निरूत्तर तो कर दिया, लेकिन विमला का मानसिक उद्वेग शान्त नहीं हुआ, क्योंकि इस सामाजिक कुव्यवस्था के कारण मध्यम् सामाजिक-आर्थिक स्तर की संस्कारवान चिरपरिचित कन्याएं भी अच्छे वर और उचित पारिवारिक माहौल में नहीं जा पा रही हैं।

यह बड़ी विडम्बना है कि हिन्दुओं के इस धार्मिक और परम्परागत विश्वासों ने भी दहेज-प्रथा को प्रोत्साहन दिया है। प्राचीन काल में लोग अपनी कन्याओं के विवाह में अधिक से अधिक सम्पत्ति, आभूषण, धन, उपहार इत्यादि वर को एक धार्मिक कृत्य मानकर प्रदान करते थे, जिसका अनुकरण/अनुसरण वर्तमान लोगों द्वारा भी किया जा रहा है। दहेज और उपहार देने सम्बन्धी विश्वास प्रारम्भ में धार्मिक परम्परा से सम्बद्ध थे, जबकि परिवर्तन की वर्तमान प्रक्रिया के अन्तर्गत इसे आज एक समझौते का रूप प्राप्त हो गया है।

वधू पक्ष द्वारा दहेज लेने हेतु उत्प्रेरित करना तथा समस्त सम्पत्ति का एकलौता वारिश बताकर भ्रामक तरीके से समझाना भी दहेज प्रथा का एक प्रमुख कारण बना हुआ है। वर्तमान सन्दर्भ में ऐसे दहेज, उपहार, सम्पत्ति प्राप्त करने की प्रक्रिया को 'निवासा' की संज्ञा प्रदान की जाती है। प्रो. राजेन्द्र मिश्र ने अपने अनूठी लेखनी का प्रयोग इस अछूते आयाम पर भी किया है। उन्होंने यह प्रदर्शित किया कि वर्तमान में वधू पक्ष की भी अभिवृत्ति दहेज देने के प्रति दिखायी देती है, जिसमें वे लोग सबसे ज्यादा उन्मुख होते हैं, जिनके परिवार में केवल एक वारिश के रूप में पुत्री ही है। पुत्री का विवाह होने के उपरान्त पिता के समस्त धन-सम्पत्ति तथा चल-अचल एवं अर्जित समस्त सम्पत्तियाँ दामाद तथा पुत्री का ही होता है। इस हेतु मिश्र जी ने भावस्पर्शी ढंग से इसकी अभिव्यक्ति अपने एकांकी के 'अभिष्टमुपायनम्' के डॉली और तुलसीराम नामक पात्र से प्रदर्शित करवाया है।

एकांकी में आलोक का पिता दीवानचन्द, तुलसीराम से अपने पुत्र के उत्तम गुण और कार्यों (एम.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण) की प्रशंसा कर रहा था। ऐसे में अपने पुत्र के आगे के कार्यों को स्पष्ट करते हुए कहा कि मेरा पुत्र शिक्षण कार्य करना चाहता है। इस विचार पर तुलसीराम की पुत्री डॉली बहुत ही मजाकिए ढंग से हँसती है और कहती है, पिता जी बहुत ही बेकार विचार है-गरीब शिक्षक। यद्यपि तुलसीराम ने अपनी पुत्री को मना करते हुए समझाया कि बेटी इस प्रकार नहीं हँसना चाहिए। क्योंकि स्थान और परिवेश के अनुसार ही विचार और व्यवसाय

होते हैं। आगे तुलसीराम ने दीवानचन्द को यह समझाते हुए कहा कि शिक्षण कार्य बहुत उत्तम कार्य नहीं है। मेरा इतना अधिक उद्योग है। लाखों, करोड़ों में मेरा व्यापार है। मेरे मृत्यु के उपरान्त सब कुछ तो मेरे पुत्री और दामाद के हाथों में ही आयेगा।[५]

प्रो. राजेन्द्र मिश्र ने दहेज की समस्या को 'नाट्यपञ्चामृतम्' एकांकी संग्रह के 'छलिताधर्मणम्' नामक एकांकी में उद्धृत किया है। साथ ही साथ दहेज की समस्या के निराकरण को भी इस एकांकी के माध्यम से स्पष्ट किया है।

'छलिताधर्मणम्' नामक एकांकी में यह दर्शाया गया है कि एक पुत्र को पिता अपने पालन-पोषण के बदले किस प्रकार छलता है। इस सन्दर्भ में यह स्पष्ट किया गया है-

भो, भोः सहृदयाजनाः साम्प्रतं प्रस्तूयतेऽस्माभिः अभिराजडाक्टरराजेन्द्रमिश्र प्रणीतम् एकांकीरूपकं छलिताधमर्ण नाम। अधमर्णः पुत्र उत्तमर्णेन पिता केन प्रकारेण छलितः इत्ययमेवाभिप्रायोऽस्य रूपकस्य। समाजे साम्प्रतं.....।[६]

वस्तुतः एकांकी का मूल अभिप्राय उसके शीर्षक से ही स्पष्ट है, फिर भी लेखक ने इस एकांकी के माध्यम से दहेज रूपी सामाजिक समस्या को विस्तृत ढंग से उद्घाटित करने का प्रयास किया है तथा इस समस्या के प्रमुख कारण के रूप में पिता की धनलोलुपता को स्पष्ट किया है। साथ ही साथ पिता के प्रभुत्व, स्त्रियों की निम्न दशा और पुरूष प्रधान सामाजिक व्यवस्था को दिखाया है। कथासार के आरम्भ में आलोक नाम का बाइस वर्षीय युवक अपनी माँ लक्ष्मी से विवाह के सन्दर्भ में बात करता है और कहता है कि माँ मैंने हजार बार कहा कि मैं मूर्ख एवं जड़ लड़की से विवाह नहीं करूँगा। क्यों आप लोग मुझे व्यर्थ में ही दुःख दे रही हैं। इसके प्रतिउत्तर में माँ अपनी दीन-हीन स्थिति बताते हुए कहती है, कि वत्स, तुम्हारे आदर्श विचार को मैं भली-भाँति जानती हूँ। तुम्हारे व्यथा का अनुभव कर सकती हूँ। परन्तु क्या करूँ? पति एवं पुत्र के बीच पत्थर के बीच में पिस जाते हुए आटे की तरह चूर-चूर हो जाती हूँ। मेरी क्या गति होगी।[७]

यहाँ यह स्पष्ट होता है कि पुरूष प्रधान समाज की व्यवस्था ने स्त्रियों को स्वतन्त्र विचार उत्प्लवित करने में अवरोध उत्पन्न करते रहे हैं।

आलोक अपनी माँ को बैठाकर अपने विवाह के सन्दर्भ में असहमति प्रकट करता है तथा स्वयं को वर मूल्य भी बताता है। आलोक यह व्यथित होकर कहता है कि माँ क्या आपने नौ माह अपने कोख में पालकर इसीलिए बड़ा किया कि विवाह के समय इसे बेचकर लखपति और मूर्ख गृहिणी को प्राप्त करूँ।[८]

अगले संवाद में आलोक यह भी कहता है कि माता जी मेरा होने वाला श्वसुर करोड़पति है, ऐसा मैंने सुना है। इस समय मेरे पिता जी मुझे हजारपति बनाकर धन मात्र के पक्षपाती उसको

वश में करना चाहते हैं।[९]

इसी प्रकार का दृष्टांत आगे आता है कि जिससे माँ पुत्र को उसके पिता के स्वस्थ अभिरूचि के बारे में स्पष्ट करती है। यद्यपि आलोक पिता के अभिरूचि के बारे में भली प्रकार परिचित है तथापि वह स्पष्ट करता है कि माँ पिता जी के बारे में आप नहीं जानती हैं।

यदि पिता जी की धनरूपी पिशाच के प्रति अभिरूचि न होती तो इस विवाह के लिए पक्षपात करने का कौन सा कारण है। इस विषय में मैं किसी प्रकार की विशेषता नहीं देख रहा हूँ। मेरे विचार से तो मेरे पिता जी क्रूर, लोभी एवं धन-दौलत में अधिक रूचि रखने वाले हैं। निश्चिय ही पुरूष के गुणमणि के शक्ति को नहीं जानते हैं। उस कुल में मैं कैसे उत्पन्न हुआ हूँ, जिस पुत्र में राजा के गुण न हों। आश्चर्य की बात तो यह है कि वे मुझे सीधा-सादा जन साधारण के समान जानते हैं।[१०]

इस प्रकार से इस एकांकी के तीनों उद्धरण पिता की धन लोलुपता को दर्शाती है। साथ ही साथ समाज के आर्थिक प्रतिस्पर्धा में धनार्जन के एक अनूठे तरीके के प्रति अभिरूचि को भी प्रदर्शित करती है। ये दृष्यान्त ये भी प्रदर्शित करते हैं कि भारतीय समाज का सर्वाधिक क्षेत्र पुरूष प्रधान है, जिसमें सभी परम्पराओं तथा व्यवहारों का निर्धारण पुरूष द्वारा ही होता है। भारत में आज भी विवाह सम्बन्धों के निर्धारण में माता पिता की भूमिका सर्वाधिक होती है। यद्यपि माता-पिता तथा परिवार के बड़े-बुजुर्ग पुत्रों तथा कन्याओं के विवाह को अपना दायित्व मानते हैं। ऐसे में लड़के तथा लड़कियों को स्वयं किसी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं प्राप्त हो पाती। स्वाभाविक है कि इस स्थिति में जीवन साथी के व्यक्तिगत गुणों की अपेक्षा उसके परिवार की सम्पन्नता अथवा दहेज की राशि को अधिक महत्व दिया जाने लगता है।

पुत्र ने दहेज के विपक्ष में तर्क देकर, सुदृढ़ दाम्पत्य का आशय पिता से प्रस्तुत किया। यद्यपि माता द्वारा भी पुत्र के भले हेतु समझाने का अथक प्रयास पिता से किया गया। ऐसे में स्वयं शिरोमणि (आलोक का पिता) अपने पुत्र से वार्तालाप हेतु उन्मुख होते हैं तथा पिता को देखकर पुत्र अपने माँ से यह कहता है कि माँ मेरी समस्या का उपाय सान्त्वना नहीं है। यदि पिता जी मेरे समस्या तथा कष्ट का अनुभव नहीं करते हैं तो इस नाटक की क्या आवश्यकता है। आलोक के दोषयुक्त बातों को सुनकर शिरोमणि अपने छलित व्यवहार तथा छलित रूप का इन वाक्यों में प्रदर्शन करता है कि आलोक तुमने क्या कहा? इस नाटक की क्या आवश्यकता? क्या मैं नाटक कर रहा हूँ? क्या इस समय तक तुमको अनेक प्रकार के सम्वर्धन के उपायों से पोषित करते हुए मैंने नाटक किया है? क्या तुम्हारे लालन-पालन में मैंने कमी की है?[११] आगे संवाद का प्रवाह रखते हुए आलोक पिता से यह कहता है कि पिता जी मुझे अन्यथा न लें। परन्तु यह सर्वथा सत्य है कि आप इस समय अपने सम्वर्धनों के उपायों का पालन-पोषण एवं रक्षादि व्यापारों का मूल्य चाहते

हैं। वह भी पुत्र को वस्तु-रूप में बेंचकर।[१३]

इसी प्रकार पुत्र और पिता में वार्तालाप चलता रहता है। पिता शिरोमणि अपने पुत्र के तर्क तथा व्यवहारिक बातों से स्वयं के धन तथा सम्पत्ति अर्जन का लक्ष्य दूर दिखता नजर आ रहा था। ऐसे में शिरोमणि ने अपने छलिये रूप तथा छलिया व्यवहार के माध्यम से पुत्र को इमोशनल ब्लैकमेल करता है तथा अन्ततः विवाह की सहमति लेने में सफल हो जाता है।

ऐसा प्रसंग तब चलता है जब आलोक विवाह न करने की हठ करता है, तब शिरोमणि वेदनापूर्वक यह कहता है-ठीक है मैंने आज पुत्र सुख प्राप्त किया है। कष्ट की बात है कि अपना ही गाय का बछड़ा बलवान होकर इस समय सींगों के प्रहार से पीड़ित कर रहा है। फिर बिस्तर पर धीरे से गिरकर यह कहता है कि उचित आचरण निभाया पुत्र तुमने। मेरा पुत्र-मोह भंग हो गया। पुत्र स्नेह का यही उचित दण्ड है। दुःख यह है कि यह अनर्थक उत्पात कहाँ से आया? हे अभागी दुर्दैव! किस-जन्मजन्मान्तर का यह पाप मेरा स्फुरित हो रहा है। शिरोमणि आँसू गिराते हुए उच्च स्तर में यह कह रहा है कि अस्त होते हुए सूर्य किरण की तरह इस समय मेरा क्या अस्तित्व है? यदि आज हूँ तो कल नहीं रहूँगा, परन्तु इस समय जीते जी घायल हो गया हूँ।[१४]

इस छल पूर्ण वार्तालाप को प्रकट कर पिता अपने पुत्र को प्रभाव में लेना चाहता है, जिसमें अगला प्रयास अपने वार्ता के माध्यम से शिरोमणि अपनी पत्नी से प्रकट करता है, जहाँ उसका पुत्र भी मौजूद है। यथा-पुत्र की धृष्टता से डगमगाया हूँ, मैं इस समय प्राण त्यागने का इच्छुक हूँ। सुखी रहो पुत्र सहित तुम। पतिव्रते! कायरता छोड़ो। मुझे ही कोई अपकार पुत्र बनकर सता रहा है। इस विषय में तेरा कोई दोष नहीं है। हृदय रोग से जर्जर हो गया हूँ। अकाल में मेरा निधन है। मत डरो। इस समय मेरी जीवन यात्रा समाप्त है।[१४]

अपने छलधर्मी व्यवहार का अन्तिम और सफल प्रदर्शन शिरोमणि तब करता है, जब आलोक को भी अपने पिता का जीवन कष्टमय और प्राणघातक प्रतीत होता है। तभी शिरोमणि मन ही मन यह कहता है कि मेरे वचनों को सुनकर भी यह बालक थोड़ा भी विचलित नहीं हो रहा है। ठीक है, यह अन्तिम प्रयास मैं करता हूँ, जिससे उसका हृदय द्रवित हो जाये और मैं लक्ष्य को पा सकूँ। शिरोमणि मृत्यु मूर्च्छा प्रलाप का अभिनय करते हैं। लक्ष्मी तुम कहाँ हो? अत्यन्त कष्टकर पीड़ा हो रही है, जिसका सहन मैं नहीं कर पा रहा हूँ। जल्दी आओ। हे देवी! मेरा हृदय विदिर्ण हो रहा है। ऐसे वचनों का सुनकर आलोक पिता के कष्ट को देखकर शीघ्र समीप जाकर पिता से क्षमा याचना करता है तथा लक्ष्मी करुण विलाप करते हुए नेत्र खोलने की याचना करती है। आलोक फिर दीनता पूर्वक पिता के आज्ञापालन हेतु प्रार्थना करता है।[१५] अन्ततः शिरोमणि मन ही मन प्रसन्न होता है और अपने प्राण व्यथा का नाटक सफल हुआ पाता है। मन ही मन वह कहता है कि आलोक रूपी सोने के मृग का वध हो गया है। होश आने का नाटक करते हुए

शिरोमणि अपने पुत्र से कहता है कि पुत्र आलोक कहाँ हो? जल्दी समीप आओ, तुमने मेरे वचन और स्वाभिमान की रक्षा की है। तुम इस समय पितृ ऋण से मुक्त हो गये हो, चिरंजीवी रहो। अन्ततः फिर एक बार शरीर की शिथिलता का नाटक करता है।[१६]

इस प्रकार इस सम्पूर्ण एकांकी में पिता की धन लोलुपता तथा छलपूर्ण व्यवहार का सर्वोत्तम प्रदर्शन दिखलाया गया है, जिसमें यह दहेज के प्रमुख कारण के रूप में विद्यमान है, जिसमें पिता ने छलपूर्ण व्यवहार में कई व्यक्तिगत, सामाजिक तथा धार्मिक कारकों का स्पष्टीकरण विवाहोपरान्त सम्पत्ति अर्जन के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है।

डॉ. राजेन्द्र मिश्र ने दहेज प्रथा जैसी अनुचित व्यवस्था को नाट्यनवरत्नम् के 'स्वयंवरकेन्द्रम्' में विस्तृत उल्लेख किया है। वस्तुतः स्वयंवरकेन्द्रम् एक व्यंग्यात्मक लघुनाट्य है, जो दहेज के बढ़ते स्वरूप को प्रदर्शित करती है। आज धर्माचरण-प्रवीण, पढ़ा-लिखा, विवेकी पिता कन्या का विवाह करते समय यह नहीं सोचता कि वर चरित्रवान्, शान्त-प्रकृति, ईमानदार, ईश्वरनिष्ठ एवं सदाशय होना चाहिए, बल्कि वह यह सोचता है कि वर इन्जीनियर, डाक्टर, व्यापारी अथवा ठेकेदार होना चाहिए, जिसे वेतन कम और कमीशन, घूस, बेइमानी का धन अधिक मिलता हो।[१७]

इस तरह की निषेधात्मक अभिवृत्ति को प्रो. मिश्र ने बड़े ही सरल ढंग से रेखांकित किया है। प्रो. मिश्र द्वारा 'स्वंयवरकेन्द्रम्' में इस तथ्य पर भी प्रकाश डाला गया कि समाज में वैवाहिक संस्कार, अब संस्कार ही नहीं रह गये हैं, अपितु व्यापारी वृत्ति से युक्त मोलभाव की प्रक्रिया बन गयी है, जिसे कार्यालय तथा वैवाहिक केन्द्रों के माध्यम से सम्पन्न करने की कोशिश की जाती है। कार्यालय तथा केन्द्रों के पीठाध्यक्ष विज्ञापनों तथा ध्वनि प्रसारण यन्त्रों के माध्यम से सूचनाओं (वैवाहिक) को प्रसारित करवाते हैं और लोग अपने धन और सम्पत्ति को ध्यान में रखकर वर तथा वधू का मोलभाव करके, वर-वधू का जोड़ा बैठाते हैं। यद्यपि ऐसी व्यापारी वृत्ति गाय और भैंस के बाजारों में ही हुआ करती थी। लेकिन समाज की कुव्यवस्था ने तथा दहेज रूपी आँधी ने इस संस्कार को बाजारू रूप प्रदान कर दिया है।[१८]

लोग कहते हैं कि मनुष्यों में मानवता व्याप्त है। मनुष्यों में ही विचारों का प्रस्फुटन, मनुष्यों में ही नैतिकता समग्र रूप से व्याप्त है। यद्यपि प्रो. मिश्र ने इन संस्कृत भाषा की लिपियों से युक्तायुक्त सुसज्जित एवं सरल शैली से एकांकी रूपी अभिव्यक्ति में दहेज रूपी समस्या के सभी अनछुए पहलुओं पर प्रकाश डाला है, जिससे लोगों के विचारों की भ्रामकता सिद्ध होती है। इस सन्दर्भ में देखा जाये तो ज्यादातर लोग स्वतुष्टकारी नीति का पालन करने वाले होते हैं। आज लोगों के न्याय, आदर्श, धार्मिक विश्वास तथा नैतिकता सभी तुष्टीकरण से प्रेरित हो गयी है।

प्रो. मिश्र ने इस वैवाहिक केन्द्रों तथा कार्यालयों के बाजारू व्यवस्था का जो अद्भुत और

आंचलित दृष्य अपने लेखनी के माध्यम से उकेरा, वह अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता है।

बाजारू व्यवस्था को उद्धृत करते हुए उन्होंने पात्रों के माध्यम से यह कहलवाया कि-'सुनिये, सुनिये! भीड़ निरन्तर बढ़ती जा रही है। इसलिए आप सभी लोगों की सुविधा के लिए कुछ सूचना दी जा रही है। सबकी रूचि अलग-अलग होती है। सभी पिता अपनी पुत्री के समान रूप, गुण तथा अभिरूचि के समान ही वर चाहते हैं। ऐसा भली-भाँति जानकर ही हमारे द्वारा अलग-अलग सूचना पीठ की व्यवस्था की गयी है। कृपया अपनी अपेक्षानुसार वर विषयक सूचना संग्रह के लिए अलग-अलग कक्षों में जाएं। हमारे द्वारा की गयी व्यवस्था इस प्रकार है- इन्जीनियर से सम्बन्धित वर चाहने वाले प्रथम कक्ष में, राजनेता आदि वर को चाहने वाले द्वितीय कक्ष में, गायक वर चाहने वाले तृतीय कक्ष में, नाचने वाले वर की इच्छा वाले चतुर्थ कक्ष में प्रवेश करें। ये सभी कक्ष भूमितल पर स्थित है।[१९]

इसी प्रकार उद्योगपति खानदान से वर चाहने वाले प्रथम तल के प्रथम कक्ष में, डाक्टर वर चाहने वाले द्वितीय कक्ष में, प्रवासी भारतीय वर चाहने वाले तृतीय कक्ष में, विधुर वर की इच्छा रखने वाले चतुर्थ कक्ष में सम्पर्क करें।[२०]

इसी प्रकार केन्द्रीय प्रशासनिक सेवा से सम्बन्धित वर चाहने वाले द्वितीय तल के प्रथम कक्ष में, राज्य प्रशासनिक सेवा से सम्बन्धित वर चाहने वाले द्वितीय कक्ष में, दाम्पत्य सम्बन्ध विच्छेद वाले वर चाहने वाले तृतीय कक्ष में तथा अन्तर्जातीय धर्मसम्प्रदाय में विवाह करने वाले चतुर्थ कक्ष में जाए।[२१] विकलांग वर वधू पक्ष के लोगों के लिए मुख्य भवन के दक्षिण भाग में स्थित झोपड़ी में व्यवस्था की गयी है। इसी प्रकार अतिविशिष्ट विवाह से सम्बन्धित कुछ अति विशिष्ट सूचना पीठ की स्थापना केन्द्रीय कार्यालय में की गयी है। इस कक्ष में वे लोग ही प्रवेश कर सकते हैं, जिनके पास स्वयंवर केन्द्र के अध्यक्ष द्वारा प्रदत्त अतिविशिष्ट विवाह सन्दर्भ प्रमाण पत्र होगा। अब सूचना समाप्त हुई। कृपया निर्देशानुसार कार्य करें। बहुत भीड़ है। भ्रम में न पड़े, कृपया धीरे-धीरे जाएं। यद्यपि सूचना सुनने के पश्चात लोग अभीष्ट कक्ष में जाते हुए दिखाई पड़ते हैं।[२२]

संदर्भ :

१. 'अभीष्टयुपायनम्', रुपरुद्रीयम् डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, १९८६, पृष्ठ ३

२. भाग्यवति। गतं तद् युगम्। इदानीं तु मनुष्यश्चन्द्रमपि समारोहति।
सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ते। कांचनं बिना कामिनी निरर्थका।
पुनश्च मम पुत्रो रूपवान्, गुणवान्, सदाचारपरायणश्च।
कथं न तादृशं यौतकरुपेण विशालां सम्पत्तिमर्जयेयम्?
'अभीष्टयुपायनम्', रुपरुद्रीयम्-डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, १९८६, पृष्ठ-५

३. विमला (सनिःश्वासम्)
हे प्रभो! कोऽयं भवतां दुर्विचारः पुत्रं विक्रेष्यति किम्?
पुत्रोऽपि नाम वृषभः हागः अन्नमिव प्रतीयते?
'अभीष्टयुपायनम्', रुपरूद्रीयम्-डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, १९८६, पृष्ठ-५

४. दीवानचन्द : (सोद्वेगम)
न जाने विधिना कीदृशी बुद्धिर्निर्मिता स्त्रीणाम? अये भाग्यवति! किं दशरथेन श्रीरामो विक्रीतः? किं जनकेन वा स्वपुत्री सीता विक्रीता? विवाहसम्बन्धे तु यौतकरूपेण धनस्य आदानं प्रदानं वा भवत्येव! प्राचीनोऽयं व्यवहारः।
'अभीष्टयुपायनम्', रुपरूद्रीयम्-डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, १९८६, पृष्ठ-५

५. दीवानचन्द : (हसन्)
किमहं चिन्तयिष्यामि? यद्यपि आलोक एम.ए. परीक्षामुतीर्णः क्वचित् शिक्षणं कर्तुं वांछति, किन्तु (इत्यर्धोक्ते)
डॉली : (निर्गलं हसन्ती)
डैड! ह्वाट ए सिली आइडिया? द पुअर टीचर।
तुलसीराम : (सनिर्भर्त्सनम्)
डॉलि। वत्से! नैवमुपहसनीयम्। नेदं स्थानं कलिकाता। स्थानानुकूलमेवं विचारा जायन्ते।
(विमला आग्लवाक्यार्थमनवगत्यापि वितृष्णां नाट्यति)
तुलसीराम : दीवानचन्द्र! शिक्षणेन किं भविष्यति? मम एतावत्य : कर्पशाला वर्तन्ते! लक्षकोटिमितो मम व्यापारः। मयि मृते, सर्वमपि मम पुत्र्या एव हस्ते गच्छति।
'अभिष्टयुपायनम्', रुपरुद्रीयम्- डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, बैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, १९८६, पृष्ठ-७

६. 'छलिताधर्मणम्', नाट्यपन्चामृतम्-डॉ. राजेन्द्र मिश्र, अक्षयवन्त प्रकाशन, इलाहाबाद १९७७, पृष्ठ-६४

७. (ततः प्रविशति अम्बया भगिन्या मित्रेण च सार्धं विवदमानो द्वाविंशतिवर्षदेशीयः कश्चित सुदर्शनो युवकः)
आलोक : अम्ब! कथितम्मया सहस्रवारं यत्त तथा मूढ़जरठया सार्धं विवाहं करिष्यामि। किन्तु खलु भवती वृथैव मा क्लेशयति?
लक्ष्मी : आलोक! जानामि वत्स! त्वदीयमादर्शम। अनुभवामि तावकीं व्यथाम्।
परन्तु किं करोमि? पतिपुत्रपयोर्मध्येऽहमेषा धरट्टशिला युगलावकाशे पिद्यमाना गोधूमतत्तिरिव चूर्णीभवामि! का मे गतिः?
'छलिताधर्मणम्' नाट्यपंचाममृतम्-डॉ. राजेन्द्र मिश्र, अक्षयवन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७७, पृष्ठ-६५

८. आलोक : (जननीमासने समुपवेशयन्)
अम्ब ! निषीदतु भवती मुहूर्तमात्रमत्रासने। एषोऽहं भवतीमवगतार्थां करोमि।
(भगिनीं मित्रञ्च समवलोक्य)
निर्मले! तिष्ठ त्वमपि! सुशीले! प्रियमित्र!! त्वमपि तावत स्थिरो भव।
(सर्वेऽपि प्रायेण संमुखीनाः यथास्थानमुपविशन्ति)
आलोक : अम्ब!शृणोतु भवती साम्प्रतम्! अयम्मम प्रश्नो यल्किमर्थमहं भवत्या सयत्नं नवमासपर्य्यन्तमुदरे धृतः। दुस्सहप्रसूतिव्यथां विस्मरन्त्याऽपि स्मेराननया जनितः? किमेतदर्थमेव यदिदं तु पुत्राभिधं वस्तुजातं श्रोत्रिहट्टे विक्रीय लक्षपतिगृहिणी भविष्यामि?
नाट्यपन्चामृतम् 'छलिताधर्मणम्', डॉ. राजेन्द्र मिश्र, अक्षयवन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७७ पृष्ठ-६५

९. आलोकः अम्ब! मम भावी श्वसुरः कोटिपतिरिति श्रुतम्मया। साम्प्रतं स पितृचरणम्मे सहस्रपतिं विधाय धनैकपक्षपातिनं तं वशीकर्तुमीहते।
पश्यतु,
छलिताधर्मणम्' नाट्यपन्चामृतम्-डॉ. राजेन्द मिश्र, अक्षयवन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७७, पृष्ठ-६६

१०. लक्ष्मी : (ससान्त्वनम्)
आलोक! को न खलु जनिप्रदाता पिता सन्ततिक्षेमं न कामयते।
पुनश्च नार्थैकमात्राभिरुचिस्ते पितृचरणः
आलोक : अत्रैवाविदितास्ति भवती। यदि नाम
पितृचरणस्यार्थपिशाचं-ऽअभिरूचिर्न स्यात्तर्हि किन्तु खलु कारणमस्मिन्
परिणये पक्षपातस्य! नाल्पमत्र किमपि वैशिष्ट्यं पश्यामि। मन्यतेन
तु, पिता क्रूरो लुब्धे द्रविणविभवाधिक्यरूचिको
ध्रुवं नो जानीते पुरूषगुणमाणिक्यविषयम्।
कुले तस्मिंनाता कथमिव सुताऽपार्थिवगुणा।
भजेत्सादृश्यम्मे प्रकृतजनसाधारणम ह्रो।।
छलिताधर्मणम्' नाट्यपंचामृतम्-डॉ. राजेन्द्र मिश्र, अक्षयवन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७७, पृष्ठ-६७

११. आलोक : (सासूयमिव)
मातः किम्पुनः सान्त्वनमेवोपायोऽवशिष्टः यदि तातचरणो नानुभवति मदव्यर्थां तर्हि काऽऽवश्यकताऽस्य नाटकस्य?
शिरोमणि : आलोक । किमुक्तं त्वया? काऽऽवश्कताऽस्य नाटकस्येति।
किम्मया नाटकं क्रियते? किम् अद्यावधि त्वाँ विविधसंवर्णनोपायैः
परिपाऽयता मया नाटकमेव विहितम्
छलिताधर्मणम्' नाट्यपंचामृतम् डॉ. राजेन्द मिश्र, अक्षयवन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७७, पृष्ठ ६७

१२. आलोक : (सापेक्षम्)
तात! अलम्मामन्यथा सम्भाव्य। किन्तु सर्वथा सत्यमिदं यद् भवान् सम्प्रति स्वसंवर्द्धनोपायानां पालनपोषणरक्षणादिव्यापाराणां वा मूल्यं वांछति! तदपि पुनः मा पुत्रवस्तुजातं विक्रीय।
छलिताधर्मणम्' नाट्यपन्चामृतम् डॉ. राजेन्द मिश्र, अक्षयवन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७७, पृष्ठ ६७

१३. शिरोमणि : (शीर्षं सारयन् सकृतकवेदनम्)
युज्यते! प्राप्तं मयाऽद्य पुत्रसुखम्! हन्त! आत्मन एवं धेनुवत्सकां
बलीवर्दीभूय साम्प्रतं विषाणघातैः पीडयति?
(पर्यङ्कोपरि शिथिलं निपत्य)
उचितमाचरितं वत्स! प्रमोहो मे व्यपगतः पुत्रस्नेहस्यायमेवो-चिते
दण्डः। हन्त धो : कुतोऽयमनर्थसम्पातः? अयि भाग्यद्वतक दुर्दैव!
कस्य मे जननान्तरकृतमहापातकस्येदं विस्फूर्जितम्।
(साश्रुनयनं किन्चित्तारस्वरेण)
अस्ताचलगमनोन्मुखस्य मरीचमालिन इव किम्मे स्वारस्यमधुना?
अद्यास्मि श्वो न भविष्यामि। किन्तु जीवितमिदानीं शल्यमूतम्।

-छलिताधर्मणम्' नाट्यपंचामृतम्-डॉ. राजेन्द्र मिश्र, अक्षयवन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७७, पृष्ठ संख्या-६८

१४. शिरोमणि :.....

पुत्रधार्ष्ट्यखलीकृतोऽहमपि सम्प्रति त्यक्तजिजी-विषोऽस्मि संवृत: सुखिनी भव त्वमेव पुत्रकेण सार्धम्।

.....

शिरोमणि : साध्वि! अलं कातर्येण। ममैव कश्चिदपकार: पूर्वीभूय शातयति। न ते दोषोऽत्र। हृदयरोगेण जर्जरीभूतोऽस्मि। अनियतत्रेलम्बे निधनम। मा मैषी:। समाप्तेदानी जीवनयात्रा।

छलिताधर्मणम् नाट्यपंचामृतम्-डॉ. राजेन्द्र मिश्र, अक्षयवन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७७, पृष्ठ संख्या-६९

१५. आलोक : (आत्मगतम्)

अये, महददु:खमनुभवति जननी। तातोऽपि जीवितनिरपेक्षोऽवलोक्यते।

हृदयरोगविपन्न:क्वचित्प्राणान्न विसृजेत। एवं भूते सती जीवनम्मे कलंकित भविष्यति।

(उष्णं नि:श्वस्य)

हे प्रभो! देहि मे सुमतिम्। पितृप्रदत्तमिदं जीवनम्! मातृजुष्टमिदं शरीरम्।

सर्वथाऽधमर्णोऽस्मि तयो:। तत्किं करवाणि? एकत: पितृपरितोषोऽपरत:

स्वप्नाद्ध्वंकुरच्छेद:।

(श्रुतिमभिनयति)

शिरोमणि : (आत्मगतम्) मद्वाचोयुक्तिमाकर्ण्यापि माणवकोऽयं न मनाग्

विचलति! भवतु, अन्तिमोऽयं प्रयास: क्रियते मया।

(मृत्युमूर्च्छाप्रलापमभिनयन्)

लक्ष्मि! क्वासि? सुदुस्सह्येयं पीडा न सोढ्शक्यतेऽधुना। शीघ्रमेहि। आह

रे दैव! स्फुटति में हृदयम्!

आलोक : (सम्भ्रमं पार्श्वमुपेत्य पादयोर्निपत्य च)

तातचरण! माऽऽत्मानं क्लेशयतु! प्रसीदतु साम्प्रतम्। अयमहं भक्तनूज:

सक्षमायाचनमभ्यर्णचरोऽस्मि लक्ष्मी: (करूणं विलपन्ती)

स्वामिन! समाश्वसिहि तावत् आलोकोऽयं भवद्वशंवदस्तिष्ठति। उन्मीलय

तावन्नेत्रे!

छलिताधर्मणम्' नाट्यपंचामृतम् डॉ. राजेन्द्र मिश्र, अक्षयवन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७७, पृष्ठ संख्या : ६९ ७०

१६. (चेतनामाधिनीय)

वत्स आलोक! क्वासि? पार्श्वमायाहि तावत्।

(आलोक शिरोमणिसमीपं गच्छति)

वत्स! मद्वचनं मत्स्वाभिमानन्च संरक्ष्य सम्प्रत्यनृणोऽसि जात:।

चिरञ्जीव।

(पुन: कलेवरशैथिल्यं नाटयति)

छलिताधर्मणम्' नाट्यपन्चामृतम्-डॉ. राजेन्द्र मिश्र, अक्षयवन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७७, पृष्ठ संख्या-७०

१७. स्वयंवरकेन्द्रम् नाट्यनवरत्नम् डॉ. राजेन्द्र मिश्र, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७७, पृष्ठ ८०

१८. महानगरहृदयस्थले किञ्चत्कार्यालय: यच्छीर्षे लिखितं वर्तते-

स्वयंवर-केन्द्रम्। कार्यालयाभ्यन्तरे षष्ठिभागे च महिलाबहुलो महान्
सम्मर्दोऽवलोक्यते ध्वनिप्रसारणयन्त्रेण समुदघोष्यते।।

.....

समाचारपत्रेषु तत्राम-प्रकाशनव्यवस्थाऽप्यस्माभिः क्रियते। वरस्य वरपित्रोश्च
छायाचित्राण्यपि प्रकाश्यन्ते।

स्वयंवरकेन्द्रम, नाट्यनवरत्नम्,-डॉ. राजेन्द्र मिश्र, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७७, पृष्ठ-८१

१९. श्रूयतां श्रूयताम्! सम्मर्दो नितरां वर्धमान एव परिलक्ष्यते। अतएव भवतां समेषां
सौकर्याय दीयते काचित् सूचना। भिन्नरूचिर्हि लोकः। सर्वे पितरः
स्वकन्यारूपगुणाभिरूचिसमनुरूपमेव वरमिच्छन्ति इति सम्यग् विज्ञायैवाऽस्माभिः
पृथक सूचनापीठानि व्यवस्थापितानि। कृपया यथापेक्षितवरविषयिणीं सूचनां
संग्रहीतुं पृथक कक्षेषु प्रविशन्तु। व्यवस्थाऽस्माभिरीदृशी कृतायान्त्रिकवराभिलाषिणः प्रथमकक्षे, राजनेतृवराभिलाषिणो द्वितीयकक्षे, गायकवरोपेक्षिणस्तृतीयकक्षे, नर्तकवरापेक्षिणश्च चतुर्थकक्षे प्रविशन्तु। एते सर्वेऽपि कक्षाः भूमितल एव स्थितास्सन्ति।

स्वयंवरकेन्द्रम, नाट्यनवरत्नम्-डॉ. राजेन्द्र मिश्र, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७७, पृष्ठ-८३

२०. अथोद्योगपतिकुलजं वरं वरीतुकामाः प्रथमतलस्य प्रथमकक्षे,
भिषग्वराभिलाषिणो द्वितीयकक्षे, प्रवासिभारतीयवराभिलाषिणस्तृतीयकक्षे,
विधुरवराभिलाषिणीश्चतुर्थकक्षे सम्पर्कं साध्यन्तु।

स्वयंवरकेन्द्रम, नाट्यनवरत्नम्-डॉ. राजेन्द्र मिश्र, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७७, पृष्ठ-८३

२१. एवमेव केन्द्रीयप्रशासनिकसेवार्हवराभिलाषिणो द्वितीयतलस्य प्रथम कक्षे,
राज्यप्रशासनिकसेवार्हवरापेक्षिणो द्वितीय कक्षे, विच्छिन्नदाम्पत्यसम्बन्धानां
वराणामभिलाषिणस्तृतीयकक्षे,
किन्वाऽन्तर्जातिधर्मसम्प्रदायविवाहार्थिनश्चतुर्थकक्षे यान्तु।

स्वयंवरकेन्द्रम, नाट्यनवरत्नम्-डॉ. राजेन्द्र मिश्र, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७७, पृष्ठ-८३

२२. विकलाङ्गवरवधूपक्षधराणा कृते मुख्यभवनं दक्षिणेन स्थिते कुटीरे व्यवस्था कृता वर्तते। एवमेवाऽतिविशिष्टविवाहसन्दर्भस्य कृते किञ्चिदतिविशिष्टमेव सूचनापीठं स्थापितं वर्तते केन्द्रीयकार्यालये। अस्मिन् कक्षे त एव प्रवेक्ष्यन्ति येषां पार्श्वे स्वयंवरकेन्द्राध्यक्षप्रदत्तम् अतिविशिष्टविवाहसन्दर्भप्रमाण पत्रं भविष्यति।
सम्प्रति सूचना समाप्ता। कृपया यथानिर्देशमाचरन्तु। अलं सम्मर्देन। अलं
सम्भ्रमेण! कृपया मन्दं लपन्तु।
(सूचना श्रुत्वैव जना अभीष्टकक्षान प्रति प्रस्थिता दृश्यन्ते)

स्वयंवरकेन्द्रम, नाट्यनवरत्नम्-डॉ. राजेन्द्र मिश्र, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७७, पृष्ठ-८३

भारत-बांग्लादेश सम्बन्ध : गतिरोध एवं समाधान

ब्रजेश कुमार मिश्र*

संक्षिप्तिका – १९७१ ई. में बांग्लादेश की आजादी के बाद से ही भारत के साथ उसके सम्बन्ध सुदृढ़ रहे हैं। इसके पीछे प्रमुख कारण उसकी स्वतन्त्रता में भारतीय विदेश नीति की मुख्य भूमिका थी। शेख मुजीब की हत्या के बाद पाकिस्तान की दखल बांग्लादेश में बढ़ी और भारत के साथ उसके रिश्ते तल्ख होने शुरू हो गये। दोनों देशों के मध्य आतंकवाद, घुसपैठ, प्रवासी समस्या के साथ ही नदी जल-विवाद भी एक प्रमुख समस्या रही है।

प्रस्तुत शोध पत्र में इन्हीं समस्याओं को इंगित करते हुए 'थ्री बाक्स इश्यू थियरी' के माध्यम से इनके समाधान के प्रयास ढूंढे गये हैं।

कुंजी शब्द – आतंकवाद, जल-विवाद, थ्री बाक्स इश्यू थियरी।

१९४७ में भारत का विभाजन बीसवीं सदी की अविश्वसनीय घटनाओं में से एक थी। इस दौरान भारतीय उप महाद्वीप में एक नये राष्ट्र पाकिस्तान का अभ्युदय हुआ। पाकिस्तान के दो घटक थे- पश्चिमी पाकिस्तान तथा पूर्वी पाकिस्तान। इस विभाजन ने हजारों लोगों को बेघर कर दिया। हजारों लोग मारे गये। इस विभाजन ने भारत और पाकिस्तान के मध्य तीन बड़े युद्धों की नींव रखी। ये युद्ध क्रमशः १९४७ ई. , १९६५ ई. तथा १९७१ ई. में लड़े गये। हर बार पाकिस्तान पराजित हुआ। १९७१ ई. का युद्ध उपमहाद्वीप के लिये एक महत्वपूर्ण घटना थी। इस युद्ध के बाद पाकिस्तान का पूर्वी हिस्सा स्वतंत्र हो गया और अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर बांग्लादेश एक नये राष्ट्र के रूप में उभरा।

बांग्लादेश की माँग पूर्वी पाकिस्तान के लोगों द्वारा पाकिस्तान के जन्म के साथ ही शुरू हो गयी थी। अपनी स्वतंत्रता के मात्र पाँच वर्षों के भीतर पूर्वी पाकिस्तान को अपनी अस्मिता के लिये अपने ही देश से संघर्ष करना पड़ा। पूर्वी पाकिस्तान के ऊपर जबरन उर्दू भाषा को थोप दिया गया। यहाँ के लोगों ने 'बांग्ला भाषा आन्दोलन', पाकिस्तानी सरकार के विरूद्ध चलाया। २१ फरवरी, १९५२ के इस आन्दोलन को पाकिस्तान की सरकार ने दबाने का पुरजोर प्रयास किया।[1] बांग्लादेश में इस दिन को बड़े सम्मान के साथ 'भाषा शहीद दिवस' के रूप में मनाया जाता है। २१ फरवरी, १९५२ को हुई हिंसा में मारे गये लोगों की स्मृति में UNESCO ने १९९९ ई. में इस दिन को 'इण्टरनेशनल मदर लैंग्वेज डे' के रूप में मनाने की घोषणा की।[2]

पाकिस्तान का निर्माण 'द्विराष्ट्र सिद्धान्त'[3] के आधार पर हुआ था। पाकिस्तान के लोग उर्दू

* एसिस्टेण्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, अखिल भाग्य पी.जी. कालेज, शनापार

को भारतीय इस्लामी संस्कृति की देन मानते थे तथा उर्दू भाषा को आत्मसात किये हुए थे, जबकि पूर्वी पाकिस्तान की जनता हिन्दू संस्कृति से प्रभावित थी।[4] पश्चिमी पाकिस्तान के राजनीतिज्ञों का मानना था कि पूर्वी पाकिस्तान समर्थित बांग्ला भाषा आन्दोलन पाकिस्तान के राष्ट्रीय हितों के विरूद्ध था।[5] आर्थिक एवं सांस्कृतिक मुद्दों पर दोनों हिस्सों के मध्य मतभेद बढ़ता गया। १९६० के दशक में पूर्वी पाकिस्तान में 'आवामी लीग' बांग्लाभाषियों की एक सशक्त आवाज बनकर उभरी। १९६० ई. तथा १९६६ ई. में आवामी लीग ने आन्तरिक स्वायत्तता के लिये ऐतिहासिक आन्दोलन चलाया। इस क्रम में इसके अध्यक्ष शेख मुजीबुर्रहमान को जेल जाना पड़ा। १९६९ ई. में व्यापक जन-दबाव के कारण पाकिस्तानी सरकार को उन्हें छोड़ना पड़ा। इसी बीच अगस्त १९७० ई. में पूर्वी पाकिस्तान के तटीय क्षेत्रों में भयंकर तूफान के कारण बाढ़ आ गयी। इस बाढ़ ने काफी तबाही मचायी। पाकिस्तानी सरकार ने इस प्राकृतिक आपदा की घड़ी में बेहद लापरवाही भरा रूख अपनाया। इस सम्पूर्ण घटनाक्रम ने एक जन-आक्रोश का रूप धारण कर लिया। दिसम्बर, १९७० में पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तान की केन्द्रीय एवं प्रान्तीय असेम्बलियों में चुनाव कराये गये। यह चुनाव एक व्यक्ति-एक मत के आधार पर पाकिस्तान का पहला आम चुनाव था। इसमें आवामी लीग के पूर्वी पाकिस्तान की १६२ सीटों में से १६० सीटें मिली थीं। यद्यपि आवामी लीग पश्चिमी पाकिस्तान में चुनाव नहीं लड़ी थी तथापि पाकिस्तान की राष्ट्रीय असेम्बली में उसे पूर्ण बहुमत मिला।

याह्या खाँ ने हिपोक्रेट्स नेचर अपनाते हुए एक ओर तो शेख मुजीब को पाकिस्तान का भावी प्रधानमंत्री घोषित करते हुए उनकी इस माँग को कि ढाका में राष्ट्रीय असेम्बली का अधिवेशन बुलाया जाए, स्वीकार कर ली वहीं दूसरी तरफ पूर्वी पाकिस्तान के स्वायत्तता आन्दोलन को कुचलने का निश्चय भी किया।[6] २२ फरवरी, १९७१ को एक सम्मेलन में याह्या खाँ ने कहा, "यह माना जाने लगा है कि यह नरसंहार पाकिस्तान की राष्ट्रीयता को बचाने के लिये अत्यन्त आवश्यक है। अत: यह आवश्यक है कि आवामी लीग तथा उनके समर्थकों को दमित किया जाए तथा इनमें से तीन लाख लोगों की हत्या की जाए।' १ मार्च, १९७१ को पूर्वी पाकिस्तान में 'मार्शल लॉ' लागू कर दिया गया और जनरल टिक्का खाँ को यहाँ का सैनिक गवर्नर नियुक्त किया गया। शेख मुजीब ने इसके विरूद्ध 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' चलाया, जो असफल रहा। याह्या खाँ की नौटंकी लगातार जारी रही। पाकिस्तान ने शेख मुजीब को बातचीत के बहाने इस्लामाबाद बुलाया। यहीं इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।[8] इसके विरोध में पूर्वी पाकिस्तान में अभूतपूर्व विद्रोह शुरू हो गया। जुलूस निकाले गये। बैंक लूटे गये। २५ मार्च, १९७१ को याह्या खाँ ने सेना को आवामी लीग के आन्दोलन को कुचलने का आदेश दिया। ठीक इसी समय पूर्वी पाकिस्तान में बंगाली सैनिकों ने लड़ने से मना कर दिया। फलत: पंजाब और पठान रेजीमेण्ट को विद्रोह का दमन करने के लिए भेजा गया। नृशंस हत्याओं का दौर शुरू हो गया। ढाका विश्वविद्यालय पर हमला कर एक ही रात

में ७००० लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया। एक सप्ताह के भीतर ढाका की आधी जनसंख्या पलायित हो गयी। ३० हजार लोग काल के गाल में समा गये। चटगाँव ने अपनी आधी आबादी खो दी। लगभग १ करोड़ शरणार्थी भारत आने को विवश हुए। पाकिस्तान की सेना द्वारा चलाया जा रहा यह अभियान 'ऑपरेशन सर्च लाइट' कहलाया।[9] इसका उद्देश्य जनता के मनोबल का दमन करना था।

बंगालियों के विरुद्ध किया गया यह नरसंहार सुनियोजित था। एंथोनी मेस्करहेंस के अनुसार, "इस नरसंहार में लोगों को निशाना बनाया गया, इसमें कोई संदेह नहीं है, लेकिन जिन पर निशाना साधा गया, वे पाकिस्तानी सेना द्वारा वर्गीकृत किये गये थे।" वे थे–

१. पूर्वी पाकिस्तान राइफल्स के बंगाली सैनिक।

२. हिन्दू पुरूषों को मारा गया। स्त्रियों तथा बच्चों को छोड़ दिया गया।

३. आवामी के समर्थक।

४. विद्यालय तथा विश्वविद्यालय के सैन्य प्रशिक्षित छात्र एवं छात्रायें।

५. बंगाली बुद्धिजीवी, प्रोफेसर और अध्यापक।[10]

आर. जे. रूमल के अनुसार, "निहत्थे लोगों पर हमला न करना पाकिस्तानी सेना का एक सराहनीय कृत्य था।"[11] परन्तु रूमल का यह कथन गलत प्रतीत होता है। जैसा कि ब्राउन मिलर का कहना है कि यद्यपि बांग्लादेश में सुन्दर वस्तुओं के प्रति बदसलूकी करना अपराध है तथापि पाकिस्तानी सैनिकों द्वारा ७ साल की लड़कियों तथा ७५ साल तक की वृद्ध महिलाओं तक को भी अपनी हवस का शिकार बनाया गया। पाकिस्तानी सैनिकों का स्त्रियों के प्रति व्यवहार इतना घिनौना था कि वे इस हिंसात्मक कृत्य को झेल नहीं पायीं तथा न्यूरोटिसीज्म का शिकार हो गयीं। इसमें से अधिकांश महिलायें काल कवलित हो गयीं।[12] १९३७ ई. में अर्मेनिया (Arminia) और नॉजिंग (Nanjing) में जिस तरह का नरसंहार और औरतों के साथ बदसलूकी की गयी थी, ठीक वैसी ही बांग्लादेश में हुई थी। सम्भवत: ३००,०००–४००,००० औरतों का बलात्कार किया गया। इनमें से अधिकांश औरते मुस्लिम थीं, लेकिन हिन्दुओं और ईसाईयों को भी नहीं छोड़ा गया। हिट एण्ड रन (Hit-and-run) रेप केस जैसी बहुत सी घटनायें हुईं।[13]

यह नरसंहार बीसवीं सदी के पूर्व सोवियत संघ के यहूदी संहार और रवांडा के नरसंहार की याद दिलाता है। इस नरसंहार में लाखों लोग मारे गये और हजारों लोग गिरफ्तार किये गये। बांग्लादेश के विभिन्न हिस्सों से लोग भारतीय सीमा में प्रवेश करने लगे। इन्दिरा गाँधी ने इस अवसर की नज़ाकत, संकट और सम्भावनाओं तीनों को समझ लिया। उनके इशारे पर भारतीय सेना और सीमा सुरक्षा बल (B.S.F.) के जवानों और अधिकारियों के द्वारा बांग्लादेश से आ रहे पीड़ित

नौजवानों को प्रशिक्षण दिया गया। बांग्लादेशी नागरिकों की यह सेना 'मुक्ति वाहिनी' कहलायी। ये लोग पाकिस्तानी सेना के विरूद्ध ९ माह तक गुरिल्ला युद्ध लड़ते रहे।[14] पाकिस्तान ने पूर्वी पाकिस्तान में अपनी स्थिति को सुदृढ़ कर ही लिया था, साथ ही भारतीय सीमा के पश्चिमी और उत्तरी हिस्से पर सैन्य दबाव बनना आरम्भ कर दिया था। युद्ध भारत के दरवाजे पर दस्तक दे रहा था। अमेरिका के राष्ट्रपति निक्सन और माओत्से तुंग की भेंट होने वाली थी। भारत के लिए यह संकट का समय था। भारतीय प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी ने थल सेनाध्यक्ष फील्ड मार्शल जनरल सैम मानेक शा का मन टटोला।[15] उस समय परिस्थियाँ युद्ध के अनुकूल नहीं थीं। मानसून भी दस्तक दे रहा था। फलतः मानके शा ने आगे की कार्यवाही रोक दी। दिसम्बर, १९७१ आते-आते युद्ध अनिवार्य हो गया। ३ दिसम्बर, १९७१ को श्रीमती गाँधी कलकत्ता में एक जनसभा को सम्बोधित कर रहीं थीं। शाम को ठीक ५:४० P.M. पर पाकिस्तानी वायु सेना ने सेवर जेट विमानों से भारतीय सीमा पर हमला कर दिया। आनन-फानन में केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की बैठक बुलायी गयी। श्रीमती गाँधी ने देश को सम्बोधित करते हुए कहा, "अब तक जो बांग्लादेश अर्थात् पूर्वी पाकिस्तान की लड़ाई पश्चिमी पाकिस्तान से थी अब भारत की ओर मुड़ गयी है। मुझे संदेह नहीं है कि भारत की जनता और राजनीतिक दल हमारे साथ हैं।"

भारत ने भी जबाबी कार्यवाही प्रारम्भ कर दी। भारतीय सेना ने 'मुक्ति वाहिनी' के साथ मिलकर तेजी से आगे बढ़ते हुए जेसोर और खुलना सामरिक महत्व के जगहों पर कब्जा करते हुए ढाका की तरफ बढ़ना जारी रखा। भारतीय सैनिक १३ दिसम्बर को ढाका के निकट पहुँच चुके थे। मीरपुर से मेजर जनरल नागरा ने अपने नोट पैड पर पूर्वी पाकिस्तान के सैन्य प्रमुख जनरल नियाजी को एक संदेश भेजा। "माई डीयर अब्दुल्ला, आई ऐम हीयर एण्ड योर गेम इज ओवर।"

१६ दिसम्बर की सुबह जनरल जैकब को फिल्ड मार्शल मानेक शा का संदेश मिला कि आत्मसमर्पण की तैयारी के लिये ढाका पहुँचें। आत्म समर्पण के कागजात पर भारत की तरफ से लेफ्टिनेन्ट जनरल जगजीत सिंह अरोड़ा और पूर्वी पाकिस्तान की सेना की तरफ से लेफ्टिनेन्ट जनरल नियाजी ने हस्ताक्षर किये। लगभग ९०,००० पाकिस्तानी सैनिकों ने आत्मसमर्पण किया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद का यह सबसे बड़ी संख्या में किया गया आत्मसमर्पण था।[16]

इस घटना का समाचार फिल्ड मार्शल मानेक शा ने श्रीमती गाँधी को दिया। इसके बाद संसद में श्रीमती गाँधी ने कहा ढाका अब स्वतंत्र राजधानी और बांग्लादेश एक स्वतंत्र देश है। पाकिस्तान की तरफ से जनरल नियाजी ने आत्मसमर्पण पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये और लेफ्टिनेन्ट जनरल अरोड़ा ने इसे स्वीकार कर लिया।[17] इस तरह बांग्लादेश अस्तित्व में आया। शेख मुजीब रिहा कर दिये गये। ढाका जाते समय वे भारत आये। उनके स्वागत समारोह में श्रीमती गाँधी ने कहा था, "मैंने कहा था कि शरणार्थी अपने घर पुनः लौटेंगे और मैं ऐसी हालत पैदा करके

दिखाऊँगी जिसमें सभी विस्थापित लौट सकें. . . मैनें अपने वादों को पूरा किया।''[18]

सारतः भारत के अथक प्रयास से बांग्लादेश का निर्माण हुआ। यह भारत की कूटनीतिक उपलब्धि थी। बांग्लादेश की आजादी के बाद शेख मुजीब ने भारत के प्रति आभार व्यक्त करते हुए कहा था कि ''भारत-बांग्लादेश एक असीम भाई-चारे में बँधा गये हैं, उनका कृतज्ञ राष्ट्र भारत की सहायता को भूल नहीं सकता।'' यद्यपि भारत ने बांग्लादेश की स्वतन्त्रता में विशेष भूमिका निभाई बावजूद इसके दोनों देशों के मध्य ४६ वर्षों के लम्बे अन्तराल के बाद सब कुछ ठीक नहीं है। सीमा विवाद, घुसपैठ, शरणार्थी, आतंकवाद की समस्या मुख्य समस्याएँ हैं। पूर्वोत्तर का आतंकवाद एक विकट समस्या है।

इसे एक विडम्बना ही कहा जायेगा कि जिस देश को स्वतन्त्रता दिलाने में भारत ने एक बड़ी कुर्बानी दी है तथा जिसकी आजादी की खुशी को भारत 'विजय दिवस' के रूप में मनाता है, वहीं वह देश पूर्वोत्तर भारत के उग्रवादियों के लिए ऐशगाह बन गया है। उल्फा और बोडो आतंकी संगठनों के सदस्यों को चटगाँव पहाड़ी क्षेत्रों में शरण दी जाती है। यहाँ आई.एस.आई. प्रशिक्षण, हथियार और धन उपलब्ध कराती है। आई.एस.आई. का बांग्लादेश में मजबूत आधार है। इतना ही नहीं इसने पूर्वोत्तर भारत के उग्रवादी गुटों से मिलकर 'यूनाइटेड लिबरेशन फ्रन्ट ऑफ सेवेन सिस्टर्स' (अल्फास) का गठन किया है। इसे बांग्लादेश की कट्टरपंथी पार्टी 'हरकत-उल-जिहाद-अल-इस्लामी' (हूजी) का समर्थन प्राप्त है। हरकत-उल-मुजाहिदीन, नेशनल फ्रंट ऑफ बोडो लैण्ड, यूनाइटेड लिबरेशन फ्रंट ऑफ असाम (उल्फा), यूनाइटेड लिबरेशन टाइगर्स ऑफ आसाम (युल्य) पीपुल्स लिबरेशन आर्मी, मुस्लिम वालेंटियर फोर्स, नेशनल लिबरेशन फ्रंट ऑफ त्रिपुरा, इस्लामिक लिबरेशन आर्मी ऑफ आसाम व अल जेहादी जैसे कई संगठन अल्फास के साथ हो गये हैं। इन सभी का उद्देश्य पूर्वोत्तर भारत को शेष भारत से अलग करना है। आई.एस.आई. इसके लिए बांग्लादेशी अप्रवासियों और भारतीय मुसलमानों का सहारा लेती है। पाकिस्तान कभी भी २०० लोगों को एक साथ भारत में नहीं भेजेगा, जबकि बांग्लादेश से यह काम मात्र ₹३००० देकर आसानी से किया जा सकता है। अजित डोल के अनुसार सीमा सुरक्षा बल ने एक व्यक्ति, जो मुज्जफरनगर का रहने वाला था और जन्म से अन्धा था, की गिरफ्तारी असम में की थी। यह व्यक्ति एक दशक से आतंकवादी गतिविधियों में संलिप्त था। जब इस व्यक्ति से गहन पूछ-ताछ की गयी तो विदित हुआ कि भारतीय मुसलमानों को बांग्लादेश और पाकिस्तान ले जाया जाता है। ये लोग भारत के विविध हिस्सों में आतंकवादी कृत्यों को अन्तिम रूप देते हैं। इतना ही नहीं वे लोग (आई.एस.आई.) भारत में रह रहे बांगलदेशियों को भी इस कार्य में शामिल करते हैं। सम्प्रति कई बांग्लादेशी इन कार्यों में लिप्त हैं। 'लश्कर-ए-तोयबा' भी इन बांग्लादेशियों को इन कार्यों में सम्मिलित करने के लिये प्रेरित करता है। आई.एस.आई. पूर्वोत्तर राज्यों में तीन तरह की

गतिविधियों में संलिप्त है-

१. बांग्लादेशी घुसपैठियों को येन-केन-प्रकारेण भारतीय सीमा में प्रविष्ट कराना।

२. भारत विरोधी विभिन्न गुटों को आर्थिक मदद, प्रशिक्षण और हथियार प्राप्त कराना।

३. परम्परावादी मुस्लिम संगठनों द्वारा धार्मिक उन्माद को बढ़ावा देने का कार्य करना।

सारतः आई.एस.आई. ने 'इन्स्टीट्यूट फॉर स्ट्रैटजिक सीमान्त का सिद्धान्त' विकसित किया है, जिसका उद्देश्य भारत से लगी सीमाओं का इस्लामीकरण करना और आतंकवादियों को भारत में प्रविष्ट कराना है। एक समय ऐसा था जबकि पाकिस्तान असम को मुस्लिम बहुल राज्य में बदलने का प्रयास कर रहा था। पाकिस्तान के पूर्व प्रधानमंत्री जुल्फिकार अली भुट्टो ने असम पर अपना दावा तक ठोक दिया था।

भले ही पूर्वोत्तर भारत, आतंकवादियों से परेशान है लेकिन कुछ समय से स्थितियाँ बदली हैं। बांग्लादेश में सत्ता परिवर्तन के बाद से ही स्थितियाँ बदली-बदली सी नजर आ रही हैं। 'राजखोवा' की गिरफ्तारी इस सन्दर्भ में मील का पत्थर साबित हुई है। दोनों देशों के मध्य 'प्रत्यर्पण सन्धि' भी इस क्षेत्र में विशेष भूमिका निभायेगी। जनवरी २०१० में बांग्लादेशी प्रधानमंत्री शेख हसीना की भारत यात्रा के दौरान जिन पांच मुद्दों पर संधियाँ की गयीं, उनमें तीन आतंकवाद और अपराध के खिलाफ आपसी कार्यवाही पर आधारित थीं। भारतीय प्रधानमंत्री और उनके बांग्लादेशी समकक्ष ने आपराधिक मामलों पर साझा कानूनी सहयोग, सजा प्राप्त कैदियों के स्थानांतरण तथा अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद, संगठित अपराध और नशीले पदार्थों की तस्करी को रोकने से सम्बन्धित समझौतों पर हस्ताक्षर किया।[१९] अगर भारत और बांग्लादेश इसी तरह से आपसी बात-चीत करते रहे तथा साथ ही दृढ़ इच्छा-शक्ति का परिचय देते रहे तो निःसन्देह आतंकवाद पर रोक लगायी जा सकती है। इतना ही नहीं आतंकवाद से निपटने के लिये भारत को घरेलू स्तर पर भी सुधार करने की आवश्यकता है-

१. नागरिकों के अन्दर राष्ट्रीयता की भावना पैदा करना और उन्हें यह बताना कि उनके लिए राष्ट्र प्रमुख है। जाति और धर्म गौण है।

२. राजनीतिक दलों को वोट बैंक की क्षुद्र मानसिकता को तिलांजलि देनी चाहिए ताकि कारगर कानून बन सके, जो आतंकवाद से लड़ने योग्य हो।

३. अनुशासन के प्रति जागृति लानी चाहिये और भ्रष्टाचार को समाप्त करना चाहिये।

४. राज्य-पुलिस बलों को आधुनिक हथियारों से लैश करना होगा। साथ ही उन्हें आतंकवादियों से लड़ने के लिये प्रशिक्षित भी करना होगा।

५. प्रभावी संचार तंत्र विकसित करना होगा।

यदि ये समस्त प्रयास किये गये तो निःसन्देह आतंक रूपी दैत्य का भली-भाँति सामना किया जा सकता है। भारतीय राजनीतिज्ञों को अपनी संकीर्ण राजनीति को तिलांजलि देकर देश के उत्थान में सहयोग देना चाहिये।

सी. राजामोहन के अनुसार दोनों देशों के बीच सम्बन्ध सुधारने का सबसे अच्छा तरीका होगा, दोनों देशों द्वारा विशेष दूतों की नियुक्ति। ये विशेष दूत अपना ध्यान आपसी लेन-देन पर केन्द्रित करेंगे। निरन्तर ध्यान देने से दोनों देशों की समस्यायें स्वतः ही समाप्त हो जायेंगी।[20]

भारत और बांग्लादेश के बीच व्यापार और तकनीक के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति हुई है। यद्यपि बांग्लादेश के लिए व्यापार-घाटा अभी भी चिन्ता का विषय बना हुआ है लेकिन इसके बावजूद दोनों देशों के मध्य व्यापार भी बढ़ा है। भारत ने बांग्लादेश को व्यापारिक क्षेत्र में काफी रियायतें दी हैं। दोनों देश परस्पर आर्थिक सहयोग बढ़ाने पर सहमत हुए हैं।[21] यदि भारत चाहे तो इस क्षेत्र में और अधिक प्रगति होगी। भारत को बांग्लादेश से आने वाले सभी सामानों को कर-मुक्त कर देना चाहिये। भारत अगर ऐसा करता है तो वस्तुतः उसका नुकसान तो होगा लेकिन साथ ही बांग्लादेश को भारत से व्यापार करने में लाभ भी मिलेगा। अतः भारत को इस दिशा में कदम उठाना चाहिये। इसके अतिरिक्त भारत और बांग्लादेश के मध्य जो भी विवादित मुद्दे हैं, उन्हें दोनों देशों को जल्द से जल्द सुलझाने पर विचार करना चाहिये।

भारत दक्षिण एशिया की एक बड़ी शक्ति है और उसे अब तक के प्रचलित 'बिग ब्रदर' के सिद्धान्त की जगह 'एल्डर ब्रदर' के सिद्धान्त पर काम करना चाहिए। भारत को यह दिखाना होगा कि वह दक्षेस में सबसे बड़े हृदय वाला राष्ट्र है। इसके लिए कुछ क्षेत्रों में उसे क्षति भी उठानी पड़े तो उठानी चाहिए। लेकिन यह क्षति अमार्मिक हितों के क्षेत्र में होनी चाहिये, मार्मिक हितों के क्षेत्र में किसी तरह का समझौता नहीं करना चाहिये। अन्ततः दोनों देशों की समस्याओं को सुलझाने के लिये समस्त समस्याओं को तीन हिस्सों में बाँट लेना चाहिये-

१. ग्रीन बाक्स इश्यू
२. ऑरेन्ज बाक्स इश्यू
३. रेड बाक्स इश्यू

पहले हिस्से में वे समस्यायें आयेंगी, जिनका समाधान काफी आसान है। दूसरे के अन्तर्गत वे समस्यायें होंगी, जिनमें सुदृढ़ कदम उठाने की आवश्यकता है। तीसरे बाक्स के अन्तर्गत वे समस्यायें आयेंगी, जिनका समाधान करना वस्तुतः कठिन है। रेड बॉक्स और ऑरेन्ज बॉक्स पर काम करने की सबसे पहले आवश्यकता है।

एक तरीका और हो सकता है कि एक औपचारिक रणनीतिक साझेदारी दोनों देशों के मध्य

कायम की जाये। इससे राष्ट्रों की शक्ति को बढ़ावा मिलेगा और यह उन संगठनों से अलग होगा जो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक आधार पर बनाये जाते हैं। जैसे-यूरोपियन संघ और नाटो। जहाँ सुरक्षा मसौदे और राजनीतिक एकीकरण, राष्ट्रीय सुरक्षा और आर्थिक नीतियों की बलि चढ़ता है, वहीं रणनीतिक साझेदारी, शक्ति और स्वतन्त्रता को बढ़ाने में विशेष भूमिका निभाती है।

यह प्रक्रिया दोनों राष्ट्रों के बीच उनके राष्ट्राध्यक्षों द्वारा शुरू की जा सकती है। यदि इसमें सफलता मिली तो दोनों देशों के सम्बन्ध सुधर जायेंगे, साथ ही इससे दक्षेस को भी लाभ मिलेगा। अत: इस क्षेत्र में तुरन्त कदम उठाने की आवश्यकता है। एक बात सदैव ध्यान रखनी होगी कि कभी भी समस्त समस्याओं का समाधान नहीं किया जा सकता है। अत: इस सन्दर्भ में दृढ़ राजनीतिक इच्छा शक्ति दिखाने की आवश्यकता है। हमें कामना करनी चाहिये कि दोनों देशों के सम्बन्ध यथाशीघ्र सुदृढ़ हो जायें। प्रतीत होता है कि इस सिद्धान्त पर राजनयिकों ने कार्य शुरू भी कर दिया है। ७ अप्रैल से १० अप्रैल २०१७ की शेख हसीना की भारत यात्रा इसका प्रमाण प्रस्तुत करती है। इस दौरान २२ समझौतों के ज्ञापनों पर हस्ताक्षर हुए। इनमें तीन नाभिकीय ऊर्जा क्षेत्र से सम्बन्धित थे। साथ ही १४ गैर सरकारी क्षेत्र में समझौते हुए। भारत ने आने वाले समय में ५ अरब डॉलर बांग्लादेश की विभिन्न परियोजनाओं को पूरा करने के लिए देगा। इनमें से ५० करोड़ डॉलर आवश्यक रक्षा उपकरणों के खरीद के लिए दी जाएगी।[२२] तीस्ता समझौते को छोड़कर सब कुछ ठीक रहा। निःसन्देह दोनों राष्ट्रों को इसी तरह आगे का रास्ता तय करना चाहिए। जून २०१५ में वर्षों से लम्बित भूमि विवाद को सुलझा लिया जाना इस बात का द्योतक है कि बांग्लादेश और भारत के सम्बन्धों में नई ऊर्जा आयी है। संयोग वश दोनों ही देशों की राष्ट्रीय सरकारें सही दिशा में कार्य कर रही हैं। आतंकवाद और घुसपैठ जैसी समस्याओं को सुलझाने से आगे का रास्ता और आसान हो जायेगा। यह कामना की जा सकती है कि आने वाले वर्षों में थ्री बॉक्स इश्यू थियरी और भी कारगर सिद्ध होगी।

सन्दर्भ :

१. 'लैंग्वेज मूवमेण्ट' (पी.एन.पी.), बांग्लापीडिया- द नेशनल इन साइक्लोपीडिया ऑफ बांग्लादेश, एसिआटिक सोसाइटी ऑफ बांग्लादेश। http://banglapedia.net/HT/L 0063.HTM.

२. ''इण्टरनेशनल मदर लैंग्वेज डे- बैकग्राउण्ड एण्ड एडॉप्सन ऑफ द रिजोलूशन'', गवर्नमेण्ट ऑफ बांग्लादेश।

३. रहमान तारिक (१९७७), ''द मीडियम ऑफ इन्सट्रक्सन कन्ट्रोवर्सी इन पाकिस्तान'', जरनल ऑफ मल्टीलिंगुअल एण्ड मल्टीकल्चरल डेवेलपमेण्ट, १८(२), पृ. १४५ १५४.

४. फिलिप ओल्डेनबर्ग (१९८५), ''ए प्लेस इनसफीसिएंटली इमेज्ड: लैंग्वेज बिलोफ एण्ड द पाकिस्तान क्राइसिस ऑफ १९७१'', द जरनल ऑफ एशियन स्टडीज, ४४ (४), पृ. ७११-७३३.

५. रहमान तारिक (१९९७), ''लैंग्वेज एण्ड एथॅनिसिटी इन पाकिस्तान'', एशियन सर्वे, ३७ (९), पृ. ८३३ ८३९.

६. पी.डी. कौशिक (२०००), ''अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध'', कलयाणी पब्लिशर्स : लुधियाना, पृ. ६४६.

७. राबर्ट पेन (१९७२), ''मैसकर'', मैकमिलन, पृ. ५०.

८. आलोक तोमर, ''बांग्लादेश के भीतर जो हो रहा है''
http://www.datalineindia.com/perday.aspx?story ID=2084%20&category ID=3.

९. सर्मिला बोस, ''एनाटॉमी ऑफ कॉमप्लेंस: एनालिसिस ऑफ सिविल वार इन इस्ट पाकिस्तान इन १९७१: मिलिट्री एक्सन: ऑपरेशन सर्चलाइट'', इकोनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, ८ अक्टूबर २००५.

१०. एंथोनी मेस्करहेंस (१९९२), ''दि रेप ऑफ बांग्लादेश'', विकास पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ. ११६-११७.

११. आर.जे. रूमल (१९९७), ''डेथ बाई गवर्नमेण्ट'', ट्रान्जेक्शन पब्लिशर्स, पृ. ३२३.

१२. सुसन ब्राउन मिलर (१९९३), ''आगेंन्स्ट ऑवर विल: मेन, वूमेन एण्ड रेप'', बेलेंटाइन बुक्स, पृ. ८३.

१३. वही, पृ. ८१.

१४. मेजर के.सी. प्रवल (१९९३), ''इण्डियन आर्मी आफ्टर इन्डिपेंडेन्स'', लान्सर, पृ. ३१६-३१८.

१५. डी.पी.ए. रिपोर्ट मॉस ग्रेव फाउण्ड इन बांग्लादेश, हि ट्रिब्यून, चण्डीगढ़, ८ अगस्त १९९९.

१६. सेक्सन १. सिचुएशन इन द इण्डियन सबकान्टीनेन्ट, २. बांग्लादेशाज इण्टनेशनल पोजीशन, मिनिस्ट्री ऑफ फॉरेन अफेयर्स ऑफ जापान।

१७. साजित गाँधी, ''दि टिल्ट: दि यू.एस. एण्ड दि साउथ एशियन क्राइसिस ऑफ १९७१, नेशनल सेक्योरिटी आर्चीव इलेक्ट्रॉनिक ब्रीफिंग बुक नं. ७९, १६ दिसम्बर २००२.

१८. पी.डी. कौशिक (२००२), ''अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध'', कलयाणी पब्लिशर्स, लुधियाना, पृ. ६५०.

१९. भारत विरोधी गतिविधियाँ बांग्लादेश से नहीं: हसीना, नई दिल्ली, ११ जनवरी २०१०
http://hindi webdunia.com/news/news/national/1001/11/1100111168/ htm

२०. सी. राजामोहन, 'इण्डिया बांग्लादेश इमपैक्ट', द हिन्दू , २६ जुलाई २००४.

२१. भारत बांग्लादेश के बीच समझौता, १२ जनवरी २०१०.
http://www.bbc.co.uk/hindi/lg/india/2010/01/100112=india-bangladesh-skj.shtml

२२. शेख हसीना इण्डिया विजिट : ट्रासफार्मेटिव विजिट, द हिन्दू, ११ अप्रैल २०१७.

पंचायती राज व्यवस्था, आदर्श एवं विकास

मो. ताहिर अन्सारी

संक्षिप्तिका- भारत में प्राचीन काल से ही पंचायतों का गठन होता रहा है। वैदिक वाङ्मय में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। आगे चलकर चोल साम्राज्य में भी इसके प्रमाण देखने को मिलते हैं। सल्तनत काल और ब्रिटिश काल से होते हुए स्वतन्त्र भारत में ग्राम पंचायतों के गठन की प्रक्रिया जारी रही। बलवन्त राय मेहता समिति के प्रतिवेदन ने इसे गति प्रदान की। समय के सापेक्ष अशोक मेहता, सिंघवी और थुंगल समिति की सिफारिशों से इसे बल मिला और इसकी पराकाष्ठा ७३वें संवैधानिक संशोधन में दिखलायी पड़ी।

अभीष्ट शोध पत्र में भारत में पंचायती राज के विकास के विविध चरणों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

कुंजी शब्द- पंचायती राज, बलवन्त राय मेहता समिति, ७३वां संवैधानिक संशोधन।

भारतीय समाज और शासन व्यवस्था में ग्राम पंचायत प्राचीन काल से ही विद्यमान रहे हैं। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतान्त्रिक देश है। यहां की लगभग ७० प्रतिशत आबादी गाँवों में रहती है जो वास्तविक लोकतन्त्र स्थापित करने में अहम भूमिका का निर्वाह करती है। पंचायती राज का उद्देश्य गाँवों को आत्मनिर्भर बनाना था। इसके लिए लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा को साकार करके गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, जात-पात, अंधविश्वास, भुखमरी जैसी बुराइयों को समाप्त करके एक स्वस्थ्य एवं लोकतान्त्रिक समाज का निर्माण करना था। भारत में पंचायती राज का स्वरूप महात्मा गाँधी के सर्वोदय तथा ग्राम स्वराज की अवधारणा पर आधारित है। गाँधी जी की धारणा थी कि यदि भारत का विकास करना है तो समाज के अन्तिम बिन्दु पर खड़े व्यक्ति के विकास के साथ ही यह प्रक्रिया सफल हो सकती है।[१]

भारत में ग्रामीण विकास की प्रक्रिया प्राचीनकाल से किसी ना किसी रूप में चली आ रही है। भारत के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में 'सभा एवं समितियों, के रूप में लोकतांत्रिक संस्थाओं का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में 'ग्रामीण' शब्द का उल्लेख मिलता है, जिसका चुनाव ग्राम सदस्यों के द्वारा किया जाता था। धार्मिक ग्रन्थ रामायण तथा महाभारत में भी शासन की सबसे छोटी इकाई के रूप में ग्राम पंचायत का उल्लेख मिलता है। आचार्य मनु द्वारा रचित ग्रंथ मनुस्मृति में भी 'ग्रामीण

*शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, दी.द.उ.गो.वि.वि. गोरखपुर

स्वशासन' का उल्लेख है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी ग्राम स्वराज की चर्चा की गयी है। प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान ने भी अपने यात्रा-वृतांत में भारत के ग्राम प्रशासन का वर्णन किया है। गुप्तकाल में पंचायत प्रणाली का विकास एक ऐसे रूप में हुआ जिसने ग्रामीण जीवन को समृद्ध एवं खुशहाल बनाने का कार्य किया। दक्षिण भारत का चोल प्रशासन ग्रामीण प्रशासन का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करता है। चोलकाल में ग्रामीण प्रशासन के लिए अनेक समितियों का उल्लेख मिलता है।[३]

मुगल शासन काल में ग्राम एक प्रशासनिक इकाई थी। मुगल काल के शासकों ने चली आ रही ग्राम प्रशासन व्यवस्था में कोई सुधार नहीं किया। मुगल शासकों द्वारा शुरू की गयी जमींदारी प्रथा ने जमींदारों को मुगल प्रशासन के लिए गाँवों से राजस्व प्राप्त करने वाला एजेन्ट बना दिया। फलतः पुरातन ग्राम्य स्वशासन व्यवस्था मूलभूत रूप से कमजोर हो गयी।[३] सन् १७६४ ई. के बक्सर के युद्ध के बाद भारत की शासन व्यवस्था ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधीन हो गयी। इस काल में ग्रामीण संस्थाओं का स्वरूप नष्ट हो गया तथा प्रशासन का स्वरूप एकीकृत हो गया। १८५७ ई. के महान क्रान्ति के पश्चात अंग्रेजी संसद ने १८५८ का भारत सरकार अधिनियम पारित कर भारत की शासन व्यवस्था को कम्पनी के हाथों से हटाकर क्राउन के अधीन कर दिया। सन् १८६१ के 'भारत परिषद अधिनियम' में वैधानिक एवं वित्तीय विकेन्द्रीकरण की नीति अपनाने पर जोर दिया गया, फलतः नगर पालिकाओं तथा जिला परिषदों के रूप में स्थानीय स्वशासन का मार्ग प्रशस्त हुआ।[४] सन् १८८१-८२ में लार्ड रिपन के काल में एक नया अधिनियम लाकर स्थानीय स्वशासन के नियम का विस्तार किया गया। इसलिए लॉर्ड रिपन को स्थानीय स्वशासन के 'जनक' के रूप में जाना जाता है। इस अधिनियम में स्थानीय स्वशासन के स्थापना के लिए निम्नांकित प्रमुख प्रावधान किये गये :-

- स्थानीय स्वशासन हेतु गठित समितियों एवं बोर्डों के अध्यक्ष जनप्रतिनिधि ही होंगे।
- समितियों एवं बोर्डों के गैर सरकारी सदस्य स्थानीय जनता के द्वारा चुने जायेंगे।
- प्रत्येक प्रान्त अपनी स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखकर इस प्रस्ताव को लागू करेंगे।
- यद्यपि लार्ड रिपन का यह प्रतिवेदन लागू तो किया गया किन्तु वह मूर्त रूप न ले सका।[५]

स्थानीय संस्थाओं के विकास के क्रम में १९०८ में हाब हाउस की अध्यक्षता में एक पुनर्गठन आयोग द्वारा यह निश्चित किया गया कि जिला बोर्ड, अधीनस्थ जिला बोर्ड तथा ग्राम पंचायतों का भी विकास किया जाए। १९१८-१९ की मांट-फोर्ड रिपोर्ट ने यह सुझाव दिया कि "यथा सम्भव स्थानीय निकायों में पूर्ण लोकप्रिय नियन्त्रण होना चाहिए तथा बाध्य नियन्त्रण से उन्हें अधिकाधिक स्वतन्त्रता होनी चाहिए।"[६] सन् १९१९ ई. में पारित भारत सरकार अधिनियम द्वारा प्रान्तों में द्वैध शासन व्यवस्था की स्थापना हुई तथा स्थानीय स्वशासन पूर्ण रूप से प्रान्तीय सरकारों

के अधिकार क्षेत्र में आ गया। प्रत्येक प्रान्तों में स्थानीय स्वशासन से सम्बन्धित कई अधिनियम पारित किये गये। लॉर्डरिपन के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को यहाँ से मूर्तरूप मिलना शुरू हो गया। निर्वाचित मौत्रियों के अधीन स्थानीय स्वशासन से सम्बन्धित विषय रहने के कारण विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों ने इसमें काफी रूचि दिखलायी।[७] सन् १९३५ ई. के अधिनियम द्वारा प्रान्तीय स्वायत्तता का आरम्भ और विकास हुआ। स्थानीय स्वशासन को प्रोत्साहित करने के लिए बम्बई, मध्यप्रदेश तथा उत्तर प्रदेश के राज्य सरकरों ने कुछ ठोस कदम उठाये तथा सुधार एवं सुझाव हेतु कई समितियों का गठन किया। १९३९ ई. में द्वितीय विश्व युद्ध के आरम्भ हो जाने से इस पर विराम लग गया और १९४६ ई. तक स्थानीय स्वशासन पर संकट के बादल मड़राते रहे।

भारतीय संविधान तथा पंचायती राज व्यवस्था

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रणेता महात्मा गांधी ग्राम स्वराज तथा पंचायती राज व्यवस्था के प्रबल समर्थक थे। महात्मा गाँधी गाँवों को एक संगठित आत्मनिर्भर इकाई बनाना चाहते थे, जो जीवन के प्रत्येक जरूरतों को स्वयं पूरा कर सके। स्थानीय मामलों में केन्द्र तथा राज्य सरकारों का हस्तक्षेप न्यूनतम हो तथा गाँवों को विशेष अधिकार प्राप्त हो, जिससे वह ग्रामीण प्रशासन एवं न्यायिक कार्य स्वयं कर सकें। गाँधी जी का विचार था कि सच्चा लोकतन्त्र केन्द्र में बैठे हुए बीस लोगों द्वारा क्रियान्वित नहीं किया जा सकता। गाँव के प्रत्येक नागरिक एवं सदस्यों के द्वारा ही इसे मूर्तरूप दिया जा सकता है। पंचायत जन सेवा के लिए होती हैं। यदि एक गाँव भी पंचायती राज चाहे तो उसे रोका नहीं जा सकता।[८] स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात जब संविधान निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ, तब गाँधी जी के विचारों को कोई विशेष महत्व नहीं दिया गया किन्तु बाद में गाँधी जी के विरोध के बाद राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों के अध्याय में अनुच्छेद ४० में राज्य को यह निर्देश दिया गया कि वह गाँवों में पंचायतों की स्थापना करने तथा उन्हें ऐसी शक्तियां देने के लिए उचित कदम उठायेगा जो स्थानीय स्वशासन के लिए आवश्यक हो।[९]

ग्राम स्वराज के सपने को पूरा करने के लिए सन् १९५२ ई. में सामुदायिक विकास योजना लागू की गयी, जिससे ग्रामीण जनता सहभागी बन सके। इस सम्बन्ध में सन् १९५६ ई. भारत सरकार द्वारा एक नियमित सामुदायिक विकास और सहकारिता मंत्रालय की स्थापना की गयी। सामुदायिक विकास योजनाओं एवं राष्ट्रीय प्रसार सेवा के अध्ययन एवं मूल्यांकन के लिए योजना आयोग ने जनवरी १९५७ ई. में बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक "प्लान प्रोजेक्ट्स कमेटी" की स्थापना की, जिसे 'बलवंत राय मेहता समिति' के नाम से भी जाना जाता है। इस समिति का प्रमुख उद्देश्य इस बात का पता लगाना था कि सामुदायिक विकास योजना तथा कार्यक्रम किस सीमा तक लोगों में स्थानीय विषयों में रूचि पैदा करने तथा सामाजिक आर्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया में निरंतरता बनाए रखने के लिए संस्थाओं का निर्माण करने में सफल रही है? साथ ही किस तरह

से इन योजनाओं के प्रति लोगों की रूचि और सहभागिता को व्यापक स्तर पर बढ़ावा दिया जा सकता है? यह समिति ने अपनी जाँच में इस निष्कर्ष पर पहुँची कि तदर्थ सलाहकारी संस्थाएं सामुदायिक विकास योजनाओं में लोगों की रूचि और जन सहभागिता बढ़ाने में विफल रही है। उन्होंने अपने प्रतिवेदन में यह सुझाव दिया कि ग्रामीण विकास के लिए तदर्थ सलाहकार समितियों के स्थान पर नये लोकतांत्रिक संस्थाओं का निर्माण किया जाए और कानून बनाकर व्यापक अधिकार और कर्त्तव्य दिये जाएँ। उन्हें महत्वपूर्ण दायित्वों के पालन के लिए प्रशासकीय सहायता तथा पर्याप्त साधनों से सम्पन्न किया जाये।[१०]

बलवंत राय मेहता समिति ने लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण पर बल देते हुए त्रिस्तरीय पंचायती राज की विस्तृत रूपरेखा की संस्तुति की। ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, ब्लाक स्तर पर पंचायती समिति, तथा जिला स्तर पर जिला परिषद समिति। बलवन्त राय मेहता समिति ने इन तीनों स्तरों की संस्थाओं को आंशिक रूप से संबद्ध करते हुए उनके संगठनात्मक और क्रियात्मक सम्बन्धों की रूपरेखा प्रस्तुत की। इस समिति के प्रतिवेदन के अनुरूप तत्कालीन प्रधानमन्त्री पं. जवाहर लाल नेहरू ने राजस्थान के नागौर जिले के बगदरी गाँव में २ अक्तूबर १९५९ को पंचायती राज व्यवस्था लागू किया। इसके बाद धीरे-धीरे पूरे भारत में इसे लागू किया गया। बलवंत राय मेहता समिति ने लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के लिए पाँच मौलिक सिद्धान्तों को रेखांकित किया जो निम्नलिखित है[११]-

१. ग्राम से लेकर जिले स्तर पर त्रिस्तरीय आपस में सम्बद्ध स्थानीय स्वशासन निकाय होना चाहिए।
२. इन निकायों को अपने उत्तर दायित्वों को पूरा करने योग्य बनाने के लिए शक्ति एवं उत्तर दायित्व का यथार्थ हस्तान्तरण होना चाहिए।
३. इन निकायों को उत्तरदायित्व पूरा करने योग्य बनाने के लिए पर्याप्त आवश्यक संसाधनों का हस्तांतरण होना चाहिए।
४. ग्राम, खण्ड, एवं जिला स्तर पर सभी कल्याणकारी और विकास योजनाओं तथा कार्यक्रमों को केवल इन निकायों के माध्यम से ही जनता तक पहुँचाया जाना चाहिए। और
५. त्रिस्तरीय व्यवस्था को शक्ति एवं उत्तरदायित्व का अन्तरण तथा प्रकीर्णन भविष्य में और आगे बढ़ाना चाहिए।

बलवंत राय मेहता समिति के अतिरिक्त पंचायती राज संस्थाओं के सम्बन्ध में सुझाव देने हेतु सरकार द्वारा विविध समितियों का गठन किया गया। जिसमें अशोक मेहता समिति, जे.के.पी. राव समिति, डॉ. एल.एम. सिधंवी समिति एवं जे.के. थुंगन समिति प्रमुख हैं।

पंचायती राज व्यवस्था के मूल्यांकन तथा इसे और प्रभावी बनाने के लिए केन्द्र में पहली

बार सत्ता में आयी जनता पार्टी की सरकार ने सितम्बर १९७७ ई. में अशोक मेहता समिति का गठन किया। इस समिति ने अगस्त १९७८ ई. में अपनी रिपोर्ट सरकार को प्रस्तुत की। अपने रिपोर्ट में इसने पंचायती राज व्यवस्था को तीन क्रमों में विभाजित किया।[१२]

१. उत्थान का क्रम (१९५९ से १९६४)

२. स्थिरता का क्रम (१९६५ से १९६९) और

३. पतन का क्रम (१९६९ से १९७७)

अशोक मेहता समिति ने इस बात पर बल दिया कि इनमें अधिकांश त्रुटियाँ और कमियाँ पंचायती राज की त्रुटियाँ और कमियाँ नहीं हैं। वास्तविकता यह है कि पंचायती राज संस्थाओं को ग्रामीण भारत के विकास के संचालक के रूप में कार्य करने का अवसर ही नहीं दिया गया है। समिति ने यह अनुभव किया कि बलवंत राय मेहता समिति ने सन् १९५७ ई. में जिस लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की योजना में ब्लाक स्तर पर जन-सहभागिता और नियंत्रण पर बल दिया था, वह १९७७ तक आते-आते प्रभावहीन हो गया, क्योंकि इन वर्षों में ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। समिति ने 'विकास की गति विज्ञान' के नाम से अपने एक अध्याय में अब तक के विभिन्न विकास कार्यक्रमों की समीक्षा करते हुए उनके भविष्य का मूल्यांकन किया तथा पंचायती राज संस्थाओं के संगठन एवं कार्यों पर पड़ने वाले संभावित प्रभावों की समीक्षा करते हुए उसने बलवंत राय मेहता की सिफारिशों और सुझावों से अलग सुझाव दिया। इस समिति ने पंचायती राज व्यवस्था के त्रिस्तरीय मॉडल के स्थान पर द्विस्तरीय मॉडल की संस्तुति दी, जिसमें जिला स्तर पर जिला परिषद व मंडल स्तर पर मंडल पंचायत शामिल थे। अशोक मेहता समिति ने मण्डल पंचायतों के लिए १५ से २० हजार की जनसंख्या और १० से १५ गाँवों को शामिल करने का सुझाव दिया। साथ ही कहा कि जिला परिषदों को शक्तिशाली बनाकर इसी के माध्यम से सभी विकास के कार्यों को संचालित कराया जाना चाहिए तथा विकास की योजनाओं का निर्माण जिला परिषद द्वारा व क्रियान्वयन मण्डल पंचायत द्वारा किया जाना चाहिए। इस समिति ने पंचायत चुनावों में राजनीतिक दलों को प्रत्यक्ष रूप में अपने चुनाव चिन्हों के साथ भाग लेने की सिफारिश की, तथा ग्राम पंचायत एवं पंचायत समिति को समाप्त करने का सुझाव दिया। इस समिति की संस्तुतियों पर निर्णय लेने और लागू करने के पूर्व ही जनता पार्टी की सरकार ने त्यागपत्र दे दिया। बाद में सन् १९८० ई. के चुनाव के बाद केन्द्र में कांग्रेस (ई) की सरकार आने के बाद इसे अपर्याप्त मानते हुए अस्वीकार कर दिया। तत्पश्चात सन् १८८५ ई. में केन्द्र में स्थापित श्री राजीव गाँधी की सरकार ने ग्रामीण विकास एवं गरीबी उन्मूलन से सम्बन्धित प्रशासनिक व्यवस्था पर सिफारिश करने के लिए जे.के.बी. राव की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। इस समिति ने राज्य स्तर पर राज्य विकास परिषद, जिला स्तर पर जिला परिषद, मण्डल स्तर पर मंडल पंचायत तथा ग्राम

स्तर पर ग्राम पंचायत के गठन की सिफारिश करते हुये जिला परिषद को सर्वाधिक महत्व दिया परन्तु इसकी सिफारिशों को भी अमान्य कर दिया गया।

पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता

पंचायती राज व्यवस्था के इतिहास में सन् १९८५ से १९९२ तक का काल अत्यंत सक्रिय गतिविधियों का काल रहा है। इस काल में पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता देने के लिए गम्भीर विचार-विमर्श किया गया। भारत के जाने-माने वकील एल.एम. सिंघवी ने यह सुझाव दिया कि पंचायती राज व्यवस्था को स्व-शासित संस्थान के रूप में देखा जाना चाहिए तथा इसे संवैधानिक दर्जा प्रदान किया जाना चाहिए, ताकि इन्हें राजनीतिज्ञों एवं नौकरशाही के हस्तक्षेपों से दूर रखा जा सके।[१३] सन् १९८८ ई. में पी.के. थुंगन की अध्यक्षता में गठित समिति ने अपनी रिपोर्ट में पंचायती राज को संवैधानिक हैसित देने के अलावा इन इकाइयों को तीन-स्तरीय ढाँचा प्रदान करने और समितियों की सहायता से कार्य करने की सलाह दी।

पंचायती राज व्यवस्था को और अधिक सशक्त बनाने के लिए वी.एन. गाडगिल के नेतृत्व में काँगेस ने नीति कार्यक्रम सम्बन्धी समिति की स्थापना की। इस समिति ने मई १९८९ ई. में अपने प्रतिवेदन के माध्यम से निम्नलिखित सिफारिश की :-

१. पंचायती राज संस्थाओं के ढांचे, गठन, शक्तियों एवं उत्तर दायित्वों में परिवर्तन एवं व्यापक संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया जाएँ।
२. ग्राम, ब्लाक और जिला तीनों स्तर पर पंचायती राज होना चाहिए। इन तीनों स्तरों पर प्रत्येक पाँच वर्ष में निश्चित रूप से चुनाव होना चाहिए।
३. अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा महिलाओं के लिए निर्वाचन क्षेत्र आरक्षित किये जाएँ।
४. अनुच्छेद २८० के अन्तर्गत पंचायतों को धन उपलब्ध करने के लिए राज्य वित्त आयोग का गठन किया जायँ।
५. केन्द्रीय चुनाव आयुक्त द्वारा चुनाव कराया जाए।[१४]

६४वाँ संविधान संशोधन :-

अब तक के विभिन्न समितियों के सुझावों के आधार पर ३० जुलाई १९८८ को दिल्ली में बुलाए गए मुख्य सचिवों के सम्मेलन में प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने पंचायती राज व्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए संविधान में संशोधन करने का विचार रखा। इस घोषणा के बाद सरकार ने १९८९ में संसद में संविधान संशोधन के लिए ६४वाँ विधेयक पेश किया जिसमें निम्नलिखित

प्रावधान थे –

१. सभी राज्यों में त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्थाएं होंगी।

२. इन संस्थाओं के लिए चुनाव आयोग के देखरेख में प्रत्येक पाँच वर्ष के बाद निश्चित चुनाव होंगे।

३. पंचायती राज की सभी संस्थाओं में सभी स्थानों को चुनाव द्वारा ही भरा जायेगा, पदाधिकारी सीधे चुने हुए सदस्यों में से ही होंगे।

४. संस्थाओं में ३० प्रतिशत स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे तथा अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए जनसंख्या में प्रतिशत के आधार पर स्थान आरक्षित होंगे।

५. पंचायती राज संस्थाओं को राज्य सरकार के द्वारा धन दिया जायेगा इसके अलावा यह संस्था निर्धारित मुद्दों पर कर, ड्यूटी तथा टोल आदि लगाकर भी धन एकत्रित करेगी।

६. पंचायती राज संस्थाये अपने क्षेत्र के लोगों के लिए आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय तथा सामाजिक कल्याण के लिए योजनाएं बनाएंगी।

७. पंचायती राज संस्थाओं के लेखों की कड़ी जाँच की जायेगी, भारत का महालेखा परीक्षक इसकी जाँच पड़ताल करेगा। [१५]

यद्यपि की कांग्रेस के व्यापक बहुमत के कारण यह विधेयक लोकसभा में पारित हो गया किन्तु दुर्भाग्यवश आवश्यक बहुमत न होने के कारण यह राज्य सभा में यह पारित नहीं हो सका।

७३वाँ संशोधन अधिनियम और पंचायती राज :

७३वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम १९९२ ई. के द्वारा भारत में पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक स्वरूप प्रदान किया गया। यह पंचायती राज व्यवस्था के विकास यात्रा में मील का पत्थर है। इस संशोधन ने भारत में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण को लागू कर एक नये युग का आगाज किया। इस संशोधन अधिनियम के द्वारा संविधान में एक नया भाग, भाग–९ एवं एक नयी अनुसूची, ग्यारहवीं अनुसूची जोड़ी गयी। इसमें २४३ एवं २४३क से लेकर २४३ण तक कुल १६ नये अनुच्छेदों की व्यवस्था की गयी है। [१६] २२ दिसम्बर को लोकसभा एवं २३ दिसम्बर को राज्यभा द्वारा पारित होने के पश्चात २० अप्रैल १९९३ ई. को राष्ट्रपति द्वारा हस्ताक्षरित होने के पश्चात २६ अप्रैल १९९३ को राजपत्र में प्रकाशित और प्रवर्तित होकर यह अपनी पूर्णता को प्राप्त हुआ। [१७]

७३वें संवैधानिक संशोधन की प्रमुख विशेषताएँ [१०]

१. ग्राम पंचायत के क्षेत्र के मतदाताओं के समूह से एक ग्राम सभा का निर्माण किया जायेगा। ग्राम पंचायत का चुनाव प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा होगा तथा इसमें भाग लेने वाले मतदाताओं या

निर्वाचन नामावली में दर्ज व्यक्तियों के समूहों को ग्राम सभा का नाम दिया जाएगा।

२. ग्राम सभा के अधिकार एवं कर्तव्य राज्य विधान मण्डल द्वारा पारित कानून द्वारा तय किये जायेंगें।

३. सभी राज्यों में पंचायती राज का स्वरूप एक समान होगा। यह तीन स्तरीय व्यवस्था पर आधारित होगा।

४. तीनों पंचायत स्तरों में अनुसूचित जातियों तथा जनजातिययों के लिए आरक्षण की व्यवस्था उनकी जनसंख्या के आधार पर होगी। इनके द्वारा कुल आरक्षित सीटों में से १/३ स्थान अनुसूचित जाति एवं जनजाति की महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे।

५. तीनों पंचायत स्तर पर प्रत्यक्ष निर्वाचन से भरे जाने वाले कुल स्थानों में से १/३ स्थान सभी वर्ग की महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे (इसमें एस.सी./एस.टी. की महिलाओं के लिए १/३ पद भी शामिल है)।

६. संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची में वर्णित शक्तियों तथा अधिकारों के अलावा आर्थिक नियोजन तथा विकास और सामाजिक न्याय इत्यादि से सम्बन्धित योजनाएं बनाने और उन्हें लागू करने के अन्य अधिकार भी राज्य की विधायिका कानून बनाकर पंचायती राज संस्थाओं को दे सकती है।

७. राज्य सरकारें विधान बनाकर पंचायतों को कर, शुल्क और पथकर लगाने का अधिकार सौंप सकती है तथा राज्य की संचित निधि से पंचायतों को सहायता अनुदान देने के साथ-साथ राज्य सरकारों द्वारा अधिरोपित एवं संग्रहित करों में से कुछ अंश पंचायतों को दे सकती है।

८. राज्य सरकार का एक संवैधानिक दायित्व है कि प्रत्येक पाँच वर्ष या उससे एक दिन पहले एक पंचायत वित्तीय आयोग का गठन करेगा। यह आयोग राज्य सरकार तथा स्थानीय स्वशासन संस्थाओं में संसाधनों के वितरण के लिए सलाह देगा।

९. पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव राज्य चुनाव आयोग के द्वारा पाँच वर्ष के लिए करवाये जायेंगे। सदस्यों की योग्यता वही होगी, जो राज्य विधान मण्डल के सदस्यों की योग्यताएँ निर्धारित होगी। इनमें केवल आयु की भिन्नता होगी। पंचायतों के लिए २१ वर्ष न्यूनतम आयु होगी।

पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक स्वरूप प्रदान करने से इनकी कार्यप्रणाली में काफी सुधार आया है। मई २००९ ई. में पंचायती राज विभाग में ७३वें संवैधानिक संशोधन के वास्तविक कार्यान्वयन के लिए मण्डल पंचायत एवं ग्राम स्वराज अधिनियम का प्रारूप तैयार किया है। १९९६ के 'पेसा अधिनियम' और सन् २०११ ई. के प्रस्तावित सुधार भी पंचायती राज व्यवस्था को मूर्त्त रूप देने की ओर अग्रसर हैं। पंचायत सदस्यों का सीधा जनता द्वारा निर्वाचन, अनुसूचित जाति एवं जन जातियों के लोगों, विशेषकर महिलाओं के लिए पंचायतों में स्थानों का आरक्षण, में अभी तक

समाज से वंचित लोगों की सत्ता में भागीदारी द्वारा उनके सामाजिक एवं आर्थिक विकास में गुणोत्तर प्रभाव देखने को मिल रहा है। शिक्षा, भूमि सुधार, ग्रामीण स्वच्छता एवं प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के प्रति लोगों की रूची बढ़ी है। यद्यपि जिन उद्देश्यों के लिए पंचायती राज व्यवस्था को लाया गया है, उसमें अभी तक पूरी तरह से सफलता नहीं मिली है। अभी भी पंचायतों में धन-बल का प्रभुत्व, अशिक्षा, गरीबी, दलगत राजनीति, जनता की उदासीनता, नौकरशाही का असयोग तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक विसंगतियाँ, जातिवाद जैसे समस्याओं के कारण वास्तविक विकेन्द्रीकरण नहीं हो पाया है किन्तु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि पंचायती राज व्यवस्था ने जनकल्याणकारी योजनाओं में सहभागिता को बढ़ावा दे करके देश के राजनीतिकरण, आधुनिकीकरण और सामाजिकीकरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

१. ईश्वरी प्रसाद, 'ए न्यू हिस्ट्री ऑफ इण्डिया', द इण्डियन प्रेस प्रा.लि. : इलाहाबाद, १९७२, पृ. २१
२. डॉ. सदाशिव अल्तेकर, 'प्राचीन भारत शासन पद्धति', विश्वविद्यालय प्रकाशन : वाराणसी २००१
३. एल.पी. शर्मा : मध्यकालीन भारत, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, दिल्ली २०११ पृ. ४९
४. बी.एल. ग्रोवर आधुनिक भारत का इतिहास : एक नवीन मूल्यांक', एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली २००५, पेज १९९
५. श्रीराग महेश्वरी, 'भारत में स्थानीय शासन', लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन : आगरा, १९७४ पृ. ८८।
६. बी.एल. ग्रोवर, 'आधुनिक भारत का इतिहास : एक नवीन मूल्यांकन', एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली २००५, पृ. २०२
७. श्रीराम महेश्वरी, 'लोकल गर्वनमेन्ट इन इण्डिया', ओरियन्ट लौंगमैन, दिल्ली, १९७९, पृ. १७-१८
८. मोहनदास करमचन्द गाँधी, 'पंचायत राज' नव जीवन प्रकाशन मन्दिर : नई दिल्ली १९६१, पृ. १९
९. ए.एस. नारग, 'भारतीय शासन एवं राजनीति', गीतांजली पब्लिशिंग हाऊस : नई दिल्ली २००५, पृ. १९६
१०. सामुदायिक विकास एवं नेशनल एक्सटेंशन अध्ययन दल का प्रतिवेदन (अध्यक्ष बलवन्त राय मेहता), भाग १, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. ५ ६
११. श्रीराम महेश्वरी, 'भारत में स्थानीय शासन', आगरा, १९७४ पृ. ८८
१२. पंचायती राज समिति रिपोर्ट (अध्यक्ष अशोक मेहता) अगस्त १९७८, नयी दिल्ली-पृ. ४
१३. एस.एन. मिश्र, 'पंचायती राज', भारतीय राजनीतिक प्रणाली संरचना : नीति और विकास, महेन्द्र प्रसाद सिंह और हिमांशु राय (सम्पादित), हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय : नई दिल्ली, २०१३, पृ. ३४४
१४. वही पेज ३४५
१५. ए.एस. नारंग, 'भारती शासन एवं राजनीति', गीतांजली पब्लिशिंग हाऊस : नई दिल्ली २००५, पृ. २६३
१६. 'भारत का संविधान चेयर एक्ट', कानून प्रकाशन : जोधपुर २००७ संस्करण, पृ. १४७
१७. अवस्थी एवं अवस्थी, 'भारतीय प्रशासन', लक्ष्मीनरायण अग्रवाल प्रकाशन : आगरा, पृ. ६३३)
१८. द्वारका प्रसाद सावले, 'लोक प्रशासन', अटलांटिक प्रकाशन एवं वितरण : नई दिल्ली, पृ. ६९१, ६९२, ६९३, ६९४

प्राचीन भारत में शैवोपासना
(प्रयाग परिक्षेत्र से प्राप्त अभिलेखों के आधार पर)

सुबोध कुमार मिश्र*

प्राचीन इतिहास और शैव धर्म के इतिहास के पुनर्निर्माण में अभिलेखों का अप्रतिम योगदान है। अभिलेखों का ऐतिहासिक महत्त्व साहित्यिक साक्ष्यों से कहीं अधिक है। ये अभिलेख पाषाण-शिलाओं, स्तम्भों, ताम्रपत्रों, दीवारों, मुद्राओं, मुहरों एवं प्रतिमाओं आदि पर खुदे हुए मिलते हैं। सबसे प्राचीन अभिलेखों में मध्य एशिया के बोगजकोई से प्राप्त अभिलेख हैं, इसमें वैदिक देवताओं के रूप में वरुण, इन्द्र और नासत्य (अश्विनी कुमार) के नाम मिलते हैं तथा इसकी तिथि १४०० ई.पू. निर्धारित की जाती है। इससे ऋग्वेद की तिथि ज्ञात करने में सहायता मिलती है।

"शिवो दाता शिवो भोक्ता, शिवः सर्वमिदं जगत्।
शिवौ यजति, यज्ञश्च, यः शिवाः सोऽहमेव हि।।"

ऐसे भगवान् शिव को अपना इष्टदेव मानने वाले शैव एवं तत्सम्बन्धी मत शैव धर्म संज्ञापित हैं। 'शिव' परवर्ती संज्ञा है, जो ऋग्वैदिक 'रुद्र' से विकसित हुई।

शैव मत की प्राचीनता प्रागैतिहासिक काल तक जाती है। पुरातत्त्वविद् सर जॉन मार्शल ने हड़प्पा सभ्यता में 'पशुपति शिव' के प्राक् रूप की पहचान की है।

भीटा से द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व में निर्मित अभिलेख युक्त पंचमुख शिवलिंग प्राप्त हुआ है। यह भारत में प्राप्त सबसे पुराने दो शिवलिंगों में से एक है। मार्शल के अनुसार यह स्थल तृतीय शताब्दी ईसापूर्व से ही एक प्रसिद्ध शैव स्थल हो चुका था। द्वितीय शताब्दी ईसापूर्व के उत्तरार्ध का मिनाण्डरकालीन अभिलेख युक्त शिवलिंग फतेहपुर के रेह नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। इससे इलाहाबाद परिक्षेत्र में शैव धर्म की प्राचीनता पुरातात्त्विक साक्ष्यों से ज्ञात होती है। भीटा, कौशाम्बी आदि स्थानों से प्राप्त विमकडफिसेस, कनिष्क, हुविष्क, वासुदेव के बहुविध शैव प्रतीकों से युक्त सिक्के प्राप्त होते हैं। इनमें से अधिकतर 'महेश्वर' की उपाधि धारण करते थे। कुषाणों के बाद भारशिव के नागों ने इलाहाबाद परिक्षेत्र पर शासन किया। शैव धर्म इनका राजधर्म था।

---

*प्रवक्ता, प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, महाराणा प्रताप पी.जी. कॉलेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर

"अंशभारसन्निवेशिताशिवलिंगोद्वहन, शिवसुपरितुष्ट समुत्पादित पराक्रमाणां।
भागीरथ्याममलजलमूर्धाभिषिक्तानां, दशाश्वमेधावभृथस्नातानांभाराशिवानां॥"

वाकाटक नरेश प्रवरसेन द्वितीय के ताम्रपत्र पर अंकित इन पंक्तियों से ज्ञात होता है कि नाग राजवंश में शैव धर्म के प्रति निष्ठा तथा भागीरथी के जल का मूर्धाभिषिक्त होना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था।

गुप्तकालीन अभिलेखों में भगवान् शिव के विभिन्न नामों का वर्णन है। 'प्रयाग प्रशस्ति' में वर्णित है कि गंगा पशुपति (शिव) की जटा से निकलती है और प्रयाग में आकर आगे निकल जाती है। 'प्रयाग प्रशस्ति' का रचयिता हरिषेण था और हरिषेण स्वयं शैव था। इस दौर में साहित्य एवं कला के क्षेत्र में शैव धर्म का बहुआयामी विकास हुआ था तो पुरातात्त्विक क्षेत्र भी वंचित नहीं रहा। अर्धनारीश्वर, त्रिमूर्ति एवं हरिहर स्वरूप की अवधारणा का आविर्भाव गुप्तकाल से ही हुआ।

मधुवन तथा **बांसखेड़ा** ताम्रपत्र लेख में उत्कीर्ण है कि हर्ष तथा उसके पूर्वज "परममाहेश्वरी महेश्वर' की उपाधि धारण करते थे। प्रयाग में आयोजित छठें 'महामोक्ष-परिषद् समारोह' में हर्ष ने यहाँ स्वयं क्रमशः तीन 'बुद्ध', 'सूर्य' तथा 'शिव' की पूजा की थी।

झूसी ताम्रपत्र अभिलेख तथा **कड़ा अभिलेख** द्वारा प्रतिहार शासकों के त्रिवेणी में स्नान तथा शिव पूजा किये जाने का वर्णन मिलता है। प्रतिहारों के बाद चन्देलों ने इस क्षेत्र पर अधिकार किया।

चन्देलों के काल में बुन्देलखण्ड में शैव धर्म अत्यन्त प्रतिष्ठित हुआ। यह चन्देलों का राजधर्म था। चन्देल लोग शैव धर्मानुयायी थे। इनके अभिलेखों में 'शिव' की मनमोहक वन्दना की गयी है।

खजुराहो का कन्दरिया महादेव मन्दिर उस युग का प्रतिनिधित्व करने वाला शिव मन्दिर है। चन्देल नरेश धंग ने प्रयाग में ही संगम में कूदकर अपना प्राणान्त किया था।

कलचुरि चेदि नरेश, मण्डकेश्वर उपाधिधारी गांगेयदेव ने वटवृक्ष के नीचे निवास कर शिवोराधना करते हुए अपने प्राणोत्सर्ग किये।

प्रतिहार अभिलेखों से शैव सम्प्रदाय के भी लोकप्रिय अथवा प्रचलित होने के उदाहरण मिलते हैं। विष्णु भक्तों की तरह शिव भक्तों द्वारा भी धार्मिक भावना के प्रतीक स्वरूप दान व भेंट तथा चढ़ावा देने का वर्णन मिलता है। शैव धर्म की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह किसी विशेष वर्ग तक ही नहीं सीमित रहा अपितु उसके मानने वाले लोगों में उपेक्षित व साधारण लोग भी थे।

प्रतिहार राजाओं के जागीरदारों द्वारा शिव की पूजा करने की सूचनाएँ अभिलेखों से मिलती हैं। **हांसोट ताम्रपत्र**[4] में चाहवान भर्तृवर्द्ध को शिव का भक्त कहा गया है तथा उसके लिए परममाहेश्वर की उपाधि प्रयुक्त की गयी है।

राजाधिराज महीपाल देव के महासान्ताधिपति धरणी वाराह के **हड्डवल**[5] **अभिलेख** (९१४ ई.) से

सूचना मिलती है कि उसने एक महेश्वराचार्य को अध्ययन हेतु ग्राम दान दिया था। विजयपालिदेव के समय के **राजौरगढ़ अभिलेख**[3] (अलवर स्टेट ९५९ ई.) से सूचना मिलती है कि मंथनदेव ने अपनी माता जी की धार्मिक यश:वृद्धि हेतु उनके नाम से लचुकेश्वर (शिव) की प्रतिमा की मन्दिर में स्थापना की। लचुकेश्वर (भगवान् शिव) मन्दिर, सम्पूर्ण अधिकारों से युक्त तथा 'कर' से मुक्त भूमि का दान मंथनदेव ने पूजा के निमित्त दिया।

अभिलेखों में शिव के विभिन्न नामों का उल्लेख हुआ है, जिनमें रुद्र, शिव, महादेव, मनकामेश्वर, काम्यकेश्वर, लचुकेश्वर[4], उमामाहेश्वर[5], योगस्वामी[6] आदि हैं। बारतों म्युजियम अभिलेख[7] में अर्द्धनारीश्वर के रूप में शिव की पूजा का वर्णन है। शैव आचार्य विभिन्न रूपों में शिव की पूजा करते थे। कुछ लोग योग के आधार पर योगस्वामी देवाधिदेव महादेव रुद्र की आराधना करते थे। शैव आचार्यों का धार्मिक जीवन में बहुत महत्त्व था, क्योंकि उत्तरी भारतवर्ष विशेषत: प्रयाग के विभिन्न भागों में उनके मठों की स्थिति थी।

जसनी अभिलेख[8] (९१७ ई.) में योगस्वामी के निमित्त दान देने की चर्चा मिलती है। **राजौर अभिलेख**[9] (९५९ ई.) से अनेक शैव आचार्यों के बारे में जानकारी होती है, जिनमें रूपश्रीआचार्य, ओंकार शिवाचार्य, श्रीकण्ठ शिवाचार्य आदि के नाम उल्लेखनीय हैं जिनका शिव भक्ति की सुपरीय शाखा से सम्बन्ध था। **कामन अभिलेख**[10] से हमें जानकारी होती है कि चामुण्डा के मन्दिरों में शिवेतर मन्दिरों की भी देखभाल के लिए शैव आचार्य नियुक्त किये गये थे। ये शैव आचार्य वातयक्षिणी देवी, त्रैलोक्यमोहन, इन्द्रादित्य और शिव मन्दिरों की बड़ी सफलता से प्रबन्ध करते थे।

गहड़वाल राजाओं के व्यक्तिगत धर्मों का अध्ययन करने से ऐसा लगता है कि वे प्रतिहारों की भाँति ही अनेक देवी-देवताओं की पूजा करते थे। चन्द्रदेव के **चन्द्रावती ताम्रपत्र**[11] (११०० ई. वि.सं. ११५६) में उसे 'परमेश्वर परम्माहेश्वर:' की उपाधि दी गयी है। इसी राजा के दूसरे **चन्द्रावती ताम्रपत्र**[12] (वि.सं. ११४८) में सूर्य और वासुदेव दोनों की पूजा करने का उल्लेख मिलता है। चन्द्रदेव के वि.सं. ११४८[13], ११५०[14], ११५४[15], और ११५६[16] के चारों अभिलेखों में ब्राह्मणों को दान देने के वर्णन मिलते हैं। कुमारी देवी के **सारनाथ अभिलेख**[17] में मदनचन्द्र की गरिमा का उल्लेख हुआ है, जिसमें कहा गया है कि मदनचन्द्र की राज्यश्री इन्द्र की तेजश्री से भी महान थी। गहड़वाल राजा गोविन्द चन्द्र (१११४-११५४ ई.) के अभिलेखों[18] में वि.सं. ११७७ में उसकी अन्य उपाधियों के साथ-साथ उसे परमेश्वर और परममाहेश्वर कहा गया है जो एक शैव उपाधि थी। उसकी रानी कुमार देवी ने अतैथिक **सारनाथ अभिलेख**[19] में कहा गया है कि एकमात्र गोविन्द चन्द्र ही संसार की रक्षा करने में समर्थ था तथा हिन्दुओं की धार्मिक नगरी शंकरपुरी को दुष्ट तुर्क सिपाहियों से बचाने के लिए भगवान् हर (शंकर) ने इसे हरि (विष्णु) स्वरूप भेजा था।

गोविन्द चन्द्र की रानी गोसल्ला देवी द्वारा भगवान् सूर्य के समक्ष दान देने की चर्चा

अभिलेखों[२०] (वि.सं. १२०१) में मिलती है। गोविन्द चन्द्र की रानी कुमार देवी द्वारा बौद्ध-धर्म सम्बन्धी किये गये क्रिया-कलापों के बारे में कुमार देवी सारनथ अभिलेख[२१] से ज्ञात होता है कि उसने सारनाथ में भारत का सर्वश्रेष्ठ विहार बनवाया था। इसी अभिलेख में अशोक विहार और धर्मचक्र की रक्षा करने का भी उल्लेख है। अभिलेख से स्पष्ट है कि सम्भवतः शैव मतावलम्बी राजा गोविन्दचन्द्र की उस रानी (कुमार देवी) को अपना निजी (व्यक्तिगत) धार्मिक विश्वास बनाये रखने की पूरी छूट थी।

गहड़वाल राजा विजयचन्द्र के व्यक्तिगत धर्म के बारे में कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती है। इनके पुत्र जयचन्द्र (११७०-११९४ ई.) ने करीब १६ अभिलेख प्रकाशित करवाये थे। जयचन्द्र के पुत्र हरिश्चन्द्र के वि.सं. १२५५-१२९८ के एक दानपत्राभिलेख[२२] में जयचन्द्र को परम माहेश्वर की उपाधि से विभूषित किया गया है।

कमोली अभिलेख[२३] (वि.सं. ११२४) में जयचन्द्र को भगवान् शिव का भक्त कहा गया है। हम देखते हैं कि वह (जयचन्द्र) अपनी परममाहेश्वर की उपाधि भी धारण करता रहा तथा भगवान् कृत्तिवास की उपस्थिति में दान भी दिया, यह उसके शैव धर्म की जानकारी देता है।[२४]

मछलीशहर अभिलेख (वि.सं. १२५५) में, जयचन्द्र के पुत्र हरिश्चन्द्र को परममाहेश्वर कहा गया है और यह उसकी उपाधि थी, जो उसकी शैव प्रवृत्ति का द्योतक है। प्रतिहार राजाओं के धर्म के विषय में अभिलेखों एवं साहित्यिक ग्रन्थों से जो कुछ ज्ञात है उससे स्पष्ट होता है कि उस समय उत्तर भारत में बहुत से धार्मिक सम्प्रदाय थे।[२५] इन सम्प्रदायों में हिन्दू धर्म के प्रमुख सम्प्रदायों का विशेष जोर परिलक्षित होता है। प्रतिहार वंश के राजाओं के पुरातात्त्विक साक्ष्य विभिन्न देवताओं की पूजा करने की जानकारी देते हैं। इन देवताओं में विष्णु, सूर्य, भगवती तथा शिवजी हैं। इस वंश के अधिकतर राजा अपने को परममाहेश्वर[२६] कहते हैं तथा शिव की पूजा करते हुए पाये गये हैं और कुछ वैष्णव भी दिखाये गये हैं।

वत्सराज को शिव का भक्त कहा गया है और उसे 'परममाहेश्वर' की उपाधि दी गयी है। महेन्द्र पाल द्वितीय भी शिव उपाधि 'परममाहेश्वर' को धारण करता है।[२७]

प्रतिहार राजाओं के व्यक्तिगत धर्म के विषय में पुरातात्त्विक साक्ष्यों में अभिलेख का बहुत महत्त्व है तथा ये उनके धार्मिक जीवन पर वृहद प्रकाश डालते हैं। वे सब इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि वे हिन्दू धर्म के प्रमुख देवताओं में किसी न किसी की भक्ति करते अवश्य पाये गये हैं।

कलचुरि राजाओं के शैव धर्म के प्रति लगाव की चर्चा अभिलेखों में की गयी है। इस वंश के तीन राजा कृष्णराज, शंकरगण और बुद्धराज को कलचुरि दानपत्रों में परममाहेश्वर[२८] अर्थात् देवाधिदेव महादेव शिव का अनन्य भक्त कहा गया है। कृष्णराज के समय में पाशुपत सम्प्रदाय की लोकप्रियता के उदाहरण मिलते हैं।[२९]

कारीतलाई अभिलेख[३०] में रुद्र के नाम के अन्तर्गत शिव की स्तुति की गयी है। अन्य कलचुरि अभिलेखों[३१] में राजा तथा उनकी पत्नियों द्वारा शिव के मन्दिरों का निर्माण कराये जाने की चर्चाएँ मिलती हैं। उपर्युक्त वर्णन के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि शैव धर्म आठवीं सदी से लेकर १२वीं सदी तक कलचुरि राजाओं के राज्य में खूब प्रचलित रहा और उसकी लोकप्रियता भी भरपूर रूप से कायम रही। बघेल खण्ड में शैव संस्कृति के विकास का समय सम्भवतः युवराज प्रथम का राज्यकाल रहा जिसमें शैव आचार्यों को विशेष संरक्षण एवं सुविधाएँ प्राप्त हुई।[३२]

अभिलेखों से सूचनाएँ मिलती हैं कि कलचुरि नरेश अपने देवताओं की पूजा के लिए विभिन्न तीर्थ यात्राएँ भी किया करते थे। वे अपने साथ सामन्तों एवं अधिकारियों को ले जाते थे तथा बड़ी धूम-धाम से अपने इष्टदेव की पूजा-अर्चना करते थे। बिलहरी अभिलेख[३३] में सोमनाथ स्वामी को लक्ष्मणराज द्वितीय द्वारा इसी तरह पूजा करने का उल्लेख है। अभिलेखों[३४] में शिव लिंग की पूजा करने के भी सन्दर्भ मिलते हैं।

कलचुरि राजाओं द्वारा अनेक शैव मन्दिरों एवं मठों के निर्माण कराने के जो उल्लेख अभिलेखों में किये गये हैं उससे शैव धर्म को उनके द्वारा विशेष संरक्षण प्रदान करने की जानकारी होती है। गुर्गी अभिलेख[३५] में हर (देवाधिदेव महादेव शंकर) की एक महान मूर्ति स्थापित कराने की चर्चा मिलती है। अनेक शिव मन्दिरों में कर्णमेरु, अलंघेश्वर तथा एलिफेण्टा के मन्दिर विशेष उल्लेखनीय हैं। एलिफेण्टा गुफा का निर्माण उस समय हुआ जब कलचुरि अपने विकास पर थे।[३६] मन्दिरों के अलावा शैव संन्यासियों के लिए मठ, तालाब तथा बगीचे एवं कुएँ आदि का कलचुरियों द्वारा निर्माण कराने का उल्लेख मिलता है।[३७] उपर्युक्त साक्ष्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि शैव धर्म तत्कालीन समाज में विशेष लोकप्रिय था।

कलचुरि नरेशों के अभिलेखों के अध्ययन से यह जानकारी मिलती है कि शैव आचार्य उनके गुरु थे[३८] और उनके लिए मठों एवं संस्थाओं का निर्माण कराया गया था जहाँ धर्म एवं दर्शन की पढ़ाई होती थी। शैव आचार्यों के प्रति विशेष सम्मान तथा मठ आदि निर्माण कराने के दूसरे भी प्रमाण मिलते हैं। अभिलेखों में कई स्थानों पर ऐसी चर्चाएँ मिलती हैं कि शैव आचार्य विभिन्न स्थानों आकर चेदिदेश में संरक्षण एवं शान्ति पाकर सम्मानपूर्वक रहते थे।

अभिलेखों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो चुका है कि अधिकांश कलचुरि नरेश शैव थे। कृष्णराज, शंकरगण और बुद्धराज को 'परममाहेश्वर' कहा गया है।[३९] मात्र शंकरण तृतीय ही परम वैष्णव था। उसने कलचुरि नरेशों की सामान्य प्रवृत्ति के प्रतिकूल वैष्णव धर्म अपनाया था।[४०] रामराज को परममाहेश्वर कहा गया है।[४१] लक्ष्मणराज द्वितीय शिव का परम भक्त था। बिलहरी अभिलेख[४२] से सूचना मिलती है कि उसने अपने सामन्तों और अधिकारियों के साथ सोमनाथ की यात्रा की थी। वहाँ पहुँचकर उसने सोमनाथ की पूजा की तथा उड़ीसा से लाये हुए शिवलिंग को

मन्दिर के अन्दर समर्पित या स्थापित किया। वहीं पर उसने शिव की प्रार्थना में गीत रचे और अपने को शिवमय बनाया। इसी अभिलेख में आगे कहा गया है कि उसके पुत्र द्वितीय युवराज ने भी सोमेश्वर के निमित्त दान दिया। कोकल्लदेव द्वितीय के गुर्गी अभिलेख[४९] में उसके द्वारा भी सोमनाथ देव की पूजा करने की चर्चा है। इस अभिलेख में शिव मन्दिर के निर्माण, पूजा एवं स्तुति सम्बन्धी चर्चाएँ हैं। इस अभिलेख में शिव और उमा दोनों की प्रतिमाएँ मन्दिर में प्रतिस्थापित करने की चर्चा है जो उसकी शैव प्रवृत्ति का परिचायक है।

कलचुरि नरेश कर्ण के अभिलेख[५०] में उसे परममाहेश्वर कहा गया है। उस अभिलेख में कर्ण द्वारा शिव की पूजा करने तथा एक ब्राह्मण को काशी क्षेत्र में भूमि दान देने का उल्लेख है। कर्ण के **गोहरवा अभिलेख**[५१] में भी उसके द्वारा शिव की पूजा करने एवं ब्राह्मण को दान देने का वर्णन है। **रीवा अभिलेख**[५२] में शिव की पूजा करने एवं ब्राह्मण को दान देने की चर्चा है। इस तरह कर्ण की शिव के प्रति अटूट श्रद्धा का उदाहरण मिलता है।

यश:कर्ण को शिव का अनन्य भक्त कहा गया है। एक अभिलेख से सूचना मिलती है कि यश:कर्ण ने शिवलिंग की प्रार्थना अथवा वन्दना करके अपने माता-पिता की धार्मिक यश:वृद्धि के लिए ब्राह्मण को दान दिया।[५३] कर्ण के द्वारा शिव के मन्दिरों का निर्माण और उनकी पूजा की चर्चा अभिलेखों में की गयी है जो उसकी शैव प्रवृत्ति का द्योतक है।[५४]

नरसिंह के **लाल पहाड़ अभिलेख**[५५] में यश:कर्ण को देवाधिदेव महादेव शंकर की उपाधि परम महा+ईश्वर (परम माहेश्वर) कहा गया है। भण्डाघाट अभिलेख[५६] में शिव की पूजा करने तथा मन्दिर के लिए ग्रामदान में दिये जाने का उल्लेख किया गया है।

कलचुरि नरेश जयसिंह को विजय सिंह के कुम्भी अभिलेख[५७] में परम माहेश्वर अर्थात् शिव का परम भक्त कहा गया है। जयसिंह के **कर्णवेल शिलालेख**[५८] का प्रारम्भ शिव की प्रार्थना वाले श्लोक से हुआ है। इसी अभिलेख में पार्वती और गणेश (गणपति) की वन्दना की गयी है जो उसके शैव संस्कृति के प्रति स्नेह अथवा लगाव का सूचक है। इतना ही नहीं उसका एक जबलपुर से प्राप्त अभिलेख[५९] जिसमें उसे शिव का भक्त कहा गया है तथा मन्दिर निर्माण कराने और ब्राह्मण को दान देने की चर्चा है।

त्रिपुरी के अन्तिम कलचुरि शासक विजय सिंह के भी शैव होने के प्रमाण मिलते हैं। उसके स्वयं के रेवा प्रस्तर अभिलेख[६०] में उसे भगवान् शिव का भक्त कहा गया है। अभिलेख साक्ष्यों से यह स्पष्ट होता है कि एक शासक शंकरगण द्वितीय को छोड़कर सम्भवत: सभी कलचुरि नरेश शैव धर्म के अनुयायी थे तथापि अन्य धर्मों के प्रति उनका दृष्टिकोण उदार था।

चन्देलकालीन धर्म एवं समाज के विषय में अभिलेखों से प्रचुर सामग्री मिलती है, जिनमें राजाओं के व्यक्तिगत धर्म एवं उनके द्वारा सम्पन्न धार्मिक क्रिया-कलापों की चर्चाएँ आयी हैं।

चन्देल राजाओं के अभिलेखों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनके राज्य में हिन्दू धर्म के साथ-साथ अन्य धर्म भी विद्यमान थे।

चन्देल राजाओं के अभिलेखों के अतिरिक्त स्मारक, सिक्के, मुहरें व अन्य पुरातात्त्विक साक्ष्य प्रकाश डालते हैं। चन्देल राजाओं के अभिलेखों में उनमें से अनेक के लिए परममाहेश्वर[५५] की उपाधि दी गयी है जो उनकी शैव प्रवृत्ति का द्योतक है। अभिलेखों का प्रारम्भ शिवजी की स्तुति से किया गया है।[५६]

खजुराहो अभिलेख[५७] में शिव को शंकर, वैद्यनाथ और सर्व कहा गया है। अन्य अभिलेखों में शिव को विभिन्न नामों के अन्तर्गत पूजा करने की चर्चाओं का उल्लेख मिलता है; जैसे- महादेव, विश्वनाथ, महेश्वर, केदार आदि।[५८] खजुराहो का देव (महादेव) मन्दिर उत्तर भारत के हिन्दू मन्दिरों में सर्वोत्तम माने जाते हैं। खजुराहो अभिलेख में भगवान् शम्भु मर्कतेश्वर के मन्दिर का निर्माण कराने का उल्लेख मिलता है।[५९]

चन्देल धंग की शिव के प्रति असीम श्रद्धा का सबसे ज्वलन्त उदाहरण उसके द्वारा प्रयाग संगम में देह त्यागते समय उसका शिव भगवान् का ध्यान करना है।[६०] वर्णन मिलता है कि इस धरा की रक्षा करते हुए सौ वर्ष की उम्र पार करता हुआ प्रयाग संगम में (देह) अपना प्राण त्याग दिया। अभिलेख में धंग की तुलना हम्मीर से की गयी है।[६१] कहा गया है कि धंग ने मत-मतंगों (मलेच्छ रूपी हाथी) को पददलित करते हुए हम्मीर की समता प्राप्त की जो पृथ्वी पर आतंक बन गया था। अन्य बुन्देल राजाओं के धर्म के बारे में विशेष जानकारी नहीं मिलती। परमार्दिदेव को अभिलेखों में 'परममाहेश्वर' की विरुद से सुशोभित किया गया है।

वी.वी. मिराशी महोदय ने कलचुरि राजाओं को धार्मिक मामले में उदार कहा है। उनका कहना है कि यद्यपि कलचुरि राजा शैव थे फिर भी उन्होंने जैन और बौद्ध भिक्षुओं के प्रति भी पूर्ण उदारता दिखायी है।[६२]

कलचुरि राजाओं के व्यक्तिगत विश्वास और तत्कालीन सामाजिक स्थिति के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि वे हिन्दू धर्म के साथ साथ जैन और बौद्ध धर्म के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाते रहे हैं। परन्तु अगर सावधानी से विचार किया जाये तो यह कहने में कोई संकोच नहीं होगा कि वे हिन्दू धर्म और उसमें भी शैव संस्कृति तथा आचार्यों के प्रति विशेष श्रद्धा रखते और उन्हें संरक्षण प्रदान करते थे। उदाहरणार्थ, हम देखते हैं कि उनके अधिकांश अभिलेखों में हिन्दू धर्म से सम्बन्धित देवी-देवताओं की पूजा और उनके मन्दिरों के निर्माण की ही चर्चाएँ की गयी हैं तथा उन्होंने जैन और बौद्ध धर्म सम्बन्धी जो निर्माण किये हैं, उनकी चर्चाएँ की गयी हैं। इनमें विशेषत: शैव धर्म के विषय में वर्णन है।

सन्दर्भ ग्रन्थ:

१. **इण्डियन ऐण्टीक्वेरी**, जिल्द १२, पृ. २०२
२. इण्डियन ऐण्टीक्वेरी, जिल्द १२, पृ. १९३ आगे
३. एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द ३, पृ. २६६
४. एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द ३, पृ. २६६
५. एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द १, पृ. १७३
६. **एपिग्राफिका इण्डिका**, जिल्द १, पृ. १७१; **इण्डियन ऐण्टीक्वेरी**, जिल्द १६, पृ. १७४
७. एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द १९, पृ. १७४ आगे
८. इण्डियन ऐण्टीक्वेरी, जिल्द १६, पृ. १७४; एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द १, पृ. ७१
९. **एपिग्राफिका इण्डिका**, जिल्द ३, पृ. २६६
१०. पुरी, सुदूर पूर्व में भारतीय संस्कृति एवं उसका इतिहास, पृ. १४२
११. एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द १४, पृ. १९७ २००; **इहिक्वा**, १९४९, पृ. ३१ ३७
१२. एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द १४, पृ. ३०२–३०५
१३. एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द १४, पृ. ३०२–३०५
१४. एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द १४, पृ. १९३–१९६; इहिक्वा १९४९, पृ. ३१–३७
१५. एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द १८, पृ. ९–१४; ज.ए.सो. बं., जिल्द २१, पृ. २२०–२४४
१६. **एपिग्राफिका इण्डिका**, जिल्द १४, पृ. १९७–२००; **इहिक्वा** १९४९, पृ. ३१–३७
१७. **एपिग्राफिका इण्डिका**, जिल्द ९, पृ. ३१८–३२८
१८. **एपिग्राफिका इण्डिका**, जिल्द १८, पृ. २२४ २२६
१९. **एपिग्राफिका इण्डिका**, जिल्द ९, पृ. ३१९ ३२८
२०. **एपिग्राफिका इण्डिका**, जिल्द ५, पृ. ११५–११६
२१. **एपिग्राफिका इण्डिका**, जिल्द ९, पृ. ३१९–३२८
२२. **एपिग्राफिका इण्डिका**, जिल्द १०, पृ. ९२–१०१
२३. **एपिग्राफिका इण्डिका**, जिल्द ४, पृ. ११७–१२०
२४. इहिक्वा, १९२९, पृ. १४–३०
२५. नियोगी, शोभा, पूर्व निर्दिष्ट, पृ. १९८
२६. **एपिग्राफिका इण्डिका**, जिल्द १४, पृ. १८२ और आगे
२७. **एपिग्राफिका इण्डिका**, जिल्द १४, पृ. १८२
२८. **कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम**, जिल्द ४, भूमिका पृ. १४७
२९. **कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम**, जिल्द १, खण्ड १, पृ. ४१
३०. **कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम**, जिल्द १, पृ. १८१
३१. **कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम**, जिल्द १, पृ. १९१
३२. कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम, जिल्द ४, भूमिका पृ. १५०

३३. कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम, जिल्द ४, भूमिका पृ. १६०
३४. कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम, जिल्द २, पृ. ६३५; एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द २, पृ. १-७
३५. कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम, जिल्द ४, खण्ड १, पृ. २२७ और आगे
३६. कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम, जिल्द १, खण्ड १ भूमिका पृ. १४६
३७. कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम, जिल्द ४, पृ. १६०-१६१
३८. कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम, जिल्द ४, खण्ड १, पृ. ३३१ (जबलपुर अभिलेख)
३९. कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम, जिल्द ४, खण्ड १, पृ. ४१
४०. कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम, पृ. १९१ तथा १९७
४१. कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरग, पृ. २९४
४२. कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरग, भूमिका पृ. १६०
४३. कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम, जिल्द, खण्ड १, पृ. २३०
४४. कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम, जिल्द, खण्ड १, पृ. २४४
४५. कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम, जिल्द, खण्ड १, पृ. २५८-२५९
४६. कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम, जिल्द, खण्ड १, पृ. २६८-२७२
४७. कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम, जिल्द ४, खण्ड २, पृ. ६३५; एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द २, पृ. १-७
४८. कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम, खण्ड १, पृ. ३०६
४९. कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम, पृ. ३२२; एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द १८, पृ. २११-२१३
५०. कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम, पृ. ८१७
५१. कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम, पृ. ६३५
५२. कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम, पृ. ६८५
५३. कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम, खण्ड १, पृ. ३२८
५४. कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम, जिल्द, खण्ड २, पृ. ३६६-६७
५५. आ.स.रि., जिल्द २१, पृ. ३४-३५; एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द ४, पृ. १५४
५६. एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द १, पृ. ३३०-३३८
५७. एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द १, पृ. १४७-१५२
५८. आर्केलोजिकल सर्वे रिपार्ट, जिल्द २, पृ. ४२३
५९. एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द १, पृ. १३७
६०. रक्षित्वा क्षितिभंवुरा शिरशनामेता मन न्यायतिं।
जीवित्वां शरदां शतं समधिक श्रीधंग पृथ्वी पतिः।।
रुद्रं मुद्रितलोचनः स हृदये ध्यायन्जयत् जाह्नवी।
कालिन्द्योः सलिले कलेवर हरि त्यागा निर्वृति। खजुरहि अभिलेख
६१. एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द १, पृ. २२१, श्लोक १७
६२. मिराशी, वा.पि. कार्पस, जिल्द ४, खण्ड १, भूमिका पृ. १४५-१४६।

भारतीय उच्च शिक्षा - एक शोधपरक दृष्टि

सलिल कुमार पाण्डेय*
शिप्रा सिंह**

यह सर्वविदित है कि शिक्षा किसी भी समाज के सर्वांगीण विकास का आधार होता है; शिक्षा द्वारा व्यक्ति के ज्ञान, बोध, कौशल आदि का विकास होता है। वास्तव में शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य मानव में स्वतंत्रतापूर्वक विचार एवं तर्क की सकारात्मक शक्ति का विकास करना है, चिन्तन द्वारा मनुष्य में यह योग्यता आती है कि वह निर्णय कर सके कि कौन-सी बात सत्य है और कौन-सी असत्य। क्या उचित है और क्या अनुचित। शिक्षा संकीर्ण राष्ट्रीयता के दोषों की ओर मानव को इंगित करती है। समाज को सही दिशा देने के लिए शिक्षा ही विकल्प है, ऐसा हम गम्भीरतापूर्वक कह सकते हैं। भारत में ही एक स्वर्णिम युग व्यतीत हुआ जब शिक्षा भारत के मूल में थी। यहाँ नालन्दा, तक्षशिला जैसे उच्च-शिक्षा के केन्द्र रहे हैं, जो हमारे स्वर्णिम अतीत का स्मरण कराते हैं। भारत सैकड़ों वर्ष तक अनेक शासकों के अधीन रहा, जिससे भारतीय शिक्षा व्यवस्था अनेक रूपों में प्रभावित हुई। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक पण्डित मदन मोहन मालवीय ने 'छात्र और राजनीति' नामक लेख में लिखा था कि जब तक राष्ट्र पर कोई बड़ा संकट न हो, तब तक छात्रों को राजनीति से दूरी रखनी चाहिए जिससे वे एक बुद्धिजीवी नागरिक बन सकें और देश की उन्नति में ज्यादा योगदान प्रदान कर सकें। हम कह सकते हैं कि विश्व के किसी भी देश में इतनी अधिक संख्या में विश्वविद्यालय या महाविद्यालय नहीं हैं, जितने भारत में हैं। भारत में विविध मतों के अनुयायी हैं, तात्पर्यतः भारतीय उच्च शिक्षा व्यवस्था, समाज और राज्य दोनों संस्थाओं के द्वारा यथापेक्षा उचित परिणाम नहीं दे पा रही है, इधर हमारी शिक्षा-प्रणाली पर राजनीति का प्रभाव पड़ रहा है। अतः आवश्यकता है नवाचारों और श्रेणीबद्ध सुदृढ़ शिक्षा व्यवस्था की।

श्री अरविन्द के विचारानुसार, शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए - विकसित होती हुई आत्मा को अपने अन्दर से सबसे अच्छी चीज को निकालना और उसे उदात्त उपयोग के लिए पूर्ण बनाने में सहायता प्रदान करना। इसी उद्देश्य को परिभाषित करते हुए शिक्षक को शिक्षण-विधि अपनाना चाहिए।

*ग्रन्थ सम्पादक, 'चेतना' शोध पत्रिका; पूर्व सदस्य, अखिल भारतीय राजनीति विज्ञान परिषद्, ग्रा. भिलोरा, पो. चौसड़, गोरखपुर (उ.प्र.)
**असि. प्रोफेसर, बी.एड्., महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर

प्लेटो के अनुसार, शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्तित्व अन्य व्यक्तित्वों पर इसलिए प्रभाव डालता है जिससे संदेशवाहन और ज्ञान के उपयोग द्वारा व्यक्तित्व के विकास को संशोधित किया जा सके। इक्कीसवीं सदी में जो परिवर्तन के तीव्र रूपाकार घटित हो रहे हैं, उन्होंने संस्थाओं, विचारों एवं व्यक्ति और समाज की अनेकशः पूर्वनिर्धारित अवधारणाओं पर चिन्तन, पुनर्पाठ और विश्लेषण का दायित्व अवधारित किया है। वास्तव में स्वतंत्रता के उपरान्त राधाकृष्णन आयोग, कोठारी आयोग, यशपाल समिति, भारतीय शिक्षा आयोग ने हमें विभिन्न दृष्टिकोण दिये, जो शिक्षा को शैक्षिक परिवेश में व्यावहारिक बनाने के लिए प्रेरित करते हैं। वास्तव में शिक्षा पर एक बौद्धिक विमर्श की आवश्यकता है। भारतीय उच्च शिक्षा में छात्रसंघ की उपयोगिता, शिक्षा की प्रासंगिक परिवर्तनशील नीतियों पर चर्चा, भारतीय उच्च शिक्षा की विसंगतियाँ और उच्च शिक्षा में महिला सक्रियता आदि अनेक चर्चित बिन्दु हैं, जो समाज को उच्च शिक्षा के परिदृश्य में नवीन संकेत, नवाचार प्रदान कर सकते हैं। उपर्युक्त तथ्यों का वृहद शोधपरक विश्लेषण हम निम्न व्याख्या से कर सकते हैं।

छात्रसंघ चुनावों की गतिविधियों में वित्तीय पारदर्शिता लाने और संदिग्ध छवि वाले छात्रों को राजनीति से अलग रखने के बारे में सुझाव देने के लिए एक समिति का गठन हुआ जो **जे.एम. लिंगदोह समिति** के नाम से जानी गयी। लिंगदोह समिति की सिफारिशों पर सुप्रीमकोर्ट ने २२ सितम्बर, २००६ से अमल के निर्देश दिये हैं। समिति की कुछ सिफारिशें इस प्रकार हैं-

१. देश के विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में छात्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले संगठनों के लिए प्रतिपादित प्रक्रिया के अनुरूप सामान्यतया चुनाव कराने चाहिए। निष्पक्ष और स्वतंत्र तरीकों से चुनाव कराना सम्भव न होने की स्थिति में मनोनयन प्रक्रिया के आधार पर प्रतिनिधित्व प्रणाली शुरू की जानी चाहिए, लेकिन यह मनोनयन सिर्फ मेरिट के आधार पर होना चाहिए।

२. छात्रसंघ चुनाव में शिक्षण संस्थान के सिर्फ नियमित और पूर्णकालिक छात्र ही निर्वाचित होंगे।

३. छात्रसंघ चुनाव के दौरान कॉलेज और विश्वविद्यालय में किसी भी बाहरी व्यक्ति को किसी भी हैसियत से चुनाव-प्रक्रिया में भाग लेने की अनुमति नहीं होगी। इस नियम का उल्लंघन करने वाले छात्र, प्रत्याशी अथवा छात्र-संगठन के सदस्य के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही और आवश्यक होने पर उम्मीदवारी निरस्त की जा सकती है।

४. छात्रसंघ चुनाव की सम्पूर्ण प्रक्रिया दस दिन से अधिक न हो। यह चुनाव प्रत्येक वर्ष शैक्षणिक-सत्र शुरू होने की तिथि से छः से आठ सप्ताह के भीतर ही कराये जाने चाहिए।

५. **आयु सीमा-** स्नातक छात्रों के मामले में आयु सीमा १७ से २२ वर्ष हो सकती है। व्यावसायिक पाठ्यक्रम वाले कॉलेजों में कुछ छूट दी जा सकती है।

६. स्नातकोत्तर छात्रों के मामले में आयु सीमा २४ से २८ वर्ष होनी चाहिए।

७. छात्रसंघ पदाधिकारी के लिए चुनाव लड़ने वाले प्रत्येक प्रत्याशी के लिए शिक्षण संस्थान में ७५% उपस्थिति अनिवार्य है।

८. चुनाव लड़ने वाले प्रत्याशी की आपराधिक पृष्ठभूमि नहीं होनी चाहिए।

९. **खर्च सीमा**- समिति ने चुनाव खर्च की अधिकतम सीमा पाँच हजार रुपये निर्धारित की है।

१०. चुनाव खर्च सम्बन्धी नियम का पालन नहीं करने और इससे अधिक धन खर्च करने वाले प्रत्याशी का चुनाव रद्द कर दिया जायेगा।

११. छात्रसंघ चुनाव में राजनीतिक दलों के पैसों के प्रवाह को रोकने के इरादे से समिति ने छात्र-संगठनों के अलावा अन्य स्रोत से प्रत्याशियों को मिलने वाले धन के इस्तेमाल पर पाबन्दी लगायी गयी है।

१२. समिति के छात्रसंघ के चुनावों को निष्पक्ष एवं सुगमता से सम्पन्न कराने के लिए प्रत्याशियों और चुनाव प्रशासकों के लिए आदर्श आचार-संहिता भी निर्धारित की गयी है।

लिंगदोह समिति की सिफारिशों का उद्देश्य यह था कि छात्र-राजनीति में और शैक्षणिक संस्थानों में सुधार हो।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में राज्य-कर्ताओं ने समय-समय पर राधाकृष्णन आयोग (१९४८-४९), माध्यमिक शिक्षा आयोग (मुदालियर आयोग, १९५३), विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (१९५६), कोठारी शिक्षा आयोग (१९६४) के सुझावों और राष्ट्रीय शिक्षा नीति (१९६८) व नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति (१९८६) के आलोक में भारतीय शिक्षा-व्यवस्था को भारतीय हितों के अनुरूप दिशा देने के प्रयास किये, किन्तु व्यवस्थागत दोषों के कारण वर्तमान भारतीय शिक्षा-व्यवस्था, वैश्विक प्रतिमानों में, प्रतिस्पर्धी मानकों पर खरी उतरने में नाकाम सिद्ध हो रही है। आज प्राथमिक स्तर पर विद्यालय, 'भोजनालय' बनकर रह गये हैं तो माध्यमिक स्तर पर शिक्षा-माफियाओं ने इसे 'दुधारू गाय' बना रखा है। उच्च स्तर पर शिक्षा रसूखदारों का पसन्दीदा व्यवसाय बन चुकी है। वर्तमान में, एक दिशाहीन एवं रोजगार-विमुख शिक्षा-व्यवस्था भारत की मानव-पूँजी को अक्षमता के दलदल में ढकेल रही है। ज्ञानार्जन की अभिलाषा नष्ट हुई है और शिक्षा जीवन जीने की कला सिखाने का साधन न बनकर, मात्र सरकारी नौकरी पाने का एक यंत्र बन गयी है। वर्तमान में, विश्वविद्यालय की उपाधियों से अलंकृत होकर सरकारी अथवा गैर-सरकारी नौकरी प्राप्त करना ही उच्च शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य रह गया है। फलतः, राष्ट्र की वर्तमान एवं भविष्यगत आवश्यकताओं को पूर्ण करने में शिक्षा-व्यवस्था असमर्थ हो गयी है।

भारत में सामन्तवादी शासन का दौर लम्बा रहा है। इससे भारतीय समाज आज भी पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाया है, इस कारण से इसका खामियाजा वंचित तबकों को भुगतना पड़ रहा है।

मीनाक्षी मीणा कहती हैं- "स्त्री की पराधीनता का मूल कारक पुरुषवाद है, जो कि सामन्तवादी उपज है। सच तो यह है कि आज हम अर्धसामन्ती और अर्ध पूँजीवादी समाज में रह रहे हैं। सामन्तवाद की बुराइयों से समाज आज भी मुक्त नहीं हुआ है। इसी बीच पूँजीवादी बुराइयों ने भी हमला बोल दिया है। सामन्ती बेड़ियाँ पूँजीवाद से चमक उठी हैं। इन दोनों के बीच आज स्त्री भोग की वस्तु बनकर रह गयी है। यह स्पष्ट उल्लेख्य है कि इस दोहरे हमले ने स्त्री-जगत् को सर्वाधिक नुकसान पहुँचाया है। शोषित-उत्पीड़ित स्त्री समाज के भीतर से प्रतिरोधी स्वर उठे हैं; पर यह क्लेशजनक है कि ये प्रतिरोधी-स्वर सही दिशा नहीं पा सके हैं; और भटकावग्रस्त भारत का स्त्री-आन्दोलन भी इससे मुक्त नहीं है।"

भारतीय महिला आयोग भी नारी उत्पीड़न की शिकायतें दर्ज कर रहा है। उत्पीड़न-निवारण हेतु आयोग कुछ कार्य भी कर रहा है, किन्तु महिला आयोग की कार्यवाही को सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता है।

वर्तमान भारत में महिलाएँ और बच्चियाँ दो तरफ से घिरी हैं। उनकी बड़ी मुश्किल यह है कि वे अपने 'रिस्क' पर बाहर की दुनिया में प्रवेश कर रही हैं। वस्तुतः अन्तर्मन से कोई यह नहीं चाहता कि वे आजाद हों या बराबरी का अहसास करें और दूसरी ओर यह भी उल्लेख्य है कि वे जहाँ निकलकर जा रही हैं, वहाँ समुचित सुरक्षा नहीं है।

कुछ उपयोगी सुझाव निम्नवत हैं-

- राष्ट्र की परिवर्तित नीतियों के सापेक्ष राष्ट्रवासियों को सुसज्जित करें।
- सदी में व्याप्त उदारीकरण और भूमण्डलीकरण की प्रवृत्तियों के बीच राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को रूपायित करें।
- भारतीय बाजार, राष्ट्र-बाजार में अपनी जोदार पहुँच बना सकें।
- राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर रोजगार सम्भवनाओं को देखते हुए, राष्ट्र के युवकों को, कड़ी प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार करें, तथा
- उत्पादकता और गुणवत्ता को श्रेष्ठता के चरम पर पहुँचाएँ।

इन सन्दर्भों की भावभूमि में शिक्षा के समक्ष तीन बड़ी चुनौतियाँ सामने आती हैं-

- शिक्षा को जन-जन तक पहुँचाना,
- सबके लिए शिक्षा की समान सुविधाएँ उपलब्ध कराना, तथा
- अभिनव ज्ञान और अभिक्षमताओं से नागरिकों को सज्जित करना।

स्पष्टतः, आज के राष्ट्र-समाज की उच्च शिक्षा से निम्नांकित अपेक्षाएँ हैं-

- एक सक्षम, बुद्धिवैभव सम्पन्न, सृजनशील एवं जिम्मेदार कार्यदल को प्रशिक्षित करना,
- मानविकी, कलाओं, वैज्ञानिक परम्पराओं तथा ऐतिहासिक विरासतों और जीवन्त संस्कृति के अन्य पक्षों को संरक्षित, विस्तारित और सम्प्रेषित करना।
- एक ऐसी नागरिक-शक्ति को तैयार करना, जो न केवल सामुदायिक मामलों में अपनी प्रतिभागिता सुनिश्चित करे, अपितु वह लोकप्रशासन और राष्ट्र-विश्व की चिन्ताओं में भी अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सके।
- एक ऐसा मंच समुपस्थित करना जो न केवल लोगों को उस मंच पर अधिष्ठित करे, अपितु जो विचारधाराओं की पूँजी के एकत्रीकरण में सहायक बने, साथ ही राष्ट्र की राजनीतिक एवं वैज्ञानिक समस्याओं के समाधान में भी सहायता करे, तथा जो प्रत्येक व्यक्ति को आज के परिवर्तनशील विश्व में आजीवन अधिगम के दायरे में पहुँचा सके, तथा
- जो राष्ट्र-युवकों में शैक्षिक नेतृत्व-क्षमता तथा पूर्ण दायित्व बोध गुणों को विकसित कर सके।

वास्तव में राष्ट्र के उत्थान का रास्ता शिक्षा से होकर जाता है। शिक्षा राष्ट्र की हर दशा एवं दिशा में महती भूमिका निभाती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची:

१. शर्मा, सुनील कुमार - राजनीति विज्ञान; रमेश पब्लिशिंग, नयी दिल्ली

२. आउटलुक, मई २००९

३. सिन्हा, सच्चिदानन्द - लोकतंत्र को चुनौतियाँ; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली

४. ब्राइस, जेम्स - माडर्न डेमोक्रेसी, १९२९

५. पाण्डेय, अनुराग लेख वर्तमान भारत में उच्च शिक्षा : महत्त्ववृत्त और चुनौतियाँ

६. मिश्र, अनुराग उच्च शिक्षा का समकालीन परिदृश्य : चुनौतियाँ और सम्भावनाएँ; भवदीय प्रकाशन,शृंगार हाट, अयोध्या, फैजाबाद (उ.प्र.)

प्राचीन भारत में रंगमच

शत्रुजीत सिंह*

भारत में रंगमच का इतिहास बहुत प्राचीन है। ऋग्वेद में कई सूत्रों में यम और यमी, पुरूरवा और उर्वशी आदि के कुछ संवाद हैं। इन संवादों में रंगमंच के प्रमाण मिलते हैं।[१]

सर्वप्रथम भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में रगमंच को शास्त्रीय रूप प्रदान किया।

"जग्राह पाठ्य ऋग्वेदात्सामभ्यां गीतमेव च।
यजुर्वेदादाभिनयान रसानायर्वणादापि।"[२]

उन्होंने ही ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर ब्रह्मा ने पाँचवें नाट्यवेद की रचना की।

नाट्य शास्त्र के पहले अध्याय में इस परम्परा से सम्बन्धित कथा इस प्रकार दी हुई है कि साधारण लोगों के दुखी जीवन को देखकर देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि चारों वेदों से भिन्न किसी ऐसे वेद का निर्माण किया जाए जिसमें साधारण लोगों, शूद्रों आदि का मनोरंजन हो तथा उन्हें ज्ञान भी मिले[३] ताकि उनका दुख कम हो। परिणामस्वरूप ब्रह्मा ने इस पंचम वेद की रचना कर उसके प्रयोग का कार्य भरत मुनि तथा उनके पुत्रों को सौंपा। पहले यह प्रयोग भारती सरस्वती और आरभरी वृत्ति में हुआ। फिर ब्रह्मा ने भरत मुनि से कौशिकी वृति का प्रयोग करने को कहा। परन्तु कौशिकी वृति के लिए चूंकि स्त्री पात्रों का होना आवश्यक होता है, इसलिए ब्रह्मा ने मजुकेशी, सुकेशी आदि अप्सराओं को सिरज, नारदादि गन्धर्व के साथ यह कार्य भरत मुनि को सौंपा। भरत मुनि ने नाटक का पहला प्रयोग इन्द्र के ध्वजोत्सव में किया। इन्द्र ने विश्वकर्मा से नाट्यग्रह (रगमंच) बनवाया। इसके पश्चात् अनेक नाटकों का मंचन किया गया अमृतमंथन (समवकार) और त्रिपुदाह (डिम) उनमें विशिष्ट थे।

प्राचीन भारत में नाट्यकला भारतीयों के जीवन का अभिन्न अंग थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से तो ऐसा ज्ञात होता है कि नागरिक जीवन के इस अंग पर राज्य को नियन्त्रण करने की आवश्यकता पड़ गई थी। अग्निपुराण, शिल्परत्न, काव्यमीमांसा में भी रगमंच का वर्णन किया गया है।

*इतिहास विभाग, राजकीय नेशनल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिरसा

प्राचीन भारत में रंगमंच की प्रामाणिकता के विषय में सीतावंगा की गुफा उल्लेखनीय है। यह गुफा १३.८ मीटर लंबी तथा ७.२ मीटर चौड़ी है। भीतर प्रवेश करने के लिए बाईं ओर से सीढ़ियाँ है। भीतरी भाग में रंगमंच की व्यवस्था है। यह २.३ मीटर चौडी सीढ़ियों से बना है। आदिवासियों के मंडप गुफारूपी हुआ करते थे।

भरत मुनि ने तीन प्रकार के नाट्यमंडपों का विधान बताया है :- विकृष्ट (आयताकार) चतुरस्त्र (वर्गाकार) तथा त्रयस्त्र (त्रिभुजाकार)। उन्होंने इन तीनों के फिर तीन-तीन भेद किए है ज्येष्ठ (देवताओं के लिए) मध्यम (राजाओं के लिए) तथा अवर (प्रजा के लिए) इनकी माप के विषय में ज्येष्ठ के लिए लगभग ५१ मीटर, मध्यम की लगभग २९ मीटर तथा अवर को लगभग ९ मीटर माप होगी।

भरत नाट्य शास्त्र के आधार नाट्यमंडप की नाप के आधार अणुरज (९ अणु) बाल = ८ रज) लिसा (९ बाल) यूका (= ८ लिक्षा) यव (= ९ युका) हस्त (= २४ अंगुली) और दंड (= ४ हस्त) हुआ करते थे। इस प्रकार एक हस्त ४५६ मिलीमीटर का होता था। कौटिल्य एवं पाणिनी ने माप के जो आधार दिए है वे भी इन्हीं के समान है।

नाट्यशाला का प्रायः आधार भाग दर्शकों के लिए होता है जिसे प्रेक्षागृह-कहा जाता था। शेष आधे भाग में रंग मंडप होता था।

रंग मंडप के पिछले आधे भाग में नेपथ्य होता। दिवारों को सजाने का भी प्रावधान होता था। भरत मुनि के अनुसार भीत पर अच्छा भीतीलेप होना चाहिए। कालिदास ने भी रंगमंच की परम्परा को भरत मुनि और उनके 'अष्टाश्रय तथा ललिताभिनय के प्रसंगों का उल्लेख कर ध्वनित किया है।'

'मुनिना भरतेव यः प्रयोगों भवतीष्वष्टरसाश्रयो निब)।
ललिताभिनय तदध भर्ता मरूता द्रष्टुमनाः सलोकपालः'

भरत के नाट्यशास्त्र का रचना काल तृतीय शती ईस्वी के बाद नहीं रखा जा सकता। पांचवी सदी के कालिदास ने उसका उल्लेख इस विश्वास से किया है कि उसकी प्राचीनता प्रमाणित हो जाती है।

कालिदास ने अपने पहले के नाट्यकारों में महान भास, सौमिल्ल और कविपुत्र का उल्लेख किया।[४]

ई.पू. पांचवी सदी के व्याकरण पाणिनि ने अपने अष्यध्यायी में शिलाली और कृशाश्व के नटसूत्रो का उल्लेख किया।[५] कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'कुशीलव' शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ अभिनेता होता है। इस शब्द का प्रयोग मनु ने भी अपनी मनुस्मृति में किया है।[६]

मनुस्मृति का रचना-काल शुंग युग माना जाता है। पतंजलि के महाभाष्य में दो नाटकों कंसवध और बलिवध का उल्लेख हुआ। साथ ही भाष्यकार ने तीन प्रकार के अभिनेताओं और वर्ण लेखन का उल्लेख किया। रामायण और महाभारत के स्पष्ट संकेत भी उस दिशा में हुए हैं। रामायण में तो नाटक शब्द का ही प्रयोग किया गया है।[६]

महाभारत में काष्ठमयी नारिपात्र का उल्लेख मिलता है।[७] हरिवंश में तो कृष्ण के वंशधरों द्वारा नाटक खेले जाने का स्पष्ट वर्णन मिलता है।

संस्कृत में नाटक को भी महाकाव्य का ही अंग माना गया है। इसकी सर्वगृहिता एवं उपयोगिता को लक्ष्य बनाकर भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में कहा है कि ऐसा कोई ज्ञान नहीं, शिल्प नही, विद्या नही, कला नही, योग और कर्म नही जो नाटक में नहीं हो।

"न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला
न सा योगों न तत्कर्म नाट्येऽस्मियन्न दृश्यते।[८]"

संस्कृत में नाटक का शास्त्रीय नाम 'रूपक' है। नाटक तो रूपक के ही एक भेद का नाम है साधारणत: उसके दो प्रधान भेद है मुख्य (रूपक) और गोण (उपरूपक) और इसके भी भिन्न-भिन्न उपभेद हैं। साहित्य दप्रण में रूपक के दस और उपरूपक के अठारह भेद गिनाये है।

रूपक

१. नाटक (जैसे कालिदास का अभिज्ञान शाकुन्तल)
२. प्रकरण (भव भूति का मालतीमाधव)
३. भाण (वत्सराज का कर्पूरचरित)
४. व्यायोग (मास का मध्यम व्यायोग)
५. समवकार (वत्सराज का समुद्रमंथन)
६. डिम (वत्सराज का त्रिपुरदाह)
७. ईहामृग (वत्सराज का रूकमणिहरण)
८. अंक
९. वीथी
१०. प्रहसन (महेन्द्रवर्मन का मतविलास प्रहसन)

उपरूपक

१. नाटिका (हर्ष की रत्नावली)
२. त्रोटक (कालिदास की विक्रमोवर्शी)
३. शोष्ठी (रैवतमदनिका)
४. सट्टक (राजशेखर की कर्पूरमंजरी)

५. नाट्यरासक (विलासवती)
६. प्रस्थान (श्रृंगार तिलक)
७. उल्लाप्य (देवीमहादेव)
८. काव्य (यादवोदय)
९. प्रेंगण (बलिवध)
१०. रासक (मेनकाहित)
११. संलापक (मायाकापालिका)
१२. श्रीगदित (क्रीडारसातल)
१३. शिल्पक (कनकावती माधव)
१४. विलासिका
१५. दुर्गमल्लिका (बिन्दुमती)
१६. प्रकरणिका
१७. हल्लीश (कैलिरैवतक)
१८. भाणिका (कामदता)

ईसा की पहली और १०वीं सदी के बीच अनेक समर्थ नाट्यकारों ने नाटकों की रचना की। जैसे अश्वघोष ने सारिपुत्र प्रकरण, भास ने स्वपनवासवदता, प्रतिज्ञायोगन्धरायण आदि शूद्रक ने मृच्छकटिक कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तल, विक्रमोर्वशी मालविकाग्निमित्र, विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस हर्ष ने रत्नावली नागानन्द और प्रियदर्शिका महेन्द्रवर्मन ने मतविलास प्रहजन, भवभूती ने महावीर चरित, उतररामचरित और मालतीमाधव, भट्ट नारायण ने वेणी संहार मुरारी ने अनर्धराघव, क्षेमीश्वर ने चण्द्रकौशिक आदि की रचना की।[९] इस प्रकार प्राचीन भारत में रगमंच ने उल्लेखनीय प्रगति की तथा कला के एक पक्ष को एक नया आयाम प्रदान किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ

१. हजारी प्रसाद द्विवेदी (१९६३), प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद।
२. कालिदास, मालविकाग्निमित्रम्, पृ. १७
३. भरत और भारतीय नाट्यशाला, राजकमल प्रकाशन (१९७०), नई दिल्ली।
४. अष्टाध्यायी, पृ. ६।
५. मनुस्मृति, पृ. ७५।
६. रामायण, प. ७८।
७. महाभारत, पृ. २३।
८. श्राव्य रंगाचार्य, (१९०१), पृ. १०३।
९. जगदीश चन्द्र माथुर (१९६९), परम्पराशील नाट्य, पृ. ४५।

सन् १८५७ ई. का स्वतन्त्रता संग्राम व मंगल पाण्डेय की भूमिका

महेन्द्र प्रताप सिंह*

३१ दिसम्बर, १६०० ई. को ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना के पश्चात् से ही अंग्रेजों ने भारत में अपनी जड़ें धीरे-धीरे मजबूत करना प्रारम्भ कर दिया था। अपनी परिपक्व कूटनीति व भारतीयों की कमजोरियों का लाभ उठाते हुए अंग्रेज भारत को उपनिवेश के रूप में परिणित कर साम्राज्यवादी इंग्लैण्ड के साम्राज्य का और अधिक विस्तार करते रहे, इसी क्रम में भारतीयों ने अंग्रेजी शासन की उसके स्थापना के दिन से ही विरोध करना प्रारम्भ कर दिया, जिसका परिणाम यह रहा कि प्लासी के युद्ध (२३ जून, १७५७ ई.) शायद ही कोई ऐसा दशक बीता हो जिसमें भारत के किसी न किसी भाग में कोई विद्रोह न हुआ। ये विद्रोह केवल सामन्तों अथवा जमींदारों द्वारा ही नहीं किये गये वरन् जनजातियों एवं किसानों ने भी अनेक बार विद्रोह किये। समाज के लगभग प्रत्येक वर्ग द्वारा अंग्रेजों के प्रति विद्रोह हमेशा किये जाते रहे और इसी क्रम में कम्पनी (ईस्ट इण्डिया कम्पनी) की सेना में काम करने वाले सैनिकों की धार्मिक भावनाओं को चोट पहुँचाने पर सैनिकों द्वारा विद्रोह करने पर मजबूर कर दिया।

१८५६ ई. में लार्ड डलहौजी भारत से चला गया और उसके स्थान पर लार्ड कैनिंग भारत का गर्वनर जनरल बनकर आया। उसके आने के एक वर्ष के भीतर ही १८५७ ई. का महान स्वतन्त्रता संग्राम छिड़ गया और यह भारतीयों का पहला जबरदस्त स्वतन्त्रता संग्राम था। राष्ट्रीय चेतना का उदय तो भारत में पहले ही हो चुका था, पर १८५७ ई. में वह प्रथम बार मूर्त रूप में प्रकट हुआ और यह इसलिए स्वतन्त्रता संग्राम था क्योंकि इसका उद्देश्य भारत को परतन्त्रता की बेड़ियों से मुक्त करना था।[१]

१८५७ ई. के विद्रोह का सूत्रपात व मंगल पाण्डेय

१८५७ ई. की महान क्रान्ति वस्तुतः एक सुनियोजित और सुसंगठित क्रान्ति थी। सम्पूर्ण भारतवर्ष में एक साथ क्रान्ति कराने के लिए ३१ मई १८५७ ई. की तिथि निश्चित की गई थी, परन्तु बैरकपुर (कलकत्ता) के सिपाही मंगल पाण्डेय ने बहुत बड़ी भूल कर दी जिसके वजह से

असि.प्रोफेसर, इतिहास विभाग, महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर

स्वतन्त्रता संग्राम की सारी योजनाएँ धरी की धरी रह गयीं। ३१ मई १८५७ ई. को जब स्वतन्त्रता संग्राम का बिगुल बजना ही था तो अचानक मंगल पाण्डेय द्वारा समय से पहले ही २९ मार्च १८५७ ई. को बैरकपुर कलकत्ता में गाय की चर्बी से बने कारतूसों को मुँह से सटाकर एवं दाँत से काटकर प्रयोग करने से इन्कार करके विद्रोह कर दिया। इसके अतिरिक्त अन्य सिपाहियों को समय से पूर्व ही भड़काना आरम्भ कर दिया, तत्पश्चात् मंगल पाण्डेय को गिरफ्तार करने आये दो अंग्रेज अधिकारियों की हत्या भी मंगल पाण्डेय ने कर दिया।[५]

मंगल पाण्डेय के अति क्रोध व मूर्खतापूर्ण कार्य से अंग्रेजी सरकार भड़क गयी तथा ३४वीं एन.आई. रेजीमेण्ट जिसका मंगल पाण्डेय एक सैनिक था, को तोड़ दिया गया तथा मंगल पाण्डेय को गिरफ्तार करके मात्र ८ दिन में ही यानि कि ८ अप्रैल १८५७ ई. को ही फाँसी पर लटका दिया गया। यद्यपि मंगल पाण्डेय का बलिदान व्यर्थ नहीं गया, फिर भी असमय विद्रोह करने से स्वतन्त्रता संग्राम का बिगुल जो राष्ट्रीय स्तर पर बजने वाला था, वह उत्तर भारत तक ही सिमट गया क्योंकि मंगल पाण्डेय की फाँसी की खबर जब मेरठ (उत्तर प्रदेश) पहुँची तो यहाँ के भारतीय सैनिकों ने भी चर्बी वाले कारतूस दाँत से खींचने से मना कर दिया जिसके कारण इन सभी भारतीय सैनिकों, जिनकी संख्या ८५ थी, को गिरफ्तार करके हथकड़ियाँ पहनाकर चिलचिलाती धूप में खड़ा कर दिया जाता था और अपमानित किया जाता था।[६]

३१ मई १८५७ ई. को जो स्वतन्त्रता संग्राम का बिगुल बनजे वाला था वह अब १० मई १८५७ ई. से ही आरम्भ हो गया जो भारत माता के लिए दुर्भाग्य ही था कि जो स्वतन्त्रता हमें १८५७ ई. में मिल जानी चाहिए थी वह १९४७ में मिली, क्योंकि यदि यह स्वतन्त्रता संग्राम ३१ मई १८५७ ई. को अपने निश्चित से ही शुरू हुआ होता तो परिणाम कुछ और ही होता और यह भी हो सकता था कि अमेरिकी स्वतन्त्रता की तरह (४ जुलाई १७७६ ई.) भारत को भी सन् १८५७ ई. में स्वतन्त्रता मिल गयी होती, परन्तु मंगल पाण्डेय की अति उग्रता व गलती से स्वतन्त्रता संग्राम के बहादुर सिपाहियों व कुछ देशी रियासतों का दमन किया जाने लगा। जिन ८५ सैनिकों को बन्दी बनाया गया था उन सभी सैनिकों को अंग्रेजों ने तोप के मुँह से बाँधकर उड़ा दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि भारत के ३/४ (तीन चौथाई) रियासतें ३१ मई १८५७ ई. को शुरू होने वाले स्वतन्त्रता संग्राम में शामिल होने से पीछे हट गयीं और केवल उत्तर व मध्य भारत की कुछ रियासतें ही (झांसी, कानुपर, दिल्ली, जगदीशपुर, मेरठ, आगरा, इलाहाबाद, अवध, रुहेलखण्ड, पटना) स्वतन्त्रता संग्राम में शामिल हुईं लेकिन लगभग ५५० रियासतों के अनुपात में इन रियासतों की संख्या नगण्य थी।[७]

उपर्युक्त रियासतों को छोड़कर दक्षिण भारत व पश्चिम भारत की सभी रियासतें व पंजाब की सिख रियासतें, भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में शामिल होना तो दूर उल्टे अंग्रेजों के साथ कदम

से कदम मिलाकर भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों का दमन करने लगीं। दक्षिण भारत के मैसूर राज्य, त्रावणकोर, सतारा, बेल्लोर, त्रिचनापल्ली इत्यादि रियासतों ने अंग्रेजों को सैनिक सहायता देकर स्वतन्त्रता संग्राम (१८५७ ई.) का दमन करने में भरपूर मदद की। ये सभी रियासतें भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में पूरे जोर-शोर से हिस्सा लेने हेतु निश्चित तिथि (३१ मई १८५७ ई.) को तैयार थीं, परन्तु मंगल पाण्डेय की गलती से समय से पूर्व ही स्वतन्त्रता संग्राम छिड़ जाने से सारी योजनाओं व भारतीय स्वतन्त्रता का सपना चकनाचूर हो गया। अंग्रेजों को भारतीय सैनिकों की योजना का भण्डाफोड़ हो गया जिसकी वजह से अमानवीय अत्याचार होने लगे। अंग्रेजी सरकार ने भारतीय रियासतों को चेतावनी भी दे दी कि जो रियासतें इन विद्रोहियों (स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों) का साथ देंगी उनकी रियासतें जब्त करके अंग्रेजी साम्राज्य में पूर्ण रूप से मिला लिया जायेगा। अब अंग्रेजों द्वारा इतना भीषण दमन चक्र व चेतावनी देखकर बाकी सब रियासतें पीछे हट गयीं।[५]

यदि मंगल पाण्डेय द्वारा इतनी बड़ी भूल व गलती नहीं की गयी होती तथा अपने क्रोध पर नियंत्रण सिर्फ दो महीने के लिए और रख लिये होते तो शायद हमारी मातृभूमि १८५७ ई. में परतन्त्रता की बेड़ी से आजाद हो गयी होती। यद्यपि मंगल पाण्डेय का बलिदान व्यर्थ तो नहीं गया लेकिन जो आजादी १८५७ ई. में मिलनी चाहिए थी वह ९० वर्ष बाद सन् १९४७ ई. में मिली।[६]

निष्कर्ष- सन् १८५७ ई. के भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में यदि सभी भारतीय रियासतें समयबद्ध योजना के अनुसार ३१ मई १८५७ ई. को एक साथ अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ी होतीं तो मुट्ठी भर अंग्रेज भारत से १८५७ ई. में ही भाग गये होते और अपना देश भारत सन् १८५७ ई. से ही स्वतन्त्रता दिवस मनाता चला आता और आज देश को स्वतन्त्र हुए १५७ वर्ष हो चुके होते। जिन ८५ सैनिकों को तोप से उड़ा दिया गया वे भी यदि समय से विद्रोह शुरू किये होते तो शायद वे ८५ अंग्रेजों को मारकर शहीद होते, परन्तु मंगल पाण्डेय की चूक के कारण समय से पहले ही वे भी गिरफ्तार हुए और बिना अपनी बहादुरी दिखाये अकारण काल के गाल में समा गये जिसके वजह से अन्य जो सैनिक, जमींदार, राजा इत्यादि विद्रोह या स्वतन्त्रता संग्राम में शामिल होने वाले थे, वे भी अब पोल खुलने से डर कर पीछे हट गये और नहीं तो उल्टे अंग्रेजों की सफलता को देखकर उनके साथ कदम से कदम मिलाकर अंग्रेजों के साथ वफादारी दिखाने लगे, परिणाम यह हुआ कि हमारा भारत देश सन् १८५७ ई. में ही आजाद होते-होते रह गया।[७]

यद्यपि अपनी विफलता में भी मंगल पाण्डेय ने एक महान उद्देश्य की पूर्ति हेतु आने वाले समय में आजादी के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया और इस राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रेरणास्रोत बन गया।

सन्दर्भ :

१. विपिन चन्द्रा : "भारत का स्वतंत्रता संघर्ष"; हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली, १९९३, पृ.सं. ९

२. ए.के. गित्तल : "आधुनिक भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास"; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ.सं.-१८१

३. विद्याधर महाजन : "आधुनिक भारत का इतिहास" एस. चन्द्र कम्पनी लिमिटेड, रामनगर, नई दिल्ली, पृ.सं.-३५९

४. प्रताप सिंह : आधुनिक भारत (१७५६-१८५८); रिसर्च पब्लिकेशन्स, त्रिपोलिया, जयपुर-२, पृ. सं. ४२८

५. रामलखन शुक्ल : "आधुनिक भारत का इतिहास" हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ.सं.-१३३

६. पुखराज जैन : "भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास", पृ.सं.-९

७. एम.पी. सिंह : व्यक्तिगत राय, महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर

बुद्धकालीन दास-प्रथा

श्याम किशोर*

वर्ण-व्यवस्था के समान ही दास-प्रथा भी भारतीय समाज में अति प्राचीन काल में ही प्रचलित हुई। हड़प्पा-युगीन समाज में भी दासों के अस्तित्व का अनुमान लगाया जाता है।[1] वैदिक संहिताएँ, ब्राह्मण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, कौटिलीय अर्थशास्त्र तथा स्मृतिग्रन्थ सभी दास-दासियों का उल्लेख करते हैं। कौटिल्य के अनुसार यदि म्लेच्छ अपनी सन्तान का विक्रय करें अथवा उन्हें बन्धक में दें तो वे दण्ड के भागी नहीं होते, पर आर्य को दास नहीं बनाया जा सकता।[2] मनु भी कहते हैं कि दास बनाने के लिए शूद्रों का क्रय करना चाहिए।[3] बौद्ध पालि-साहित्य में तो दासों के जीवन से सम्बन्धित सामग्री की प्रचुरता है। प्राचीन भारत में दास-प्रथा थी तो अवश्य, परन्तु इस देश के समाज में दासों की वैसी बुरी अवस्था नहीं थी जैसी प्राचीन यूनान तथा रोम में अथवा अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में अमेरिका में थी। जहाँ इन पाश्चात्य देशों में दास-स्वामी अपने दासों के साथ क्रूरतम व्यवहार करते थे, वहाँ भारतवर्ष में किसी बाह्य पर्यवेक्षक को पारिवारिक भृत्यों तथा दासों में विभेद करना सम्भव न हो सका। यही कारण है कि मेगस्थनीज ने अपने भारत-विवरण में दासों के अस्तित्व तक का उल्लेख नहीं किया है।

पालि पिटक तथा समकालीन संस्कृत साहित्य से हमें यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में दासों के क्रय-विक्रय तथा दान सामान्य बातें थीं। राजकुल-धनाढ्य नागरिक परिवार तथा सामान्य ग्रामीण घरों में समान रूप से दास-दासी रखे जाते थे। हमें दास-दासी क्रय-विक्रय के अनेक उदाहरण मिलते हैं। नन्द-जातक (जातक सं.-३९) में एक बौद्धविहारिक (बौद्ध विहार का अन्तेवासी) की तुलना शतमुद्रा क्रीत दास से की गयी है। सतुभस्त-जातक के अनुसार जब एक ब्राह्मण ने भिक्षा माँग कर सात सौ कार्षापण उपार्जित कर लिया, तो उसने सोचा- इतनी मुद्राओं से दास-दासियाँ खरीदी जा सकती हैं, परन्तु इस प्रसंग में दास-दासियों की संख्या का उल्लेख न होने से एक दास अथवा दासी के निश्चित मूल्य का पता हमें नहीं चलता। अतः इस सम्बन्ध में किसी ठोस निर्णय पर पहुँचने में कठिनाई हो जाती है। जैसा कि नन्द-जातक में उल्लेख मिलता है, सम्भवतः एक का मूल्य लगभग एक सौ कार्षापण रहा होगा, यद्यपि इसमें सकारण कमी-बेशी होती

*डी.लिट्. शोधार्थी, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

रहती होगी। हृष्ट-पुष्ट दास मूल्य दुर्बल शरीर वाले की अपेक्षा कुछ अधिक पड़ता होगा। इसी प्रकार एक सामान्य रूप-रंग वाली दासी की तुलना में रूपवती दासी का मूल्य भी अधिक चुकाया जाता होगा। विक्रय और क्रेता की आवश्यकताओं अथवा परिस्थितियों का प्रथा भी दास दासी के मूल्य-निर्धारण में पड़ना स्वाभाविक था।

दास-दासी के क्रय के समान ही दास-दासी का दान भी समाज में अति प्राचीन काल से प्रचलित रहा है। वैदिक युग के राजे अपने पुरोहितों को यज्ञ एवं राज्याभिषेक के समय बड़ी संख्या में दास-दासी प्रदान करते थे। महाभारत काल में महाराजा युधिष्ठिर ने राजसूय-यज्ञ में नियुक्त ८८ हजार ब्राह्मण स्नातकों को ३०-३० दासियों का दान दिया।[४] पालि-पिटक में भी दास-दासी दान के अनेक उदाहरण हमें मिलते हैं। इस प्रथा के प्रचलन के कारण ही भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं के लिए दान में दास अथवा दासी स्वीकार करने का निषेध किया। चुण्ड-जातक (४५६) के अनुसार एक राजा से एक ब्राह्मण को अन्य सामग्री के साथ सौ दासियों का दान प्राप्त हुआ।[५] क्षत्रप उषवदात के नासिक अभिलेख में क्षत्रप नरेश नहपान द्वारा ब्राह्मणों को दान में कन्या प्रदान करने का उल्लेख किया गया है। जो कन्याएँ दान में दी गयीं वे अवश्य ही दासियाँ रही होंगी। राज-परिवारों में दास-दासी दान की प्रथा किसी-न-किसी रूप में आधुनिक युग तक चलती रही, पर अब इसका लोप हो चुका है।

दासता के कारण तथा दास-स्वामियों का व्यवहार

पालि-पिटक, कौटिलीय अर्थशास्त्र तथा मनुस्मृति में अनेक प्रकार के दासों का वर्णन उपलब्ध है जिनसे भारतीय समाज में इस प्रथा के उद्भव एवं विकास के कारणों का अनुमान लगाया जा सकता है। पालि-त्रिपिटक में आठ प्रकार के दासों का उल्लेख है[६] और उनकी संख्या अर्थशास्त्र[७] में पाँच तथा मनुस्मृति[८] में सात है। दासों के इस वर्गीकरण के आधार पर हम इस निर्णय पर पहुँचते है कि युद्ध, धनाभाव, दुर्भिक्ष तथा ऋण-ग्रस्तता दास-प्रथा के उद्भव के मूल कारण हुए। समाज में दासों के अस्तित्व का सर्वप्रथम कारण हुआ युद्ध। जब युद्ध में एक पक्ष की विजय और दूसरे का पराभव होता था तो विजयी दल के सैनिक पराजित पक्ष के सैनिकों तथा आक्रान्त राज्य के नागरिकों को यथासाध्य बन्दी बना कर ले जाते थे। वस्तुतः इन युद्ध-बन्दियों का जीवन विजयी राजा की दया पर निर्भर करता था। इन्हें जो जीवनदान मिलता वह अपनी स्वतंत्रता खोकर विजयी राजा के दास बनकर ही जी पाते थे। इस श्रेणी के दासों को मनु ने ध्वजाहृत की संज्ञा दी है। युद्ध-बन्दियों में कुछ तो बेच दिये जाने लगे और अन्य दान में दिये जाने लगे। इन दोनों प्रकार के दासों का वर्णन मिलता है। कई अवस्थाओं में तो दासत्व स्वेच्छा से स्वीकार किया जाता था- जब किसी परिवार की आर्थिक स्थिति अत्यन्त विषम हो जाती तो गृहस्वामी अपनी पत्नी और सन्तान या स्वयं को बन्धक रखते थे। बहुतों का यही हाल दुर्भिक्ष के दिनों में होता था, जब बुभुक्षित

लोगों को दास बनने के लिए बाध्य होना पड़ता। ऋण के बोझ से दबे व्यक्ति भी ऋणमुक्त होने के लिए दासत्व का सहारा लेते थे। इस स्थिति में वे या तो जिस व्यक्ति का उन पर ऋण होता उसका दासत्व ऋणमुक्त होने की अवधि तक के लिए स्वीकार करते अथवा स्वयं किसी परिवार में बन्धक रहकर महाजन का कर्ज चुकाते। एक वर्ग उन दासों का था जो जन्मत: दास कहे जाते थे और माता-पिता के दास होने से उन्हें भी दास होना पड़ता था। इससे प्रतीत होता है कि पराधीन माता-पिता अपराध-कर्मियों को उनके अपराधों के दण्ड स्वरूप दास बना दिया जाता था।

दास संज्ञा पराधीनता का द्योतक है और पराधीन व्यक्ति के भाग्य में सुख कहाँ? दासों के सुख-दुख के विधाता तो उनके स्वामी थे जो अपने उग्र अथवा मृदु स्वभाव के अनुसार अपने अधीनस्थ दासों के प्रति व्यवहार करते होंगे। पालि-पिटक में वर्णन आता है कि कुछ दासपति तो अपने दासों की त्रुटियों के लिए उन्हें दण्डित करते थे और अन्य कुछ उनके प्रति दया-भाव दिखलाते थे। जिन दासपतियों का स्वभाव क्रूर था वे अपने दासों को पीड़ा पहुँचाते थे। कटाहक-जातक का एक दास भाग्यवश अपने स्वामी का भाण्डागारिक तो हो गया, पर उसे सदा इस बात का भय बना रहता था कि न जाने किस क्षण भाग्य उसका साथ छोड़ दे। वह अपने मन में सोचा करता, "क्या ये मुझे सदा भाण्डागारिक बनाकर रखेंगे। किसी-न-किसी दिन इन्हें मुझसे कोई त्रुटि दिखलायी पड़ेगी तो मार पड़ेगी, मैं बन्दी बना दिया जाऊँगा, मेरे शरीर को दागा जायेगा और मुझे दासों का भोजन खाने के लिए दिया जाने लगेगा।"[१०] दूसरी कहानी है एक दासी की, जिसे उसके स्वामी मजदूरी करने के लिए भेजते थे। एक दिन दुर्भाग्यवश वह कमाकर कुछ न ला सकी। फिर क्या था? उसे घर से बाहर फेंक दिया गया और उसके स्वामी तथा स्वामिनी दोनों ने उसे कोड़े लगाये।[११] मनु ने भी स्वामियों को यह अधिकार प्रदान किया है कि वे अपराध करने पर अपने दासों को रज्जु-प्रहार से दण्डित करें,[१२] परन्तु समाज में ऐसे भी व्यक्ति थे जो अकारण दासों को पीड़ा पहुँचाते थे। अंगुत्तर-निकाय में वर्णन मिलता है कि क्रूर दास-स्वामी के दास जब कार्यरत रहते तो दण्ड भय से उनके नेत्र अश्रुपूर्ण होते और कई तो रुदन भी करते रहते।[१३] तक्क-जातक (६३) में वाराणसी की एक श्रेष्ठी-कन्या का वर्णन मिलता है जो अत्यन्त क्रूर थी और अकारण अपने दासों तथा कर्मकारों को मारती रहती। वेस्सन्तर-जातक में एक क्रूर ब्राह्मण द्वारा दास-दासी को कष्ट देने का मार्मिक वर्णन किया गया है-"एक ब्राह्मण को राजा वेस्सन्तर ने अपने पुत्र एवं पुत्री को दान में दे दिया। वह लोभी ब्राह्मण उन दोनों के हाथ लता से बाँधकर और उसका एक छोर स्वयं पकड़कर उन्हें खींचता हुआ ले चला। उसने एक हाथ में डण्डा भी पकड़ रखा था। उसे लम्बा मार्ग तय करना था, अत: जब रात्रि का आगमन हो जाता तो वह उन दोनों बच्चों को पौधों से बाँध देता और स्वयं वन-जन्तुओं के भय से किसी पेड़ पर चढ़ जाता।"[१४] इस प्रकार के वर्णन में कितनी सत्यता है यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, क्योंकि बौद्ध लेखकों ने ब्राह्मणों को बदनाम करने के लिए शायद उनके सामान्य दोषों को भी अतिरंजित कर दिया है।

जातक कथाओं से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि समाज में क्रूर दासपतियों का सर्वदा अभाव तो नहीं था, परन्तु उनकी संख्या कम थी। दासों के विषय में उपलब्ध सामग्री से हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि सामान्यतया दासों का जीवन दुखमय नहीं था। धर्मप्रधान कुलों में दास तथा कर्मकर सुखपूर्वक रहते थे - उनके साथ सद्व्यवहार किया जाता था और उन्हें भोजन भी अच्छा मिलता था। किसी-किसी दास को तो अपने स्वामी के परिवार के सदस्य की ही भाँति कई सुविधाएँ उपलब्ध हो जाती थीं। कटाहक था तो दासपुत्र ही परन्तु अपने स्वामी-पुत्र के साथ रहकर उसने पढ़ना-लिखना सीखा और उसे दो-तीन शिल्पों का भी ज्ञान हो गया। अन्त में उसे परिवार का भाण्डागारिक बना दिया गया।[१४] जब एक राज पुरोहित को राजा ने वरदान दिया तो उसने घर जाकर अपनी पत्नी, पुत्र और दासी से पूछा, "राजा ने मुझे वर दिया है, मैं क्या माँगूँ?" दासी ने कहा- "मेरे लिए ऊखल, मखल और सूप माँगना।"[१५] जब एक ब्राह्मण कुमार की मृत्यु हो गयी और उसके पार्थिव शरीर का अग्नि-संस्कार किया जाने लगा तो उस परिवार की दासी के शुष्क नेत्रों को देखकर एक व्यक्ति ने कहा, "निस्सन्देह, तुम्हारे स्वामी के पुत्र ने तुम्हें अपवचन कहा होगा, मारा होगा, कष्ट दिया होगा, इसी कारण तुम प्रसन्न हो, तुम्हें रुलाई नहीं आ रही है।" उस दासी ने उत्तर दिया, "स्वामी, आप ऐसे वचन न बोलें, मेरे साथ इस प्रकार की बातें नहीं हुई हैं। मेरे स्वामी के पुत्र के हृदय में तो मेरे लिए क्षमा, प्रेम और दया की भावनाएँ थीं और वे मेरे लिए उसी प्रकार थे जिस प्रकार कोई पुत्र माँ का स्तनपान कर पलता है।"[१६] नन्द जातक में नन्द नामक दास का वर्णन अपने स्वामी के अनन्य विश्वासपात्र के रूप में किया गया है। इस प्रकार के वर्णनों से स्पष्ट हो जाता है कि अधिकांश दास विधि-निर्माताओं ने भी दासों के हितों की उपेक्षा नहीं की। कौटिल्य ने यह व्यवस्था दी है कि दासों के प्रति दुर्व्यवहार अपराध माना जायेगा- "यदि कोई स्वामी अपने दास को मारता है, अथवा उससे निम्न स्तर का काम लेता है तो उसे अपने दास के क्रय-मूल्य से वंचित कर दिया जायेगा। यदि कोई स्वामी दासी-कन्या अथवा बन्धक में दी गयी लड़की के साथ बलात्कार करता है, तो उसे न केवल क्रय-मूल्य से ही वंचित होना पड़ेगा वरन् दण्ड स्वरूप शुल्क भी देना होगा।"[१७]

बौद्ध-जातकों में गृहस्वामी के युवा पुत्रों और उनकी युवती दासियों के प्रेम-सम्बन्धों के वर्णन भी मिलते हैं। प्रश्न उठता है कि इस प्रकार के प्रेम की इति किस तरह होती होगी? इस विषय में कौटिल्य का यह मत है कि किसी दासी-पुत्री को अपने स्वामी से गर्भ रह जाये तो उस अवस्था में वह अपनी दासता से मुक्त मानी जायेगी।[१८] इस विधान से प्रतीत होता है कि सम्भवतः दासी-कन्या अपने स्वामी की पत्नी बन जाती होगी। जातक कथाओं से इस अनुमान का समर्थन होता है। तिस्सकुमार राजगृह के एक धनाढ्य श्रेष्ठी के एकमात्र पुत्र थे। जब वे प्रव्रजित होकर भिक्षुसंघ में प्रविष्ट हुए, तो उनके माता-पिता को घोर कष्ट हुआ। उस परिवार की एक दासी-कन्या ने श्रेष्ठी दम्पति के कष्ट से द्रवित होकर तिस्सकुमार को संन्यास मार्ग से विरत करने का निश्चय

किया। श्रेष्ठिपुत्र उस दासी-कन्या के रूप-लावण्य पर विमोहित हो गया और उसने भिक्षु-जीवन का परित्याग कर दिया।[१९] भिक्षुसंघ का त्याग करने के पश्चात् श्रेष्ठिपुत्र का अपनी दासी-कन्या से क्या सम्बन्ध रह गया इस सम्बन्ध में कथाकार मौन है, पर श्रेष्ठिपुत्र को अपनी दासी कन्या से अनुरक्ति के कारण इस विषय में ही संन्यास से विरक्ति हुई, अतः उनके प्रेम की तर्कसंगत परिणति दाम्पत्य में दिखती है। उदालक-जातक में भी एक राजपुरोहित के दासी-प्रेम का वर्णन है। राजपुरोहित को दासी-कन्या से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम उदालक रखा गया। जब वह वयस्क हुआ और बड़ा ज्ञानी तथा तपस्वी हो गया तो उसकी भेंट अपने पिता से हुई। पिता ने अपने पुत्र का परिचय पाकर कहा, "तुम ब्राह्मण हो इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।" इस वर्णन से यह संकेत मिलता है कि दासीपुत्रों को अपने पिता की जाति की सदस्यता मिल जाती होगी। कोसल-नरेश का विवाह वासभखतिया से हुआ था जो शाक्यवंशी महानाम, क्षत्रिय की एक दासीपुत्री थी।[२०] यद्यपि यह सम्बन्ध कष्टपूर्वक सम्पन्न किया गया था, परन्तु वासभखतिया के पुत्र को कोसल का युवराजत्व प्राप्त हुआ। इस सम्बन्ध में भगवान् बुद्ध ने भी कहा कि पितृ-कुल को ही प्रधानता देनी चाहिए (**मीतिगोत कि करिस्सति पिति गोत्तमेव पमानम्**)।

जातकों ने उच्च वर्ग की कन्याओं के साथ कुछ दासों के प्रेम का भी वर्णन किया है। चुल्लक सेट्ठि-जातक (४) के अनुसार, राजगृह के एक श्रेष्ठि की कन्या को अपने दास से प्रेम हो गया। इस भेद के खुल जाने के भय से श्रेष्ठिकन्या अपने प्रेमी के साथ भाग गयी। उस दास से उसे दो पुत्र हुए। जब प्रथम पुत्र कुछ बड़ा हुआ तो उसको अपने सम्बन्धियों के विषय में जिज्ञासा हुई। उसने अपनी माता से इस सम्बन्ध में पूछा तो उसने उत्तर दिया, "पुत्र! तुम एक बड़े श्रेष्ठि के दौहित्र हो।" जब पुत्र ने अपने नाना के घर जाने का हठ किया तो उसके माता-पिता राजगृह गये। परन्तु न तो पुत्री को पिता के सम्मुख जाने का साहस हुआ और न पिता को ही पुत्री को देखने की इच्छा हुई। अन्त में श्रेष्ठि ने अपने दौहित्रों को तो रख लिया, किन्तु पुत्री और जामाता को पर्याप्त धन देकर विदा कर दिया। वस्तुतः समाज के लिए यह असह्य था कि उच्च वर्ण की कन्या निम्न वर्ग के किसी युवक से प्रेम या विवाह कर बैठे। इस प्रकार के किसी भी सम्बन्ध को प्रोत्साहन नहीं दिया गया, परन्तु यदि उच्च वर्ण की कन्या किसी दास अथवा निम्न जाति के युवक से प्रेम कर बैठती तो उस सम्बन्ध को अनिच्छापूर्वक स्वीकार करना पड़ता था। इस विषय में दासों की अपेक्षा दासियों की स्थिति अधिक अच्छी थी, क्योंकि यदि वे सुन्दरी होतीं तो उस पर उनके युवा स्वामियों के आसक्त होने की अत्यधिक सम्भावना रहती थी।

दासों के कार्य

जिस प्रकार के कर्मों में दासों की नियुक्ति की जाती थी, उन कर्मों की प्रकृति के अनुरूप संज्ञाओं का उपयोग उन दासों के लिए बौद्ध लेखकों ने किया है, जैसे दास खेत, कर्मशाला अथवा दुकान में काम करते थे, उनको कम्मन्तदास कहा गया है।[२१] जो वस्त्र बुनने और धोने का कर्म करते

थे, वे क्रमशः पेशकरदास और रजकदास कहलाये।[२३] इसी प्रकार दासियों के लिए नारीदासी, देवदासी, कुम्भदासी, बन्नदासी, बीहिकोट्टिक्कदासी इत्यादि संज्ञाएँ मिलती हैं।[२३] इस तरह प्रतीत होता है कि दासों से अनेक प्रकार के काम लिये जाते थे और उन दासों की संख्या न्यून थी जो कटाहक के समान भाण्डागारिक या कोषाध्यक्ष अथवा अपने स्वामी के निजी सचिव के पदों पर नियुक्त किये जाते थे। अधिकांश दास प्रायः गृहकार्यों में लगाये जाते थे जो प्रत्येक परिवार की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति के अनुसार थे, भिन्न-भिन्न प्रकार के होते थे। राजकुलों में अथवा धनाढ्य श्रेष्ठिकुलों में नियुक्त तथा सामान्य गृहपतियों के घर काम करने वाले दासों के कार्य समान नहीं हो सकते थे। दासों से प्रायः दो प्रकार के कर्म कराये जाते थे- एक तो गृहकार्य था और दूसरा अपने स्वामी की सेवा। पालि-पिटकों में दास-दासियों को अनेक प्रकार के गृहकार्यों में संलग्न वर्णित किया गया है; जैसे- रसोइये का काम (पाचक कर्म),[२४] जलाशय से जल लाना,[२५] बर्तन धोना,[२६] अन्नागार की रखवाली करना और धूप में धान सुखाना[२७] इत्यादि। कृषकों की दासियाँ अपने स्वामी के लिए खेत में भोजन पहुँचाती थीं।[२८] किसी-किसी परिवार में दास-दासी को मजदूरी करने के लिए अन्यत्र भेजा जाता था।[२९] स्वामी-स्वामिनी सेवा-सम्बन्धी कई कार्यों का भी उल्लेख मिलता है। धनी परिवारों की गृहस्वामिनियाँ जब स्नान के लिए जलाशय की ओर प्रस्थान करतीं तो दासियाँ उनका साथ देतीं। जब वे जलाशय में प्रवेश करतीं तो दासियाँ उनके वस्त्राभूषणों की रखवाली करतीं।[३०] गृहस्वामी अथवा गृहस्वामिनी के भोजन करते समय तत्सम्बन्धी सभी आवश्यक कार्य भी दास-दासियों द्वारा ही सम्पन्न किये जाते।[३१] इस प्रकार के कर्म ऐसे नहीं थे जिन्हें हीन कहा जाय। कौटिल्य ने दास-दासियों से गर्हित कर्म करने का निषेध किया है। उन्होंने दास-दासियों से मुर्दा ढोने, मल-मूत्र साफ कराने, उच्छिष्ट भोजन की सफाई और नग्नस्थान के समय दासी से काम लेने आदि का निषेध किया है।[३२] कौटिल्य की इस व्यवस्था से तत्कालीन सामाजिक दृष्टिकोण का परिचय मिलता है।

दास मोक्ष

जो युद्धबन्दी दास बना दिये जाते थे, उनका अपने पक्ष की विजय हो जाने पर स्वतंत्रता प्राप्त करना स्वाभाविक था। परन्तु ऐसा तो विशेष परिस्थितिवश ही सम्भव था। युद्ध तो नित्य होते नहीं। दासों के क्रय-विक्रयादि जब सामान्य रूप से समाज में प्रचलित हो गये उस स्थिति में उनके मोक्ष की बात विचित्र लगती है; परन्तु यह भारतीय समाज की अपनी विशेषता रही है जिससे अन्ततः दासों का दासत्व समाप्त कर दिया जाता था। पालि-पिटक से यह ज्ञात होता है कि दास द्वारा संन्यास स्वीकार कर लेने से अथवा अपने स्वामी की इच्छा से अथवा अपने स्वामी का मुक्ति-शुल्क चुका देने से दासत्व का अन्त हो जाता। दीर्घनिकाय में कहा गया है कि यदि कोई दास संन्यासी हो जाता है तो अभिवादन और उच्चासन तथा भिक्षु-जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं; यथा- चीवर, पिण्ड-पात्र, आसन आदि का अधिकारी माना जायेगा।[३३] सोणनन्द-जातक

(५३२) में वर्णित है कि एक ब्राह्मण गृहपति ने प्रव्रज्या ग्रहण करने के समय अपने सभी दासों को मुक्त कर दिया। वेस्सन्तर-जातक की कहानी के अनुसार, शुल्क देकर दासत्व का अन्त सम्भव था। राजा वेस्सन्तर ने जब अपनी सन्तान दान के रूप में एक ब्राह्मण को दे दी तो अपने पुत्र से कहा- "पुत्र, जाओ तुम अपनी मुक्ति के लिए इस ब्राह्मण को दास-दासी, हाथी, घोड़े, बैल और स्वर्ण निष्क सौ-सौ की संख्या में देना।[३४] दासों की मुक्ति के सम्बन्ध में कौटिल्य के अर्थशास्त्र से निश्चित बातें ज्ञात होती हैं। कौटिल्य के अनुसार, जो दास दण्ड-स्वरूप अथवा युद्धबन्दी होने के कारण दास बनाये जाते थे वे शुल्क देकर मुक्त हो सकते थे। क्रीतदास को उतना ही शुल्क देना पड़ता था जितने में उसके स्वामी ने उसे क्रय किया हो। यदि किसी को अर्थदण्ड चुकाने की असफलता के कारण दास बनना पड़ता तो अर्थदण्ड की राशि का भुगतान कर देने पर उसे मुक्ति मिल जाती। यदि दास-स्वामी मुक्ति शुल्क पाकर भी किसी दास को मुक्त नहीं करता था तो उसे द्वादश पण दण्ड का भागी माना जाता था। यदि दासी को अपने स्वामी से सन्तान-लाभ हो जाता तो माता और सन्तान दोनों स्वतंत्र माने जाते।[३५] मज्झिम-निकाय के रट्ठपाल-सुत्त से यह ज्ञात होता है कि अपने स्वामी को कोई सुखद संवाद देने से भी कभी-कभी दास को पुरस्कार-स्वरूप मुक्त कर दिया जाता था।[३६] दासों को मुक्त करने की प्रथा का उल्लेख नारद-स्मृति[३७] में भी मिलता है जिससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज में दास मोक्ष की परम्परा लम्बी अवधि तक प्रचलित रही।

सन्दर्भ:

१. चन्ना, डी.आर. - स्लेवरी इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, पृ. १५-१८

२. अर्थशास्त्र, ३/१३, म्लेच्छानामन्दोषः प्रजा विक्रेतुमाधातु या न त्वेवार्यस्य क्षलभावः।

३. मनुस्मृति, ८/४१३

४. महाभारत, सभापर्व, ५२/४५-५६

५. जातक, ४, पृ. ९९, दक्खामि ते गामनरानि पञ्च क्षासीसतं गव सतानि।

६. जातक, ४, पृ. २००, ४, पृ. २८५, ५४५-४८, फिक, आर.- सोशल ऑर्गनाइजेशन इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया इन बुद्धा टाइम, पृ. ३०७

७. अर्थशास्त्र, ३/१३

८. मनुस्मृति, ८/४१५

९. जातक, १, पृ. ४५१

१०. जातक, १, पृ. ४०२, अथ एक दासी भति अददमानं सामिका द्वारे निसिक्षपेत्वा रज्जुया पहारेन्ति।

११. मनुस्मृति, ८/२९९

१२. अंगुत्तर निकाय, २, पृ. २०७-०८

१३. जातक, ६, पृ. ५४८-७३

१४. जातक, १, पृ. ४५१

१५. जातक, २, पृ. ४२८

१६. जातक, ३, पृ. १६७

१७. अर्थशास्त्र, ३/१३

१८. वही

१९. जातक, १, पृ. १५६-५७

२०. कट्ठहारि-जातक, ७, भदसाल जातक ४६५

२१. खुद्दक निकाय, १, पृ. १३९; जातक, १, पृ. ४६८; चन्ना, डी.आर. - वही, पृ. ६९

२२. सामन्त-पासादिक, १/२१५; चन्ना, डी.आर. - वही, पृ. ७०

२३. चन्ना, डी.आर. - वही, पृ. ७०-७२

२४. चुल्लवग्ग, ४/४/७, ६/४/१

२५. घड़ों के साथ जलाशय जाती हुई दासियों का उल्लेख मिलता है- जातक, ५, पृ. २८४; कुणाल-जातक के अनुसार, जब शाक्य तथा कोलिय जातियों की दासियाँ रोहिणी नदी में निर्मित जलाशय में जल लेने गयीं तो दोनों पक्षों में कल हो गया - जातक, ५, पृ. ४१३

२६. जातक, १, पृ. ४५३

२७. जातक, १, पृ. १८४

२८. जातक ३, पृ. १६३

२९. जातक, १, पृ. ४०२

३०. जातक, १, पृ. ३८३

३१. जातक, १, पृ. ४५३

३२. अर्थशास्त्र, ३/१३

३३. दीर्घनिकाय, १, पृ. ६०-६१

३४. जातक, ६, पृ. ५४६-४७

३५. अर्थशास्त्र, ३/१३

३६. मज्झिम निकाय, २, पृ. ६२

३७. नारद-स्मृति, ५/२९-३४।

मोती बी.ए. की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना

अखण्ड प्रताप सिंह*

पूर्वांचल के गौरव तथा हिंदी के श्रेष्ठ कवि स्व. मोती लाल उपाध्याय, जिन्हें साहित्य की दुनिया में 'मोती बी.ए.' नाम से जाना जाता है, हिंदी और भोजपुरी साहित्य के सशक्त और आधुनिक चेतना से सम्पन्न एक आदर्श रचनाकार थे। मोती बी.ए. जी का जन्म १ अगस्त १९१७ को देवरिया जिले के बरेजी गाँव में हुआ। आपके पिता का नाम पं. राधाकृष्ण उपाध्याय और माता श्रीमती कौशल्या देवी थी। आपके सामाजिक और शैक्षिक जीवन में काफी संघर्ष रहा फिर भी आपके लगन-परिश्रम और सामाजिक अनुभवों ने समाज को जो दिया वह महाऔषधि है।

वस्तुतः मोती बी.ए. की रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना के तत्व विद्यमान हैं; जो एक बेहतर राष्ट्र निर्माण में सचेतक के रूप में उनके व्यक्तित्व को दर्शाते हैं। उन्होंने जिन कविताओं का प्रणयन किया उन कविताओं में समग्र रूप से राष्ट्र की चेतना प्रस्फुट होती है। इससे स्पष्ट है कि राष्ट्र के रूप पर ही राष्ट्रीय कविता का स्वरुप अविलम्बित है। राष्ट्र और वाङ्मय का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। इसी तथ्य को मोती बी.ए. जी ने अपनी कविता संग्रह 'राशन की दुकान' में उद्घाटित करते हुए कहा हैं कि राम राज्य का सपना देखकर निर्धन भारतीय जनमानस ने अपने प्राणों की कुर्बानी दी। नेताओं के लोक लुभावन भाषणों से जनता का मन उब चुका था क्योंकि उस समय नौनिहाल बच्चों के सीनों पर गोलियों की बौछार हो रही थी और देश के नेतागण सत्ता पाने की होड़ में कूटनीति रच रहे थे। यही है देश की नेतागिरी, जिसके चलते रामराज्य का सपना पूर्ण न हो सका। कवि को गर्व है उन माताओं पर, जिनके लालनाओं ने देश की शान बचायी। आज हमारा ही नहीं, पूरे भारत का सीना एवं मस्तक गर्व से ऊँचा है एवं हृदय गदगद है। भारत में रामराज्य रहे, इसके लिए बच्चे युवा एवं बृद्ध सभी ने कुर्बानियां दी हैं परन्तु यह दुर्भाग्य ही है कि आज भी लाचारी ही लाचारी है –

रामराज्य का सपना भूखे भारत को दिखलाया
भूखी नंगी जनता का मन भाषण से भरमाया
नन्हें-नन्हें बच्चों ने सीने पर गोली खाई
जिनके जीते झण्डे की शान न जाने पाई
जिनकी माताओं ने आँखों से न बहाया पानी

*असि. प्रोफेसर, हिन्दी, राधिका महाविद्यालय, करवल मझगाँवा, गगहा, गोरखपुर

फूल रही छाती जिनकी सुन नन्हें की कुर्बानी
रामराज्य के लिए देश ने मूल्य चुकाया भारी
अब कैसी लाचारी यारों अब कैसी लाचारी।[1]

जिस तिरंगे के नीचे सभी भारतीयों ने अपना खून और पसीना बहाया। देश में खुशहाली रहे इसके लिए हँस-हँस कर इंकलाब का नारा लगाया, देश की आजादी कितनी मुसीबत और परेशानी झेलकर मिली, यह भारतीयों के दिलोदिमाग पर छाया रहा। अंग्रेजों के आतंक का जरा भी स्मरण होने पर आँखों से अंगारे निकलने लगते हैं। उस तिरंगे की शान बचाने के लिए सपूतों ने अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया, जिससे देश आजाद हुआ, उसी तिरंगे के सम्मान में कवि ने यह कविता लिखी -

जिस झण्डे के नीचे हमने खून बहाना सीखा
अपने हस्ती को हँस-हँस कर खाक बनाना सीखा
अमन चैन के लिए लगाया इंकलाब का नारा
जलता रहा सदा आँखों में लाल-लाल अंगारा
उस झण्डे के नीचे हमको आज मिली आजादी
भारत माता ने जिसके हित अपनी कोख लूटा दी
उस झण्डे के नीचे आवो कविता है बलिहारी
अब कैसी लाचारी यारों, अब कैसी लाचारी।[2]

कवि ने समाज की स्थिति पर गहन चिन्तन किया है। कहने के लिए प्रतिबन्ध लगा है शराबखोरी और ब्लैक धन्धों पर परन्तु ये सभी धन्धे आज भी बड़े पैमाने पर चल रहे हैं, क्योंकि पूंजीपति चाचा है और जो हुकूमत करता है वह भतीजा है, जो दुनियाँ को शर्मसार करने वाले हैं, ये चाचा और भतीजा का खेल ही पूरी दुनियाँ में चलता है। कवि को कष्ट है कि चंद्रशेखर की माँ के आँसू गीले ही होंगे। ऐसे ही शहीदों के खून से सींची है भारत की फूलवारी। कवि को कष्ट है ऐसी व्यवस्था से -

कहने को प्रतिबन्ध लगाया है, शराब खोरी पर
बड़ी शान से ब्लैक चल रहा है सीना जोरी पर
पूंजीपति है चाचा, हुकुमत करता खास भतीजा
देखों दुनियाँ कुर्बानी का आलिशान नतीजा है।
अभी चंद्रशेखर की माँ के आँखे गीले होंगे
अभी भगत सिंह के घर वाले घाव न भूले होंगे
खून की सींची हुई हमारी भारत की फूलवारी
अब कैसी लाचारी यारों, अब कैसी लाचारी।[3]

ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने समाज का भयावह परिदृश्य अपनी नग्न आँखों से देखा है, क्योंकि व्यक्ति जब किसी घटना से द्रवित होता है और वह घटना उसके अन्तस को छू जाती है तो उस घटना का वर्णन कवि बड़े ही सूक्ष्म ढंग से करता है। जैसा की आज समाज में भ्रष्टाचार, हत्या, अपराध, डकैती, राहजनी एवं बलात्कार जैसी घटनाएँ खुलेआम हो रही हैं।

कवि कहता है कि यदि ऐसी घटनाओं को लेकर गुहार लगायी जाये तो वह भी ऐसे भ्रष्ट एवं दबंग अधिकारी एवं नेता के आगे एक सिरे से या तो खारिज कर दी जाती है या विपरीत फैसला सुनाकर उस पर अन्याय की मुहर लगा दी जाती है। यही कारण है कि अधिकारी गण ऐसे ही भ्रष्ट लोगों से अतिरिक्त धन लेकर भव्य भवन में स्वार्गिक आनन्द उठाते हैं, जबकि वह सुख सुविधा उनके भोजन से सम्भव ही नहीं है। ऐसे ही अधिकारीगण सरकार के सामने ईमानदार बनकर मेडल भी प्राप्त करते है। इनकी प्रशंसा में पुरस्कारों की झड़ी लग जाती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि अधिकारी एवं नेता धन को बाँट कर खाते है। यदि ऐसा वो नहीं करते तो तत्काल प्रभाव से डिमोशन कर दिया जाता है और अपने किसी अन्य हितैषी को उस पद पर आसीन कर दिया जाता है। यह है देश की व्यवस्था, जिसका वर्णन कवि ने बड़े ही सूक्ष्म ढंग से किया है –

डाका कत्ले आम राहजनी खुलेआम होती है
जनता की फरियाद हाकिमों के आगे रोती है
डिप्टी, तहसीलदार, दरोगा जितने भी अफसर हैं
चोर डाकुओं से ये रहते मिले हुए अक्सर हैं
बन ठनकर साही लिबास में इधर उधर ये जाते
मोटे ताजे रहते हरदम माँस मलीदा खाते
खर्च हजारों करते हरदम बिल्डिंग बनवाते हैं
वेतन भोगी इतना रुपया कहो कहाँ से पाते है
जनता की सरकार खूब ये जन सेवक सरकारी है
अब कैसी लाचारी यारों अब कैसी लाचारी।[4]

कवि ईश्वर से प्रार्थना करता है कि हे ईश्वर इस देश के गद्दारों को जन्म तो दे पर उन्हें तुरन्त वापस बुला ले, क्योंकि ऐसे लोगों की आवश्यकता इस पवित्र भूमि भारत में नहीं है। यहाँ तो ऐसे सपूतों का जन्म आवश्यक है, जिनके प्रभाव से पूरा विश्व थर्रा जाये। पृथ्वी में कम्पन उत्पन्न हो जाये। समुद्र का पान कर लें, पृथ्वी ही दान दे दे जो अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दे, सत्य ही जिनके पथ हो, ऐसे ही बलिदानी वीरों की आवश्यकता है एवं उनका स्वागत है। पीठ पीछे चाकू मारने की आवश्यकता इस देश को नहीं है क्योंकि ऐसे व्यक्ति भरे पड़े हैं। इसी तथ्य को कवि ने अपनी भोजपुरी कविता में रेखांकित किया है –

न जाने जनम केतना बार भारत में भइल होई
जनम होखों जो मुवला पर त भारतवर्ष में होखों
हमरिये भाँति केतने अउर सब आइल-गइल होई
त एहिगनि ओहू लोग के इहवे जनम होंखो
जरुर देशकी खातिर तड़पि के मरि गईल होइहें
पियासल रहि गइल होई बेचारी आतमा
इहे बा कामना परितृप्ति दे परमातमा उनके
जे मरि के जी गइल ओके ह जिन्दाबाद के नारा
जे जियते मरि गइल उहे इबे गददार-हत्यारा।[5]

देश का भार युवाओं के कन्धों पर है। आज वही युवा लड़खड़ा गए हैं क्योंकि समाज ही उन्हें पथभ्रष्ट कर दिया है। यदि समाज देश का भावी कर्णधार ही अपने मार्ग से विचलित होगा तो देश का भविष्य क्या होगा? इसको सहज ही सोचा जा सकता है। आज का युवा वर्ग दिग्भ्रमित हो चुका है। सामाजिक, राजनितिक, धार्मिक और आर्थिक दृष्टियों से मात्र शोषण का शिकार है। आज का युवा वर्ग नशाखोरी, चोरी, हत्या, लूट, ब्लैक-धन्धा, बलात्कार, राहजनी एवं ऐय्यासी की दुनियाँ में अपना परचम लहरा रखा है। ऐसी स्थिति में परिवार शिक्षा एवं समाज को नजर अन्दाज कर रहा है। आज के बेरोजगारों को देखकर नौनिहाल बच्चे जो अभी माँ की गोद में ही खेल रहे हैं, वे भी शिक्षा में रूचि नहीं ले रहे हैं एवं घर-परिवार में ही सामंजस्य न होने से अनुशासनहीनता भी बढ़ रही है। यही बच्चे अनुशासनहीन होकर अपना एक गोल बनाकर दुष्कर्म के रास्ते पर बेहिचक चलते हैं। यह देश के भावी कर्णधारों का बदसूरत रूप है, जिसका रूप एवं आकार-प्रकार एक अलग ही समाज का शिकार बन रहा है, जिसे देखकर कवि को चिन्ता एवं ग्लानि हो रही है कि इस देश का भविष्य अन्धकारमय है। इसके सभी विकास एक न एक दिन चरमराकर टूट जायेंगे, जिससे पतन होना स्वाभाविक है-

युवा पीढ़ी से पूछऽ, व्यक्ति अऊरू समाज बुझेलऽ
समूचे देस पर टिड्डी के एइसन छा गइल बाड़ऽ
तू अपने घर के का बूझेलऽ कवन काम करेलऽ
जवानी आ गइल बाटे त तू अगरा गइल बाड़ऽ
नशा खोरी करेल, फिल्म देखल तमोचेलऽ
कि घर में होत का बाटे जियत बा कि मरत बाए
पढ़े जालऽ त का लइकन के तू बस्ता न छीरेलऽ
परीछा भवन में समुझेल का परचा कहत बाटे
जे पढ़ला में न कवनो फायदा कहि तूँ पढ़ेलऽ
बना के गोल इकन के करेलऽ खूब हूरदंग

पिटाल अउर पीटेलऽ सिखवला से न सीखेल
करेल भंग अनुशासन, चले ल चाल बेढंगा
इहे कुल्हि लेके जवना देस के चली युवा पीढ़ी
त जाइ चरमरा के टूटि उन्नति के जवन सीढ़ी।[6]

कवि का विचार है कि यदि भारत में सन्त न होते तो भारत विश्व की चोटी पर नहीं लहराता। इसका एक अलग अस्तित्व होता, एक दूसरी पहचान होती एवं विचार भी कुछ और ही होता, अनेकता में एकता तो कदापि नहीं होता, संघर्ष ही संघर्ष इसके पतन का कारण बनता। भारत सन्तों की भूमि है, पितरों की भूमि है, इस सत्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि सन्तों की वाणी ही भारत को मानव मूल्य की पहचान कराती है। एक आदर्श समाज की आधारशिला रखती है। कवि को कष्ट है भारत के राजनेता से जो भारत को दलील करने, क्षति पहुँचाने, अस्मिता को कलंकित करने, जातीय संघर्ष कराने में इन नेताओं का महत्वपूर्ण योगदान है। विश्व के समस्त देशों में भारत देश पूज्य क्यों है, यहाँ सन्तों की तपस्या, गाय, गंगा माता की पूजा एवं सभी का आशीर्वाद ही भारत को पूज्य बनाने एवं सफलता दिलाने में सक्षम है लेकिन वर्तमान समय में सन्त की निन्दा, गाय की हत्या एवं गंगा को दूषित करना एक अहम् समस्या बनी हुई है। संस्कृति, साहित्य, वेद, पुराण, उपनिषद दर्शन के प्रभाव ने ही विवेकानन्द, महात्मा बुद्ध को पूज्य बना दिया है परन्तु आज के समाज में इनका अनादर है। पूरे देश में पाश्चात्य सभ्यता हावी है, जिसका अनुकरण पूरा देश कर रहा है, जिससे पतन का द्वार खुल चुका है –

न होइतें सन्त भारत में त भारत ना रहल होइत
इहाँ के राजनेता लोग एके खेंचि खा धारिते
इहाँ के बुद्धि में जो सन्त वाणी न रमल होइत
गऊ माता के एइसन लोग देसवो काटि धारि दीतें
X X X X X
कटल हव सौ बरिस इजसे, हवा-पानी बदलिगइल
विदेसी सक्ति जमि गइल परस्पर के लड़ाई में
सनातन राज सत्ता हाथ से अपने निकलि गइल
समूचा देस लगि गइल विदेसनि के बड़ाई में।[7]

कवि मोती बी.ए. सार्वभौमिक सत्य को स्वीकार करते हुए प्राणी मात्र की कामना का जयघोष करते हुए दृढ़ आधारशिला पर खड़े दिखाई पड़ते हैं –

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वेसन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माँ कश्चिद् दुःखभाग्भवते।

मोती बी.ए. के सम्पूर्ण साहित्य में अहिंसा परमोधर्मः स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने अनेक विसंगतियों को अल्प शब्दों में अपनी मधुर भाषा एवं सूक्ष्म दृष्टि से रेखांकित किया है। कवि के जीवन में परिस्थितियों का उतार-चढ़ाव तो होता रहा, परन्तु उन्होंने कभी अपने मार्ग को नहीं छोड़ा, बल्कि जनमानस को रास्ता ही दिखाया है। उनके एक-एक शब्द कल्याण, शान्ति तथा राष्ट्रीय भावना का परिचायक है। कवि मोती बी.ए. के काव्य में व्याप्त राष्ट्रीय चेतना न केवल उस दौर के लिए जिस दौर में यह कविता लिखी गयी वरन आज के वर्तमान समय में भी उपयोगी एवं प्रासंगिक है।

सन्दर्भ सूची

१. राशन की दूकान, मोती बी.ए., पृष्ट संख्या - ४
२. राशन की दूकान, मोती बी.ए., पृष्ट संख्या - ४
३. राशन की दूकान, मोती बी.ए., पृष्ट संख्या - ४
४. राशन की दूकान, मोती बी.ए., पृष्ट संख्या - ४
५. भोजपुरी सानेट, मोती बी.ए., पृष्ठ संख्या - ३०
6. भोजपुरी सानेट, मोती बी.ए., पृष्ठ संख्या - १९
7. भोजपुरी सानेट, मोती बी.ए., पृष्ठ संख्या - ४६

कर्मचारी भविष्य निधि- एक दृष्टि

सुभाष कुमार गुप्ता*

परिचय

कर्मचारी भविष्य निधि की स्थापना दिनांक १४ नवम्बर, १९५१ को कर्मचारी भविष्य निधि अध्यादेश के जारी होने के साथ हुई। इस अध्यादेश को कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम १९५२ द्वारा बदला गया। कर्मचारी भविष्य निधि बिल को संसद में वर्ष १९५२ के बिल संख्या १५ के रूप में लाया गया, ताकि कारखानों तथा अन्य संस्थानों में कार्यरत कर्मचारियों के भविष्य निधि की स्थापना के प्रावधान हो सके। इसे अब कर्मचारी भविष्य निधि एवं प्रकीर्ण उपबन्ध अधिनियम १९५२ के रूप में जाना जाता है। यह अधिनियम जम्मू एवं कश्मीर राज्य को छोड़कर पूरे भारत में लागू है। इसके अन्तर्गत बनी योजनाओं का प्रशासन एक केन्द्रीय न्यासी बोर्ड, जिसमें सरकार (केन्द्र तथा राज्य दोनों), नियोक्ता तथा कर्मचारियों के प्रतिनिधि द्वारा किया जाता है।

केन्द्रीय न्यासी बोर्ड संगठित क्षेत्र के कर्मचारियों के लिए एक अंशदायी भविष्य निधि योजना, एक पेंशन योजना तथा एक बीमा योजना का प्रावधान करता है। यह ग्राहकों की संख्या तथा वित्तीय लेन-देन के आधार पर संसार की सबसे बड़ी संस्था है। बोर्ड की सहायता कर्मचारी भविष्य निधि संगठन, जिसके देश भर में १२२ विभिन्न स्थानों पर कार्यालय हैं, द्वारा की जाती है। कर्मचारी भविष्य निधि संगठन भारत सरकार के श्रम एवं नियोजन मंत्रालय के प्रशासनिक नियंत्रण में है। संगठन के पास इसके पदाधिकारियों तथा कर्मचारियों के प्रशिक्षण एवं नियोक्ताओं और श्रमिकों के प्रतिनिधियों के लिए सेमीनार करने के लिए एक सुसज्जित प्रशिक्षण संस्थान भी है।

कर्मचारी भविष्य निधि की योजनाएँ

केन्द्रीय न्यासी बोर्ड निम्नलिखित तीन योजनाएँ चला रहा है-

१- कर्मचारी भविष्य निधि योजना, १९५२

२- कर्मचारी पेंशन योजना, १९९५

३- कर्मचारी सम्बद्ध बीमा योजना, १९७६

*असिस्टेण्ट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर

कर्मचारी भविष्य निधि योजना १९५२

लाभ

१- सेवानिवृत्ति, त्यागपत्र तथा मृत्यु की दशा में संचय राशि के ब्याज के साथ भुगतान।

२- कुछ विशेष स्थितियाँ जैसे- गृह निर्माण, विवाह, उच्च शिक्षा, बीमारी आदि के लिए आंशिक निकासी।

नामांकन

१- संगठन की तीनों योजनाओं के लिए एक समेकित नामांकन प्रपत्र संख्या २ (संशोधित) भविष्य निधि के लिए नामांकन बीमा योजना के लिए भी लागू है।

२- सदस्य जिनके परिवार हैं, कर्मचारी भविष्य निधि की धारा २(एफ) में परिभाषित परिवार के सदस्यों में से एक अथवा एक से अधिक सदस्यों को नामित कर सकते हैं।

३- सदस्य जिनका कोई परिवार नहीं है, किसी भी व्यक्ति को नामित कर सकते हैं, परन्तु उनके परिवार होने की स्थिति में पूर्व का नामांकन अवैध हो जायेगा।

दावा प्रपत्र

१- सदस्य के अपने भविष्य निधि से अंतिम निपटाने के लिए : प्रपत्र १९

२- पुराने खाते से नए खाते में अंतरण के लिए : प्रपत्र १३

३- खाते से कुछ विशेष स्थितियों में आंशिक निकासी के लिए : प्रपत्र ३१

४- जीवन बीमा निगम की वार्षिक किस्त के वित्त प्रबन्धन के लिए : प्रपत्र १४

५- मृत सदस्य के उत्तराधिकारी/लाभार्थी/अवयस्क सदस्य के खाते के अंतिम निपटान के लिए: प्रपत्र २०

कर्मचारी पेंशन योजना १९९५

१- सेवानिवृत्त, विकलांग, उत्तरजीवी, विधवा, विधुर एवं बच्चों को मासिक लाभ।

२- पेंशन की राशि औसत वेतन के आधार पर कम से कम न्यूनतम पेंशन का भुगतान।

३- सेवा के दौरान स्थायी अथवा पूर्ण विकलांगता के कारण नौकरी जाने पर मासिक पेंशन का भुगतान।

४- कर्मचारी परिवार पेंशन योजना १९७१ के सदस्य होने की स्थिति में पूर्व सेवा से भी लाभ।

नामांकन

१- सदस्य को उसके परिवार अर्थात् पति/पत्नी तथा बच्चों के नाम देना आवश्यक।

२- सदस्य का परिवार नहीं होने की स्थिति में एक व्यक्ति को नामांकित करने की सुविधा।

३- लेकिन बाद में परिवार होने की स्थिति में ऐसा नामांकन खारिज हो जायेगा।

दावा प्रपत्र

१- मासिक पेंशन के दावे के लिए : प्रपत्र १० डी

२- जीवित प्रमाण पत्र के लिए : प्रपत्र १० सी

कर्मचारी सम्बद्ध बीमा योजना १९७६

लाभ

१ सदस्य की सेवा में रहते हुए मृत्यु होने की स्थिति में उसके नामित, नामितों, परिवार अथवा उत्तराधिकारी, जैसा लागू हो, को राशि का भुगतान।

२- संशोधित योजना के अनुसार राशि का भुगतान विगत २० माह के वेतन के २० गुना अथवा जमा राशि के आधार पर, जो अधिक हो। दिनांक १ सितम्बर २०१५ से वेतन सीमा ६५०० से बढ़ाकर १५००० कर दिये जाने से बीमा की राशि भी बढ़कर अधिकतम रुपये छः लाख हो गयी है।

नामांकन

१- सदस्य द्वारा कर्मचारी भविष्य निधि योजना के लिये नामांकन कर्मचारी जमा सम्बद्ध बीमा योजना के लिए भी मान्य होगा।

दावा प्रपत्र

१- बीमा राशि के दावे के लिए नामित/नामितों/लाभार्थी/उत्तराधिकारी जैसा लागू हो : प्रपत्र ५ (आई.एफ.)

कर्मचारी भविष्य निधि के क्षेत्रीय कार्यालय

१- अहमदाबाद (गुजरात)	२- ओडिशा
३- बेंगलुरू (कर्नाटक)	४- पटना (बिहार)
५- चेन्नई (तमिलनाडु)	६- पौन्या (कर्नाटक)
७- कोयंबटूर (तमिलनाडु)	८- पुना (महाराष्ट्र)
९- दिल्ली (दिल्ली)	१०- रायपुर (छत्तीसगढ़)
११- गोआ (गोवा)	१२- ताम्बरम (तमिलनाडु)
१३- हैदराबाद (तेलंगाना)	१४- तिरूवनंतपुरम (केरल)
१५- इंदौर (मध्य प्रदेश)	१६- ठाणे (महाराष्ट्र)
१७- जयपुर (राजस्थान)	१८- सूरत (गुजरात)

१९- जलपाईगुड़ी (पश्चिम बंगाल) २०- बड़ोदरा (गुजरात)
२१- कांदीवली (महाराष्ट्र) २२- कानपुर (उत्तर प्रदेश)
२३- कोलकाता (प. बंगाल) २४- मदुरई (तमिलनाडु)
२५- मैंगलोर (कर्नाटक)

कर्मचारी भविष्य निधि - एक सामाजिक सुरक्षा

ईपीएफ (कर्मचारी भविष्य निधि) में नियोक्ता अंश को ५८ वर्ष की उम्र के बाद निकालने का नियम लागू होने से अब कर्मचारी का बीमा ५८ वर्ष की उम्र तक सुरक्षित हो गया है। पहले जो लोग दस साल की सेवा से पहले नौकरी छोड़ देते थे, वे नियोक्ता अंश भी जो पेंशन फंड में जाता था, उसे निकालने के लिए स्वतंत्र थे, क्योंकि उन्हें पेंशन नहीं मिलती थी। नए नियमों के तहत वे अब ५८ वर्ष के पहले नहीं निकाल पाएँगे। इस दौरान यदि उनकी मृत्यु हो जाती है तो उनका परिवार पेंशन का हकदार हो जाएगा। भले ही उनकी नौकरी चली गई हो और उनके ईपीएफ में पैसा जाना बंद हो गया हो। कर्मचारी भविष्य निधि योजना १९५२ में एक नया पैरा ६८ एनएनएनएन जुड़ा है। इसके अनुसार अब सेवा छोड़ने के उपरान्त कर्मचारी केवल अपने हिस्से का ही अंशदान निकाल सकेंगे। नियोक्ता का हिस्सा ५८ वर्ष की आयु पूरी होने के बाद ही निकाल पाएँगे। अब नए संशोधन के अनुसार जो पेंशन से आहरण होता है वह ५८ वर्ष के उपरान्त ही हो सकता है। इसका फायदा यह होगा कि कर्मचारी की पेंशन फंड की सदस्यता ५८ वर्ष तक बनी रहेगी और वह सामाजिक सुरक्षा के दायरे में रहेगा। इस दौरान यदि कर्मचारी की मृत्यु हो जाती है तो उसका परिवार पेंशन का हकदार हो जाएगा। भले ही जीवित रहते कर्मचारी की पेंशन पात्रता नहीं थी लेकिन उसकी मृत्यु के बाद उसकी पत्नी व दो बच्चों जो २५ वर्ष की अवस्था से कम के होंगे, उन्हें पेंशन मिलने लगेगी।

ईपीएफ से जुड़े नियम

ईपीएफ पर कैसे तय होता है ब्याज

सरकार पूरे वित्त वर्ष के लिए ब्याज दरें तय करती है। इस महीने वित्त वर्ष २०१६-१७ के लिए ब्याज दरों की घोषणा करते समय ईपीएफओ ने इसे ०.१५ फीसदी घटाकर ८.६५ फीसदी कर दिया है। वित्त वर्ष २०१५-१६ में ईपीएफ पर ८.८ फीसदी ब्याज मिला था।

कैसे बनें सदस्य

इसके दायरे में नौकरी करने वाले सदस्य ही आते हैं। यह भी जरूरी है कि आप जिस कम्पनी में काम करते हों, वह ईपीएफओ के मानक पर काम करती हो। ईपीएफओ ने १५,००० रुपये तक मूल वेतन पाने वाले कर्मचारियों के लिए ईपीएफ में निवेश अनिवार्य किया हुआ है।

पहले यह सीमा ६,५०० रुपये थी। ऐसा कर्मचारियों के भविष्य की आर्थिक सुरक्षा को देखते हुए किया है। इससे अधिक मूल वेतन पाने वाले कर्मचारियों के लिए ईपीएफओ की सदस्यता स्वैच्छिक है।

निवेश पर कर छूट

ईपीएफ में निवेश पर आयकर की धारा ८०सी के तहत टैक्स छूट भी मिलती है। लेकिन इसके लिए कुछ शर्तें भी हैं। आप लगातार पाँच साल से कम समय तक काम करते हैं और ईपीएफ में से राशि निकालते हैं तो टैक्स छूट वापस करनी पड़ती है।

यह राशि ईपीएफओ टीडीएस के रूप में काट लेता है। आप ईपीएफ में १२ फीसदी से अधिक और यहाँ तक कि कुल मूल वेतन भी ईपीएफ खाते में जमा कर सकते हैं। इस पर १.५० लाख रुपये तक टैक्स छूट मिलेगी। लेकिन नियोक्ता के लिए १२ फीसदी से अधिक जमा करना अनिवार्य नहीं है।

ईपीएफ पर बीमा की भी सुविधा

आपको शायद यह नयी बात लगे लेकिन ईपीएफओ पहले से ही अपने सदस्यों को टर्म बीमा कवर देता है। इसे एम्पलॉई डिपॉजिट लिंक्ड स्कीम (ईडीएलएस) कहते हैं। इसके लिए नियोक्ता मूल वेतन का ०.५० फीसदी ईपीएफओ को देते हैं।

इसके तहत आपको मूल वेतन का ३० गुना बीमित राशि का समूह बीमा कवर मिलता है। नियोक्ताओं के लिए यह स्वैच्छिक है कि वह अपने कर्मचारियों को समूह बीमा कवर दें। लेकिन नियोक्ता समूह बीमा कवर देते हैं तो उसमें यह शर्त होती है कि उसमें मिलने वाला कवर ईपीएफओ की ओर दिए जाने वाले कवर से कम नहीं होनी चाहिए।

आधार से जुड़ने पर नाम-पता काफी

आपका ईपीएफ खाता आधार और बैंक खाता से जुड़ा हुआ है और यूनिवर्सल अकाउण्ट नंबर (यूएएन) मिला हुआ है तो इसके लिए अलग कम्पोजिट फॉर्म है। कम्पनी बदलने पर भी यूएएन वही रहता है। आधार से जुड़े कम्पोजिट फॉर्म को भरना बेहद आसान है। इसमें नाम, पता, रजिस्टर्ड मोबाइल नंबर भरना है। जिस काम के लिए राशि निकालनी है उसके सामने सिर्फ निशान लगाना है और जितनी राशि चाहिए उसे लिखना है। इसके बाद एक रद्द चेक लगाना है। इसके बाद राशि आपके खाते में चली जायेगी। ईपीएफ से राशि निकालने के आवेदन के २० दिन के भीतर रकम आपके खाते में आ जाएगी।

आधार नहीं तो ज्यादा जानकारी

ईपीएफ खाता आधार से नहीं जुड़ा हुआ है तो आपको राशि निकालने के लिए ज्यादा

जानकारी देनी होगी। इसमें नाम, पता और मोबाइल नम्बर के साथ जन्मतिथि, पिता का नाम, आधार नम्बर और बैंक खाता संख्या आदि देना पड़ता है। यदि यूएएन नम्बर नहीं है तो ईपीएफ नम्बर दे सकते हैं। इसके बाद आधार से जुड़ी जानकारी को नियोक्ता के जरिए उसे प्रमाणित करवाया जाता है।

आश्रितों को दौड़-भाग नहीं करनी पड़ेगी

ईपीएफओ ने अपने अंशधारक की मृत्यु की स्थिति में ३ मार्च को एकल दावा फॉर्म पेश किया है। इसका मकसद मृतक के परिजन के लिए कागजी काम में कमी लाना है। नया दस्तावेज मौजूदा फॉर्म २०, आईएफ ५ और १० डी का स्थान लेगा। ईपीएफओ ने एक आदेश में कहा है कि अगर किसी सदस्य की मृत्यु हो जाती है तो दावाकर्ता भविष्य निधि, बीमा कोष और मासिक पेंशन के लिए एक फार्म में आवेदन कर सकते हैं।

पैन देने पर टीडीएस नहीं कटेगा

आपने पाँच साल से कम समय तक नौकरी की है और ईपीएफ से पूरी राशि निकालना चाहते हैं तो उस राशि पर स्रोत पर कर कटौती (टीडीएस) लगता है। आप आयकर श्रेणी में नहीं आते हैं तो राशि निकालने के लिए एकल आवेदन फॉर्म में अन्य जानकारियों के अलावा कम्पनी में काम शुरू करने और छोड़ने की तारीख के साथ पैन नम्बर, फॉर्म १५ जी या १५ एच भरकर जरूर दें। फॉर्म १५ जी और १५ एच आय का स्वघोषणा पत्र है जिसमें आप लिखकर देते हैं कि आपकी आय टैक्स श्रेणी में नहीं आती है। सामान्य स्थिति में ईपीएफ से आंशिक निकासी भी टैक्स फ्री कर दी गई है।

यूएएन को ऐसे आधार से जोड़ें

सबसे पहले पैन और आधार की फोटो कापी को स्वप्रमाणित कर स्कैन करा लें। जिस बैंक खाते को लिंक कराना चाहते हैं उसका एक रद्द चेक भी स्कैन करा लें। इसके बाद ईपीएफओ की वेबसाइट http://epfindia.gov.in पर क्लिक करें। इसके बाद आवर सर्विसेज कॉलम पर जाकर फॉर एम्पलाइज पर क्लिक करें तो सीधे सर्विसेज कॉलम के तहत यूएएन नम्बर और पासवर्ड के साथ लॉगइन करें। करेंट मेम्बर आईडी बॉक्स में अपना पीएफ नम्बर भरें व उसके बाद सम्बन्धित तीनों स्कैन दस्तावेज को अपलोड कर दें। ऐसा करने के १५ से २० दिन में आपके पास सूचना आ जाएगी कि आधार को यूएएन से लिंक कर दिया गया है।

नौकरी बदलने पर राशि हस्तांतरण आसान

एक कर्मचारी के लिए एक ईपीएफ खाते को यदि आपने यूएएन से जोड़ रखा है तो नौकरी बदलने पर राशि के हस्तान्तरण के लिए आवेदन की जरूरत नहीं होगी। आप जब नए नियोक्ता को अपना यूएएन देंगे तो वह आपके केवाईसी (अपने ग्राहक को जानें) विवरण की जाँच

करेगा और नए खाते को यूएएन से जोड़ देगा।

मिस्ड कॉल से ईपीएफ बैलेंस

ईपीएफओ ने पिछले कुछ वर्षों में काफी बदलाव किया है। आप अब ०११-२२९०१४०६ पर महज मिस्ड कॉल से ईपीएफ का बैंलेस जान सकते हैं। ईपीएफओ ने ऑनलाइन राशि निकालने की सुविधा भी दे रखी है।

संस्थान द्वारा जमा राशि वेतन का हिस्सा नहीं

संस्थान द्वारा जमा किया गया अंशदान वेतन का हिस्सा नहीं होता। अत: इसे वेतन से आय में नहीं जोड़ा जाएगा। न ही इस पर धारा ८० सी के तहत छूट प्राप्त करने हेतु जोड़ा जाएगा।

ईपीएफ में जमा धन पर कर लाभ

सरकार की ओर से दिया जाने वाला ब्याज सिर्फ उस धन पर मिलता है जो कि कर्मचारी के वेतन से काटा जाता है अर्थात् ईपीएस के अन्तर्गत जमा धन पर ब्याज नहीं मिलता है। कम्पनी द्वारा किये गये योगदान पर सरकार कर नहीं लगाती है (आयकर अधिनियम की धारा ८० सी के तहत) जबकि कर्मचारी द्वारा कमाए गये ब्याज पर कर देना पड़ता है।

अंशदान की वर्तमान दरें

द्वारा	अंशदान खाते			प्रशासनिक खाते		कुल योग
	ईपीएफ	ईपीएस	ईडीएलआई	ईपीएफ @	ईडीएलआई @	२५.१६%
कर्मचारी	१२%	०	०	०	०	१२%
नियोक्ता	कर्मचारी हिस्से का अंशदान एवं पेंशन अंशदान में अन्तर१२%-८.३३% = ३.६७%	८.३३%	०.५०%	०.६५% (०१.०४.२०१७ से लागू)	०.०१%	१३.१६%

ईपीएफ से पैसा कटवाना मना कर सकते हैं

अगर वेतन, १५००० रु० प्रति माह से ज्यादा है तो आप ईपीएफ में निवेश करने से मना कर सकते हैं और अपने वेतन में से ईपीएफ के नाम पर कटौती को बन्द कर सकते हैं। इसके लिए

अहम नियम यह है कि आपको नौकरी शुरू करने से पहले ईपीएफ फण्ड से बाहर रहने का विकल्प चुनना होगा। अगर आप ऐसा करते हैं तो इसके लिए आपको फॉर्म नं. ११ भी भरना पड़ता है। वहीं अगर आप एक बार ईपीएफ का हिस्सा बन जाते हैं तो फिर आप इससे बाहर नहीं जा सकते। यानि कि अगर आपका ईपीएफ खाता पहले से है, तो यह विकल्प आपके लिए नहीं है।

कर्मचारी पेंशन स्कीम (ईपीएस) में जमा राशि जब्त होना

केवल छः महीने से अधिक व साढ़े नौ साल तक ई.पी.एस. में योगदान होने पर ही उसे निकाला जा सकता है।

त्याग-पत्र या कार्य छोड़ने पर नियम

कर्मचारी भविष्य निधि एक ऐसा निवेश है कि सिर्फ नौकरी करने वाले लोगों के लिए है। ऐसे लोगों के लिए कर्मचारी भविष्य निधि को उनका सेवानिवृत्ति योजना भी कहा जाता है। कर्मचारी भविष्य निधि को कर्मचारी भविष्य निधि संगठन के माध्यम से मेण्टेन किया जाता है। कानून के अनुसार ऐसी कम्पनी या संस्था जहाँ पर २० से ज्यादा कर्मचारी काम कर रहे होते हैं उन सबका पंजीयन, कर्मचारी भविष्य निधि संगठन में होना अनिवार्य होता है। आपके वेतन में से १२ प्रतिशत और वेतन का १२ प्रतिशत कम्पनी या संस्था को कर्मचारी भविष्य निधि संगठन में जमा करना होता है। आपके वेतन से १२ प्रतिशत कटा हुआ पूरा का पूरा धन आपके कर्मचारी भविष्य निधि खाते में चला जाता है, वहीं आपकी कम्पनी या संस्था द्वारा आपके वेतन के १२ प्रतिशत में से केवल ३.६७ प्रतिशत ही आपके कर्मचारी भविष्य निधि खाते में जमा होता है, बाकी का बचा हुआ ८.३३ प्रतिशत धन कर्मचारी पेंशन स्कीम में चला जाता है। ये पूरा पैसा कर्मचारी को उसकी सेवा-निवृत्ति के समय या फिर जब उसके पास कोई काम नहीं होता है, तब काम आता है।

कर्मचारी भविष्य निधि से रकम निकालने का नियम

वर्ष २०१७ से कुछ नये नियम आ चुके हैं जिससे सीधे कर्मचारी भविष्य निधि से रकम निकालने के नियम में कुछ परिवर्तन आ गये हैं जैसे कि-

- अब तक कर्मचारी भविष्य निधि के लिए न्यूनतम सेवानिवृत्ति की उम्र ५५ वर्ष थी। ५५ वर्ष की उम्र में सेवानिवृत्ति के बाद पूर्ण रकम कर्मचारी भविष्य निधि से प्राप्त कर सकते थे। लेकिन अब आप ५८ वर्ष की उम्र से पहले 'पूर्ण' रकम कर्मचारी भविष्य निधि से प्राप्त नहीं कर सकते हैं।
- अब तक आप सेवानिवृत्ति से एक वर्ष पूर्व कर्मचारी भविष्य निधि का ९० प्रतिशत प्राप्त कर सकते थे, उसके लिए आपकी उम्र ५४ वर्ष होनी चाहिए थी। लेकिन अब आपकी उम्र ५४ वर्ष के बजाय ५७ वर्ष होनी चाहिए।
- सेवानिवृत्ति से पहले किसी भी हाल में पूरा कर्मचारी भविष्य निधि कोष नहीं पाया जा सकता है।

- पहले जब कोई कर्मचारी एक संस्था से दूसरी संस्था ज्वाइन करता था तो अपनी संस्था के भविष्य निधि खाते से अपना पूरा पैसा निकासी करवा लेता था। लेकिन अब ऐसा नहीं होगा, अब कर्मचारी को अपना पुराना भविष्य निधि खाता संख्या यूएएन अपनी नयी संस्था को देना होगा, ताकि उसका पुराना भविष्य निधि उसके नये भविष्य निधि के साथ मर्ज किया जा सके। अगर आप जानना चाहते हैं कि आपका निवेश किया हुआ पैसा कर्मचारी भविष्य निधि में कितना हुआ है तो आप ईपीएफ गणना नामक यंत्र का प्रयोग कर सकते हैं जो कि आपके निवेश के बारे में विस्तृत ब्यौरा बता देगा।

कर्मचारी भविष्य निधि से पैसा कब निकाल सकते हैं?

- जॉब में रहते हुए कर्मचारी अपने कर्मचारी भविष्य निधि से पैसा निकाल नहीं सकता है। अगर आपने काम छोड़ दिया है या फिर आप कोई और काम करना चाह रहे हैं तो आप जॉब छोड़ने के २ महीने बाद कर्मचारी भविष्य निधि से पैसा निकालने के लिए आवेदन दे सकते हैं।
- अगर आपको विदेश से जॉब ऑफर आया हुआ है या फिर आप हमेशा के लिए विदेश जाना चाह रहे हैं तो आप जॉब छोड़ने के फौरन बाद ही या फिर जॉब में रहते हुए भी कर्मचारी भविष्य निधि से पैसा निकालने के लिए आवेदन दे सकते हैं। इसके लिए आपको वीजा की कॉपी या ऑफर लेटर की कॉपी निकासी फार्म के साथ देना होगा।
- यदि किसी महिला को अपनी शादी के लिए जॉब छोड़ना है तो वो २ महीने पहले ही अपने कर्मचारी भविष्य निधि से पैसा निकाल सकती है।
- कुछ मामलों में कर्मचारी भविष्य निधि खाते से कुछ पैसा जॉब में रहते हुए भी निकाला जा सकता है जैसे कि अपनी या किसी की शादी के लिए, बच्चों की पढ़ाई के लिए, ऋण चुकाने के लिए (इसके लिए तब मिलेगा जब आपने १० वर्षों तक कर्मचारी भविष्य निधि जमा किया हो), मकान की मरम्मत के लिए तब मिलेगा जब आपने ५ वर्षों तक कर्मचारी भविष्य निधि भरा हो।
- यदि आप लगातार ७ वर्षों तक कर्मचारी भविष्य निधि भर चुके हैं तो आप नौकरी में रहते हुए भी ३ बार करके अपने कर्मचारी भविष्य निधि से ५० प्रतिशत रकम की निकासी कर सकते हैं।

कर्मचारी भविष्य निधि से पैसा निकालने की विधि

- कर्मचारी भविष्य निधि खाते से पैसे निकालने के लिए खाता धारक को पहले फॉर्म १९ और फॉर्म १०सी भरना पड़ता है।
- उसके बाद इस फॉर्म को संस्था के अधिकृत व्यक्ति से प्रमाणित करवाना होता है।

- दोनों कार्य हो जाने के बाद फार्म के साथ, आधार कार्ड एवं पैनकार्ड की कापी एवं एक फोटो संलग्न कर कर्मचारी भविष्य निधि संगठन में जमा कर देते हैं।
- जिन लोगों का कर्मचारी भविष्य निधि उनके यूनिवर्सल एकाउण्ट नम्बर और आधार कार्ड से लिंक हैं तो उन्हें अपने फार्म को संस्था के अधिकृत व्यक्ति से प्रमाणित करवाने की जरूरत नहीं होती है। वे अपना निकासी फार्म प्रत्यक्ष रूप से कर्मचारी भविष्य निधि संगठन के कार्यालय में जमा कर सकते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

१. छाबरा, टी०एन० : ह्यूमन रिसोर्स मैनेजमेन्ट, कानसेप्ट एण्ड इशूस, २०१५, पृ० सं० ११०-१३०

२. ज्योति,पी० : ह्यूमन रिसोर्स मैनेजमेन्ट, ऑक्सफोर्ड यूनिसिटी प्रेस, नई दिल्ली २०१५ पृ०सं० ४०२

३. https://unifiedportal-emp.epfindia.gov.in

४. https://epfindia.gov.in

५. https://epfindia.com.

विभिन्न आयोगों के सन्दर्भ में 'व्यावसायिक शिक्षा' एवं उसका वर्तमान परिदृश्य

अनुभा श्रीवास्तव*

व्यावसायिक शिक्षा को मानव जाति एवं शिक्षा की प्रचलित प्रणालियों द्वारा शिक्षा के प्रचार के रूप में स्वीकार किया जा सकता है जो बच्चों को पेशा या व्यवसाय से परिचय कराती है, जिसे वे बाद में अपने जीवन में अपना सकते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात व्यावसायिक शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया, इस सम्बन्धा में विभिन्न आयोगों एवं समितियों ने महत्वपूर्ण संस्तुतियाँ दी।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग १९४८-४९ ने व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध में सुझाव दिया कि सभी स्तरों की शिक्षा में कृषि को सर्वोच्च स्थान दिया जाए, वाणिज्य छात्रों को विभिन्न व्यावसायिक फर्मों में कार्यानुभव का अवसर प्रदान किया जाए, देश की समृद्धि के लिए इंजीनियरिंग की विभिन्न शाखाओं में विभिन्न प्रकार की संस्थाओं का निर्माण किया जाना चाहिए, उच्च व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने के लिए टेक्नालॉजिकल संस्थाओं का सृजन किया जाए, पुरूषों एवं महिलाओं की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए सामान्य शिक्षा के साथ-साथ व्यावसायिक शिक्षा को भी पाठ्यक्रम में समायोजित किया जाए।

माध्यमिक शिक्षा आयोग १९५१-५३ ने व्यावसायिक एवं प्राविधिक शिक्षा के सम्बन्ध में सुझाव दिया कि माध्यमिक स्तर पर औद्योगिक एवं व्यावसायिक विषयों को स्थान दिया जाए, ग्रामीण स्कूलों में उद्यान, विज्ञान, पशुपालन एवं कुटीर उद्योग आदि की शिक्षा के साथ कृषि शिक्षा की सुविधा का विस्तार किया जाना चाहिए। यह आयोग छात्रों को इस योग्य बनाने पर बल देता है कि अन्त में छात्र यदि जीवन यापन के क्षेत्र में प्रवेश करें तो वह कोई व्यवसाय सफलतापूर्वक कर सकें। महिलाओं की शिक्षा के लिए गठित राष्ट्रीय समिति १९५९ ने सुझाव प्रस्तुत किया कि एक ऐसे पाठ्यक्रम का प्रावधान किया जाए जिससे महिलाओं को आवश्यक शिक्षा के पश्चात् उनके योग्य व्यवसाय हेतु प्रशिक्षित किया जा सके तथा महिलाओं को उच्च स्तर व्यावसायिक ट्रेड हेतु प्रोत्साहित किया जा सके।

कोठारी आयोग १९६४-६५ ने औद्योगिक सफलता एवं व्यावसायिक शिक्षा की उत्कृष्ट

*असि. प्रोफेसर, बी.एड. विभाग, महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर

व्यवस्था हेतु सुझाव दिया कि विद्यालय स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा के पाठ्यक्रम अपने में पूर्ण होना चाहिए ताकि उच्च शिक्षा ग्रहण करने में छात्रों को किसी प्रकार की कठिनाई न हो, औद्योगिक संस्थानों में सर्वेक्षण के आधार पर प्रशिक्षण की सुविधाओं का अधिक से अधिक विस्तार किया जाना चाहिए। उतपादनोन्मुखी बनाने हेतु टेक्निकल स्कूलों और औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं में व्यावहारिक कार्य पर विशेष बल दिया जाना चाहिए, उच्च माध्यमिक स्तर पर शिक्षा को अधिक से अधिक व्यावसायिक बनाना चाहिए। अतः इस स्तर पर वाणिज्यिक, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक कार्यों के विभिन्न पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जानी चाहिए। इस आयोग ने सीधे उत्पादन के कार्य पर अग्रसर होने का प्रस्ताव किया, इनका मानना है कि ऐसा करने से ५० प्रतिशत विद्यार्थियों को व्यावसायिक शिक्षा की धारा में मोड़ा जा सकता है।

शिक्षा एवं व्यावसायिक शिक्षा के कार्य और क्रियान्वयन पर राष्ट्रीय नीति १९८६ ने सुझाव दिया कि व्यावसायिक शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए, शैक्षिक पुर्नगठन हेतु प्रस्तावित व्यावसायिक शिक्षा के कार्यक्रम के क्रियान्वयन को व्यवस्थित, सुनियोजित एवं कठोरता से लागू किया जाना चाहिए, व्यावसासयिक शिक्षा विद्यार्थियों को विभिन्न क्षेत्र में फैले व्यवसायों हेतु तैयार करने का मार्ग होना चाहिए, ऐसे पाठ्यक्रमों को सामान्यतः माध्यमिक शिक्षा के बाद लागू किया जाना चाहिए परन्तु योजना में लचीलापन के प्रावधान हेतु इसे कक्षा आठ के बाद भी उपलब्ध कराया जा सकता है।

पंचवर्षीय योजना १९५१-२०१७ तक १२ पंचवर्षीय योजनाएँ बनायी गयी है। इन योजनाओं के अनुसार देश ने अपने लिए दो नीति-निर्देशक लक्ष्य निर्धारित किये हैं- निर्धनता का उन्मूलन एवं आर्थिक, आत्मनिर्भरता की प्राप्ति। हमारी योजनाएँ इन्हीं लक्ष्यों से प्रेरणा ग्रहण करती है, जिसके परिणाम स्वरूप पंचवर्षीय योजनाओं में अन्य कार्यों के साथ-साथ व्यावसायिक शिक्षा की सुविधाओं को प्राथमिकता दिया गया है। इन पंचवर्षीय योजनाओं ने व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध में सुझाव दिया है कि इस प्रकार की एक पद्धति विकसित करना चाहिए जिसका मुख्य उद्देश्य नौकरी न होकर सफलता पूर्वक व्यावसायिक प्रशिक्षण पूरा करना हो तथा ऐसे लोगों के लिए निम्न एवं मध्यम स्तर की नौकरी में प्राथमिकता दिया जाना चाहिए उन विद्यार्थियों को जो अर्थपूर्ण रोजगार हेतु व्यावसायिक शिक्षा पूर्ण कर लेते हैं उन्हें पर्याप्त अवसर प्रदान करने का प्रबन्ध किया जाना चाहिए, विद्यार्थियों को व्यावसायिक शिक्षा की तरफ मोड़ने का आधार मुख्य रूप से उनकी योग्यता और इच्छा होनी चाहिए।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली मात्र शैक्षणिक (सैद्धान्तिक) प्रकृति की है। यह प्रायोगिक या वास्तविक जीवन से बहुत दूर है। इसके विभिन्न शैक्षिक स्तरों को नवीनीकृत करने की आवश्यकता है, खासतौर से माध्यमिक स्तर पर इसे और अधिक व्यावहारिक प्रायोगिक तथा रोजगार एवं

स्वरोजगारपरक बनाने के अवसर उपलब्ध कराने चाहिए। शैक्षिक विद्यालयों में व्यावसायिक प्रशिक्षु पाठ्यक्रमों को स्वैच्छिक रूप से लागू करना चाहिए जो विद्यार्थियों को रोजगार के अवसर प्रदान करें, व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों से बिना किसी शैक्षणिक बाध्यता के अनुभवी, कुशल कारीगरों को लगाना चाहिए, जो विद्यार्थी व्यावसायिक शिक्षा ग्रहण करते हैं, उनको सूचनाओं एवं निर्देश के लिए राज्य की तरफ से शिक्षण एवं व्यावसायिक निर्देशयान केन्द्रों की स्थापना होनी चाहिए।

विभिन्न आयोगों एवं समितियों द्वारा व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध में जो सुझाव दिये गये वे वर्तमान परिदृश्य में कहाँ तक सही व उपयुक्त पाये जा रहे हैं इसके लिए हम उन सुझावों का वर्तमान समय से तुलनात्मक अध्ययन करेंगे। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग के सुझाव के कारण ही अनेक कृषि, वाणिज्य, इंजीनियरिंग, टेक्नालॉजी संस्थाओं की स्थापना की गई। माध्यमिक शिक्षा आयोग के सुझाव के कारण आज भी विद्यार्थियों को औद्योगिक एवं व्यावसायिक विषयों के माध्यम से रोजगार परक शिक्षा प्रदान की जा रही है ताकि वे सफलतापूर्वक जीवन यापन के क्षेत्र में प्रवेश कर सकें। कोठारी आयोग के कुछ सुझाव तब भी उपयोगी थे और आज भी उपयोगी हैं। जैसे माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा को विशेष महत्व दिया गया, उच्च स्तर पर तीन वर्षीय व्यावसायिक शिक्षा आज भी चलायी जा रही है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति १९८६ द्वारा दिये गये सुझाव में से कुछ सुझाव आज भी उपयोगी है जैसे +२ स्तर की शिक्षा को राष्ट्र की मांग के अनुसार समायोजित किया जा रहा है तथा तकनीकी शिक्षा की उत्तम व्यवस्था पर विशेष बल दिया जा रहा है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ से ही प्राथमिकता के आधार पर व्यावसायिक शिक्षा की अर्थपूर्ण उपयोगिता के लिए विभिन्न विद्यालयों में आज भी लागू एवं क्रियान्वित किया जा रहा है। सभी पंचवर्षीय योजनाओं में व्यावसायिक शिक्षा को बेरोजगारी से लड़ने के लिए एवं देश के आर्थिक विकास के उपकरण के रूप में माना जा रहा है।

वैश्वीकरण के इस दौर में व्यावसायिक शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। सभी स्तरों पर व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था उचित ढंग से होनी चाहिए। विशेषकर माध्यमिक स्तर पर सभी व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग बनाना चाहिए। शिक्षा में बढ़ते उच्च शिक्षा के बजट को कम करके वित्तीय संक्रमण को कम किया जाना चाहिए ताकि स्कूलों एवं कालेजों के डिग्री धारकों में बेरोजगारी को कम किया जा सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

१. अग्रवाल जे.सी. : भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास, शिप्रा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, (२००७)

२. प्रतियोगिता दर्पण : भारतीय अर्थव्यवस्था (२०१०)

३. लाल रमन बिहारी : भारतीय शिक्षा का विकास एवं उसकी समस्यायें, रस्तोगी पब्लिकेशन्स मेरठ। (२००९)

४. सारस्वत मालती एवं गौतम, एस. एल. : भारतीय शिक्षा का विकास एवं सामयिक समस्यायें, आलोक प्रकाशन, इलाहाबाद, (२००९)

५. जौहरी बी.पी. एवं पाठक पी.डी. : भारतीय शिक्षा का इतिहास, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा-२ (२०१२)

६. सारस्वत मालती एवं मोहन मदन : भारतीय शिक्षा का इतिहास, न्यू कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद (२०११ २०१२)

Learning Strategies : Literature Review

Abhay Pratap Singh*
Pragyesh Kumar Mishra**

Abstract : Researchers have worked on Language Strategies with several aspects from long time. The present article is an attempt to analyze the contributions made in the last five decades to understand how and what pattern Learning Strategy should be viewed for the enhancement of learning processes. Learning strategy in early studies was seen as identification of psychological, communication, social and cognitive strategies for the second language leaning, another next study focuses primary and supportive strategy. Furthermore, current study conducted in 2013, researchers studied in empirical manner revealed 10 important learning strategies beneficial for the students and learners i.e., elaborative interrogation, self-explanation, summarization, highlighting (or underlining), the keyword mnemonic, imagery use for text learning, rereading, practice testing, distributed practice, and interleaved practice. This paper is an attempt to bring the various views; dimensions put comprehensive view of learning strategies for practice of students and for further researches.

Keywords : Learning Strategies, Language learning, Meta Cognitive Strategy, Communication

Introduction

Over the last few decades, researches in the field of Cognitive Psychology including learning process and learning strategies have grown fast in around the world. A plethora of studies in the areas of Cognitive Psychology identifies the positive role of learning strategies on the development of learning process of learners and students both.

Everybody knows that students and learners use more effort for learning with any learning material in school time and other learning situations. In this direction, they use many strategies according to problems' level. It is also clear that some students perform very high, whereas some perform very low most of them perform moderate level, therefore this is a question, how can perform all students equally best. Indeed, learners should use greater effort with utility of learning strategies then learning capacity and performance of students can uplift. Another questions are – students how to take deep approaches to study, how to read for relevant information and how to code the information for retrieval.

*Assistant Professor, Psychology, Akhilabhagya Post Graduate College Ranapar, Gorakhpur
** Assistant Professor, Psychology, Maharana Pratap P.G. College, Jungle Dhusan, Gorakhpur

Few learners in shallow sense receive information for short- term retrieval but store the information in scattered and fleeting manner, they can recall information , but trouble applying concepts to situations, their intellectual landscape is populated by lists and isolated facts. Few learners in deep sense remember information with creating an intellectual landscape with markers that open up different areas of knowledge, they transform learning material in such a way as to create pathways of association that activate complicated concepts on recall. So it is clear that all are using some strategies for enhancing learning capacity.

Learning strategies is conceptualize by many researchers but according to requirement of the present study it can be defined as "specific actions, behaviors, steps, or techniques —such as seeking out conversation partners, or giving oneself encouragement to tackle a difficult language task — used by students to enhance their own learning" (Scarcella & Oxford, 1992,). When the learner consciously chooses strategies that fit his or her learning style and task at hand, these strategies become a useful toolkit for active, conscious, and purposeful self regulation of learning. Learning strategies is also classified by many psychologists and a number of researches have done on learning strategy.

In view of these considerations, the objectives of the present study are to find out the important learning strategies through earlier researches and to focus the pattern of researches on learning strategies.

For this investigation, important studies were selected from 1975 to 2013 and studies have been displayed one by one.

A sizeable number of researches have done on second language learning strategies emerged from a concern for identifying the characteristics of successful learners (Rubin, 1975; Stern, 1975). Investigators identify the strategies (psychological, communication, social and cognitive strategies) of successful learners so that these could be made available to less successful learners (Rubin ,1975). Another research conducted on the title '*The development of a learning strategies curriculum*' in year 1978, Dansereau reported learning strategies into two ways i.e., **primary strategies** operate directly on materials and **support strategies** operate on the individual to help establish a suitable learning atmosphere. To assist the learners and make the training more effective, researchers devised a training system based on findings from the educational and psychological research of that time, to assist learners with alternative learning procedures and help them interact more effectively with academic and technical materials.

Weinstein (1978) studied the effects of a **diversified elaboration skill-training**

program on the learning and retention efficiency of ninth graders. This work provided evidence that a general learning strategies program can be developed and implemented to provide learners with a set of procedures to maximize acquisition, retention, and retrieval of material.

Another researcher pointed out his work, which was beneficial in highlighting the effectiveness of training in using learning strategies (Wong-Fillmore ;1976). Naiman, Frolich, Stern, and Todesco (1978) opined five major strategies that good language learners do: 1- Active involvement in learning by identifying and determining the learning environment ,2- Awareness of language as a system ,3- Awareness of language as a means of communication and interaction ,4- Acceptance of the affective demands of L2 and coping with it ,5- Extension and revision of L2 system by inferencing and monitoring. Furthermore, study revealed that a fifth of all strategy use reported by the students were combinations of cognitive strategies, metacognitive strategies, or both, cognitive and metacognitive strategies (Sarig ; 1987). Nambiar (1996) and Mah (1999) also found that Malaysian undergraduates used strategies in combination, especially from the cognitive and metacognitive strategy groups. This is an important finding because it helps us understand why some learners are more successful at completing a language task compared to others.

Bialystok (1978) distinguished between language use and language form better known as functional practice strategies and formal practice strategies respectively in her model of second language learning. Functional practicing and inferencing and formal practicing and monitoring strategies were all seen as "optimal means of exploiting available information to improve competence in a second language". In addition, Bialystok talked about explicit and implicit linguistic knowledge and general knowledge because the type of strategy used was dependent on the type of knowledge necessary for the task. This was one of the earliest researches to include the cognitive component in understanding how learners process information.

Hosenfeld, Arnold and Kirchofer (1981) reported on the reading strategies of successful and unsuccessful second language learners and, more specifically, on a meta cognitive strategy, in which good learners evaluate their thinking using logic. Cohen and Aphek (1981) researched the strategies learners used while learning vocabulary as well as the role of mnemonic associations in vocabulary retention. Using mostly classroom observations, they deduced that students basically tried to memorize words resulting in the identification of 11 categories of associations used. In addition, their work revealed strategies that hindered learning; these were poor memory techniques, poor inductive

inferencing strategies, and poor deductive reasoning. O Malley et al., (1985) worked on their tripartite model comprising Meta cognitive, cognitive and social affective strategies in second language learning.

Researcher found that students who were trained to use cooperative learning strategies did better than those who were not provided with such training (Slavin; 1980). Cooperative strategies have also been used in a number of reading comprehension activities and the results have also been positive in that they do enhance the learning (Dansereau, Larson, & Spurlin, 1983). Furthermore, Brown and Palinscar (1982) recognized that "an ideal training package would consist of both practice in the use of tasks-appropriate strategies, instruction concerning the significance of those activities, and instruction concerning the monitoring and control of strategy use". They attempted to separate cognitive strategies from the meta cognitive strategies. Cognitive strategies were more concerned with individual tasks and required the material to be manipulated or transformed to enhance understanding. Meta cognitive strategies were strategies concerned with the planning for the learning, monitoring of understanding, and evaluation of one's own learning. Brown et al. (1983) went on to state that students needed both cognitive and meta cognitive strategies to maximize their learning potential.

Weinstein and Mayer (1986) believed that information processing could help us understand the role of learning strategies in the learning process. They suggested a four stage encoding process involving selection, acquisition, construction, and integration. The process of selection and acquisition centers on the gathering of knowledge while construction and integration focuses on what knowledge is acquired and how it is organized. The authors explain that learning strategies are used intentionally by learners to facilitate their learning. This suggests that learning strategies "affect learners motivational or affective state, or the way in which learner selects, acquires, organizes or integrates new knowledge".

A lot of studies enlightened on the distinction between cognitive, meta cognitive, and social or affective strategies. In the field of second language acquisition the same type of work was done with language learners. Wenden (1983, 1986) studied on second language learning, especially in terms of what learners know about the way they learn and how they plan for learning. Concentrating on self-directed learning among adult foreign language learners and using interviews the researcher pointed out that learning, planning, monitoring, and self-evaluation determine learners, learning process, which match Brown and Palinscar s (1982) categorization of meta cognitive strategies. This is clear that these are benificial for learners students and teachers in learning strategies in language learning.

O Malley et al. (1985) provided the first clear distinction between meta cognitive and cognitive strategies by working with beginning and intermediate level ESL learners to assess their strategy use for oral language tasks. Using self-reports by students they distinguished between cognitive, meta cognitive, and social strategies and outlined the first taxonomy of learning strategies. After considering the earlier work on strategy research, Oxford (1990) presented a system of strategies i.e., memory strategies, cognitive strategies, compensation strategies, meta cognitive strategies, affective strategies and social strategies that support each other and can be associated with each other.

Cohen (1998) described language-learning strategies as strategies for identifying material to be learned, drawing differences between it and other material, grouping it for easier learning, working on the material repeatedly, and committing the material to memory when it cannot be acquired naturally. Language use strategies, on the other hand, are made up of retrieval, rehearsal, cover, and communication strategies. *Retrieval* strategies are used to source material stored in the memory. *Rehearsal* strategies are strategies for rehearsing target language structures. *Cover* strategies are used by learners to give the impression that they are in control of their learning when they are not. These are similar to compensation strategies in that they compensate for gaps in the target language knowledge helping learners not to appear unprepared. *Communication* strategies are used to convey messages to the learner (Cohen, 1998).

Dunlosky et al. (2013) pointed out ten learning strategies in the area of cognitive psychology. Their findings suggest that these strategies are actually detrimental to learning and understanding, which indicated as low utility strategies include Summarization, Highlighting/Underlining, Keyword Mnemonic, Rereading, and Imagery for Text, where some are helpful under certain circumstances ,which identify as moderate utility strategies include Elaborative Interrogation, Self-Explanation, and Interleaved Practice, and some are helpful in virtually any learning setting found as high utility strategies include Practice Testing and Distributed Practice. Concepts of these strategies are given below :

1- **Elaborative Interrogation** involves the student generating an explanation for why a fact or concept is true.

2- **Self-Explanation** is similar technique as elaborative interrogation in which Students explain how new information is related to known information, or explain steps taken during problem solving. Both of these strategies help students connect new and already-known information, which aids in memory encoding. Both work best if the student, not the instructor, generates the explanation.

3- **Summarization** is another strategy in which learners have to learn large amount of

information to identify what is important fact and how these fact connect to another fact, therefore accomplishing these goals learnrs write summaries of to be learned text.

4- **Highlighting** use every students and they mark important portions of to be learned materials while reading.

5- **Keyword mnemonic** involves the students using keywords and mental imagery to associate verbal material.

6- **Imagery for text learning** -When students set some mental images of text materials while reading or listening. Using this strategy everyone can take benifit.

7- **Rereading** - Restudying text material again after an initial reading is called rereading strategy.

8- **Practice Testing**, also known as retrieval practice, supports both recall and comprehension of course material for students of all ages, all abilities, and in many subject areas. Practice testing can be aided with practice questions from faculty, or could be as simple as using flashcards to check memory of key terms. The key component to practice testing is that students must retrieve the answer from their long term memories. There are no benefits to looking up the answer in the book, or flipping the flashcard over immediately.

9- **Distributed Practice** is about spacing out study sessions over time instead of "cramming" the night before a test. Encourage your students to use these two strategies. If possible, make them required parts of your courses so that everyone can benefit from them.

10- **Interleaved Practice** is a schedule of practice that mixes different kinds of problems within a single study session. This strategy shows the best results in math classes. Switching between different kinds of computations may result in lower performance during class.

Above all the studies give us a direction and pattern of researches on learning strategies. Direction of studies is very clear for the benefit of learners and students as well as pattern of studies also clear and indicate that researches have done in learning strategies under cognition learning strategy and second learning acquisition variable. Current researches clear the systematic learning strategies. Language learning strategy use range from cultures and educational contexts to individual learner variables, such as gender, motivation, learning styles, years of learning, proficiency, and achievement. The majority of investigations have focused on young adult and adult learners than the other groups.

When discussing learning strategies with students, encourage them to use those that have proven to be more efficient and effective. Present time, students and learners may benefit from this article given a huge information, which rais the potential role of learning strategies.

References

- **Bialystok, E.** (1978). A theoretical model of second language learning. Language Learning, 28 (1), 69-83.
- **Bialystok, E.** (1981). The role of conscious strategies in second language proficiency. Modern Language Journal, 65, 24–35.
- **Brown, A. L., & Palinscar, A.** (1982). Inducing strategic learning from texts by means of informed self-control training. *Topics in Learning and Learning Disabilities. 2,* 1-17.
- **Brown, A. L., Bransford, J. D., Ferrara, R. A., & Campione, J. C.** (1983). Learning, remembering and understanding. In J. H. Flavell & E. M. Markham (Eds.), *Carmichel's manual of child psychology* (Vol. 1, pp. 14-21). New York: John Wiley.
- **Cohen, A. D.** (1998). Strategies *in learning and using a second language. New York:* Longman.
- **Cohen, A. D., & Aphek, E.** (1981). Easifying second language learning. *Studies in Second Language Acquisition 3,* 221-235.
- **Dansereau, D. F.** (1978). The development of a learning strategies curriculum. In H. F.
- **Dansereau, D. F., Larson, C. O., & Spurlin, J. E.** (1983). *Cooperative learning: Impact on acquisition of knowledge and skills.* Paper presented at the annual meeting of the American Educational Research Association, Montreal.
- **Dunlowsky, J., Rawson, K. A., Marsh, E. J., Nathan, M. J., & Willingham, D. T.,** (2013). Improving students' learning with effective learning techniques: Promising directions from cognitive and educational psychology. *Psychological Science in the Public Interest. 14*(1), 4-58.
- **Hosenfeld, C., Arnold, V., & Kirchofer, J. L.** (1981). Second language reading: A curricular sequence for teaching reading strategies. *Foreign Language Annals, 14* (5), 415-422.
- **Mah, S. F.** (1999). *The language learning strategies of Malaysian undergraduates from national primary schools and national type (Chinese) primary schools for completing selected ESL classroom activities.* Unpublished master s thesis, Universiti Kebangsaan Malaysia, Bangi.
- **Nambiar, R.** (1996). *Language learning strategies of six Malaysian ESL learners when performing selected language activities.* Unpublished master s thesis. Universiti Kebangsaan Malaysia, Bangi
- **O Malley, J. M., Chamot, A. U., & Stewner-Manzanares, G.** (1985). Learning strategies used by beginning and intermediate ESL students. *Language Learning, 25,* 21-36.
- **O Neill, Jr. (Ed.),** *Learning strategies* (pp. 1-29). New York: Academic Press.
- **Oxford, R. L.** (1990). *Language Learning Strategies: What Every Teacher Should Know.* New York: Newbury House Harper Collins.
- **Rubin, J.** (1975). What the 'good language learner can teach us. *TESOL Quarterly 9,* 41-51.
- **Sarig, G.** (1987). High- level reading in the first and in the foreign language: Some comparative process data. In J. Devine, P. L. Carrell, & D. E. Eskey (Eds.), *Research in reading in English as a second language* (pp. 105-120). Washington, DC: TESOL.
- **Scarcella, R. C. & Oxford. R. L.** (1992). The tapestry of language learning: The individual in the communicative classroom. Boston: Heinle & Heinle
- **Slavin, R. E.** (1980). Cooperative learning. *Review of Educational Research. 50,* 315-42.
- **Stern, H. H.** (1975). What we can learn from the good language learner? *Canadian Modern Language*

Review, 31, 304-318.

- **Weinstein, C. E.** (1978). Elaboration skills as a learning strategy. In H. F. O Neill (Ed.), *Learning Strategies* (pp. 31-56). New York: Academic Press.
- **Weinstein, C. E., & Mayer, R. E.** (1986). The teaching of learning strategies. In M. C. Wittrock (Ed.), *Handbook of research on teaching* (pp. 315-327). New York: Macmillan.
- **Wenden, A.** (1983). Literature review. The process of intervention. *Language Learning, 33* (1), 102-121.
- **Wong Fillmore, L.** (1976). Learning a second language. In J. E. Atalls (Ed.), *Current issues in bilingual education* (pp. 309-325). Washington: Georgetown University Roundtable in Languages and Linguistics 1980.

Smart Cities Mission
A Step Towards Smart India

Rajesh Shukla*
Vagish Raj Pandey**

Smart Cities Mission is an urban renewal and improving program by the Government of India with a mission to develop 100 cities all over the country making them citizen friendly and sustainableThe Government of India announced this programme- the 100 smart cities mission in the year 2014 and was launched in June 2015 to achieve urban transformation, drive economic growth and improve the quality of life of people by enabling local area development and harnessing technology. Initially, the mission aims to cover 100 cities across the countries (which have been shortlisted on the basis of a smart cities proposal prepared by every city) and its duration will be five years (FY 2015-16 to FY 2019-20). The mission may be continued thereafter in the light of an evaluation to be done by the Ministry of Urban Development (MoUD) and incorporation of the learnings into the mission. The mission aims to focus on area-based development in the form of redevelopment of existing spaces, or the development of new areas (greenfield) to accommodate the growing urban population and ensure comprehensive planning to improve quality of life, create employment and enhance incomes for all - especially the poor and the disadvantaged. The mission has been developed for the purpose of achieving urban transformation. The vision is to preserve India's traditional architecture, culture & ethnicity while implementing modern technology to make cities liveable, use resources in a sustainable manner and create an inclusive environment. On 27th August 2015 the Centre unveiled 98 smart cities across India which were selected for this project. Across the selected cities, 13 crore population (35% of the urban population will be included in the development plans).

How are the smart cities going to be Funded?

The smart city mission will be operated as a centrally sponsored scheme (CSS) and the central government proposes to give financial support to the mission to the extent of Rs. 48,000 crores over five years i.e. on an average Rs. 100 crore per city per year. The additional resources will have to be mobilized by the State/ ULBs from external/internal sources. According to the scheme, once list of shortlisted smart cities is finalized, Rs. 2 crore would have been disbursed to each city for proposal preparation.

According to estimates of the central government, around Rs 4 lakh crore of funds

*Head and Assistant Professor
**Assistant Professor, Deptt. of Commerce, Maharana Pratap PG College, Jungle Dhusan, Gorakhpur

will be infused mainly through private investments and loans from multilateral institutions among other sources, which accounts to 80% of the total spending on the mission. For this purpose, the government will approach the World Bank and the Asian Development Bank (ADB) for a loan costing £500 million and £1 billion each for 2015-20. If ADB approves the loan, it would be it will be the bank's highest funding to India's urban sector so far. Foreign Direct Investment regulations have been relaxed to invite foreign capital and help into the Smart City Mission.

Core infrastructure

1. Adequate water supply,
2. Assured electricity supply,
3. Sanitation, including solid waste management,
4. Efficient urban mobility and public transport,
5. Affordable housing, especially for the poor,
6. Robust IT connectivity and digitalization,
7. Good governance, especially e-Governance and citizen participation,
8. Sustainable environment,
9. Safety and security of citizens, particularly women, children and the elderly, and
10. Health and education.

Scheme Implementation

Under this scheme, each city is required to establish a Special Purpose Vehicle (SPV) having flexibility regarding planning, implementation, management and operations. The body will be headed by a full-time CEO, with nominees of central government, state government and ULB (the Urban Local Body) on its Board. The SPV will be a limited company incorporated under the companies act, 2013 at the city-level, in which the state/UT and the Urban Local Body (ULB) will be the promoters having equity shareholding in the ratio 50:50. The private sector or financial institutions could be considered for taking equity stake in the SPV, provided the shareholding pattern of 50:50 of the State/UT and the ULB is maintained and the State/UT and the ULB together have majority shareholding and control of the SPV. Funds provided by the Government of India in the smart cities mission to the SPV will be in the form of tied grant and kept in a separate grant fund.

For the purpose of implementation and monitoring of the projects, the MoUD has also established an apex committee and national mission directorate for national level monitoring, a State Level High Powered Steering Committee (HPSC) for state level monitoring and a smart city advisory forum at the city level. Also, several consulting firms have been assigned to the 100 cities to help them prepare action plans.

The Government of India announced this programme-the 100 smart cities in following 5 rounds:

1st Round winners – Selection of 20 Smart Cities

Ranking	Cities Shortlisted	Name of State/UT
1	Bhubaneshwar	Odisha
2	Pune	Maharashtra
3	Jaipur	Rajasthan
4	Surat	Gujarat
5	Kochi	Kerala
6	Ahmedabad	Gujarat
7	Jabalpur	Madhya Pradesh
8	Vishakhapatnam	Andhra Pradesh
9	Solapur	Maharashtra
10	Davangere	Karnataka
11	Indore	Madhya Pradesh
12	New Delhi	New Delhi
13	Coimbatore	Tamil Nadu
14	Kakinada	Andhra Pradesh
15	Belgaum	Karnataka
16	Udaipur	Rajasthan
17	Guwahati	Assam
18	Chennai	Tamil Nadu
19	Ludhiana	Punjab
20	Bhopal	Madhya Pradesh

2nd Round winners – Selection of 13 Smart Cities

S. No.	Name of City	Name of State/UT
1	Lucknow	Uttar Pradesh
2	Bhagalpur	Bihar
3	New Town, Kolkata*	West Bengal
4	Faridabad	Haryana
5	Chandigarh	Chandigarh
6	Raipur	Chhattisgarh
7	Ranchi	Jharkhand
8	Dharamshala	Himachal Pradesh

9 Warangal	Telangana	
10	Panaji	Goa
11	Agartala	Tripura
12	Imphal	Manipur
13	Port Blair	Andaman & Nicobar

* New Town, Kolkata has withdrawn from the Smart city mission after the Bengal government decided to withdraw all cities from Smart city mission. New Town, Kolkata has rejected Rs.1,000 crore to be given for development of the city as smart city and opted out of the smart city mission.

3rd round winners– Selection of 27 Smart Cities

S. No.	Cities Shortlisted	Name of State/UT
1	Amritsar	Punjab
2	Kalyan	Maharashtra
3	Ujjain	Madhya Pradesh
4	Tirupati	Andhra Pradesh
5	Nagpur	Maharashtra
6	Mangalore	Karnataka
7	Vellore	Tamil Nadu
8	Thane	Maharashtra
9	Gwalior	Madhya Pradesh
10	Agra	Uttar Pradesh
11	Nashik	Maharashtra
12	Rourkela	Odisha
13	Kanpur	Uttar Pradesh
14	Madurai	Tamil Nadu
15	Tumakuru	Karnataka
16	Kota	Rajasthan
17	Thanjavur	Tamil Nadu
18	Namchi	Sikkim
19	Jalandhar	Punjab
20	Shimoga	Karnataka
21	Salem	Tamil Nadu
22	Ajmer	Rajasthan

23	Varanasi	Uttar Pradesh
24	Kohima	Nagaland
25	Hubli-Dharwad	Karnataka
26	Aurangabad	Maharashtra
27	Vadodara	Gujarat

4th round winners – Selection of 30 Smart Cities

S. No.	Name of City	Name of State/UT
1	Thirvananthapuram	Kerala
2	Naya Raipur	Chhattisgarh
3	Rajkot	Gujarat
4	Amaravati	Andhra Pradesh
5	Patna	Bihar
6	Karimnagar	Telengana
7	Muzaffarpur	Bihar
8	Puducherry	Pondicherry
9	Gandhinagar	Gujarat
10	Srinagar	Jammu and Kashmir
11	Sagar	Madhya Pradesh
12	Karnal	Haryana
13	Satna	Madhya Pradesh
14	Bangalore	Karnataka
15	Shimla	Himachal Pradesh
16	Dehradun	Uttarakhand
17	Tiruppur	Tamil Nadu
18	Pimpri Chinchwad	Maharashtra
19	Bilaspur	Chhattisgarh
20	Pasighat	Arunachal Pradesh
21	Jammu	Jammu and Kashmir
22	Dahod	Gujarat
23	Tirunelveli	Tamil Nadu
24	Thoothukudi	Tamil Nadu
25	Tiruchirappalli	Tamil Nadu
26	Jhansi	Uttar Pradesh

27	Aizawl	Mizoram
28	Allahabad	Uttar Pradesh
29	Aligarh	Uttar Pradesh
30	Gangtok	Sikkim

5th round – The Final Chance

20 cities are competing for the last 10 remaining slots. Officially 20 cities are in competition, but 5 cities have withdrawn from the competition, leaving the final round of competition between 15 cities for 10 final slots. In the previous rounds, many cities which are currently competing in the final round failed to score the minimum qualifying mark during evaluation of their bid.

15(out of 20) cities competing in the final round of smart city challenge

S. No.	Name of State/UT	No of Cities	Name of cities in the competition
1	West Bengal	0(3)	Bidhannagar, Durgapur, Haldia
2	Tamil Nadu	2	Erode, Dindigul
3	Maharashtra	1(3)	Navi Mumbai, Greater Mumbai, Amravati
4	Uttar Pradesh	5	Saharanpur, Rai Bareilly, Meerut, Ghaziabad, Rampur
5	Bihar	1	Biharsharif
6	Arunachal Pradesh	1	Itanagar
7	Dadra and Nagar Haveli	1	Silvassa
8	Daman and Diu	1	Diu
9	Lakshadweep	1	Kavaratti
10	Meghalaya	1	Shillong
11	Manipur	1	Imphal

Multiple cities from across India which are not part of the competition in the initial rounds have sent request for inclusion in the final round of the competition, but no decision has been taken on that.

As of Jun 23, 2017 - 90 cities out of planned 100 cities have been selected. But, New Town Kolkata has withdrawn, so 89 cities are part of the Smart city mission.

Many states have exceeded the number of slots allocated to them by winning the challenge ahead of other states. Kerala, Sikkim, Himachal Pradesh, Jammu and Kashmir were allocated one city but have won two cities, Chhattisgarh was allocated two cities but has won three cities, Karnataka and Madhya Pradesh were allocated six cities but has won the seven smart city slots at the end of 4th round. Most of the states have exhausted their quota by 4th round. In the final round around 20 cities will compete for the remaining 10 slots

.CONCLUSION

A normal city is a defined area with boundary limits including both urban and suburban areas. Land area, population, civic facilities, administration with structured portfolios, well defined transport systems, medical and educational facilities and a faster pace of life, all define a city. It contrasts with a town or village in that the above stated facilities are less or nonexistent in them. It is also true that many a time towns grow into cities.

There seems to be no universal definition of what is a smart city. Many parameters define a smart city and these may not be applicable universally; it would vary from country to country and city to city. The level of development planned, resources required or available, a commitment to change and introduce reforms taking the aspirations of its citizens are all necessary requirements in a smart city. So a smart city is the normal city with much more.

Smart city provides the citizens high quality, cost effective service seamlessly and with a minimum use of the resources. The latest technology is used in providing these services. Digital Technology offers most services at the click of the mouse which otherwise involved a physical presence of the resident to receive many of the services such as banking, shopping, government services (payment of taxes, bills, accessing information etc). Smart cities are high on the social indices, employment opportunities and good and transparent governance.

References

- Smart Cities, Mission Statement and Guidelines. Ministry of Urban Development, Government of India, June 2015, Available at : http://smartcities.gov.in/writereaddata/SmartCityGuidelines.pdf
- http://articles.economictimes.indiatimes.com/2015-08-27/news/65929187_1_jammu-and-kashmir-12-cities-urban-development-venkaiah-naidu
- http://india.gov.in/spotlight/smart-cities-mission-step-towards-smart-india
- Mission Statement and Guidelines - Smart Cities" (PDF). Ministry of Urban Development, GOI. Retrieved 1 February 2016
- List of 98 Smart Cities, The Times of India
- "End of the road for smart cities in Karnataka? - Times of India". The Times of India. Retrieved 2017-06-25.
- "Smart City Mission: 30 more smart cities announced, ten spots remain". www.businesstoday.in. Retrieved 2017-06-30.
- "Smart city challenge - Six things you mustknow about smart city". http://niti.gov.in.
- http://www.moneycontrol.com/news/business/personal-finance-business/smart-citiesfutureliving india-1476271.html

Indo-tibetan Cultural Contacts

Himanshu Tiwari*

For centuries past the land of snow, also known as Tibet had flourished as a repository of an ancient culture thriving under the silence and solitude of vast firmament away the tumult and turmoil of the world. With the contact with India, Tibet came out of isolation and entered the history of Asia as a political and military power of the first order. Furthermore, it widened cultural horizons and the introduced new ways of living and thinking in itself and elsewhere.

Though Tibet had early relations with central Asia and China and both of them contributed something to her peculiar civilisation. The greatest contribution received by Tibet was from India, especially with regard to her religion, literature and art.

Legendary accounts also establish points of contacts between India and Tibet in the past, *Pandit Sherab Gochai* in his tribute to Indian culture mentions that the Tibetan race originated from the Indian king *Rupati* of Kauravas army fled to Tibet in guise of a woman after being defeated in a great battle with the famous Pandavas. The King *Rupati* along with the 1000 followers settled in Tibet.

Again the first king of Tibet *Nayanthri-Tsanpo* is said to have been son of the King of Koshal, *Prasenjit*. He was the fifth son of the king. This story also describes in the B-uta. *Buston-Rinpo-chhe* also suggests that the king of Tibet named *Nayanthri-Tsanpo* was an Indian.[1]

The message of the peace and the *Dharma* was taken to Tibet by Buddhist missionaries enlightening the people with the rich heritage of India. In spreading Indian culture in Tibet, Indian tourists acted with broad vision. The process of religious and the cultural expansion continued for a long time. Except for a few happening the expansion always remained a peaceful one. The Indian Kings, missionaries, monks, artist, sculptures, traders as well as physicians, who went to Tibet, never felt that they were in a foreign land though the climate and geography of the two countries differ. The Tibetans were kind, gentle, honest, open, cheerful, humorous and intelligent people.

---

*Research Scholar, Deptt. of Ancient History, Archaeology and Culture, DDU Gorakhpur University, Gorakhpur.

The close contact of India with this country was not due to desire of Indians to spread trade and the religion in the region but the ardent desire on the part of the Tibetans to accept the Indian way of life and the Indian culture.

Buddhism played an important role in the strengthening the ties of friendship and mutual understanding between these two countries. In the beginning Buddhist monks suffered untold miseries and difficulties in Tibet. Later things improved.[3] As a matter of fact Buddhism was introduced in Tibet by the memorable efforts of in the first half of the 7th century A.D. and the 2nd half of the 8th century A.D. respectively. Before Buddhism reached there through *S'antaraksita, Kamala'sila* and the *Padamsahhava*, it had undergone in India itself a profound evolution. The three tripitak viz. *Vinaya, Sutra* and *Abhidhammapitak* had been compiled. The split between the *Hin-ay-ana* and *Mah-ay-ana* had taken place and the assimilation of the elements of the yoga school of Hindu Philosophy into Buddhism had led to the growth of the Yog-ach-arya school. *Mah-ay-ana* Buddhism had led to the production of Buddhist schools like *Tantry-ana* and *Mantray-ana*. It would, therefore, be seen that the form that Indian Buddhism took in Tibet in 7th and 8th centuries A.D. was highly interesting.

The contribution of the great Indian saints to the major orders of the Tibet and Buddhism can never be forgotten. The founder of the Nying-ma was *Padmasambhava* who came to Tibet from *Urgyan*, north-west India in the 2nd half of 8th century A.D. Lamaistic hierarchy in the Karma sect is directly traced back to *Tilop-a* and *Norp-a* in India. The founder of Kadam-pa was *Atisa* a scholar of philosophy fromthe Vikramshila University of India who arrived in Tibet in 1038 A.D. *Atisa's* disciple *Dromton*, formed for the first time the order of the priests and monks which came to be known as *Kadam-pa* and was later on merged in the *Tsong-khapa's* sect *Gelugs*. It is believed that lamaist hierarchy stands with *Dromton*, which had its root in India.

Tibetans shaped their political and the social institutions according to the tenets of Buddhism which contained a broad social philosophy. Around this philosophy the Tibetan developed their institutions and the system to suit the needs of the people. Gradually religion came to pervade all aspects and the layers of life in Tibet. As a result the social life of the people was elevated from the state of barbarism to a state of unsurpassed spiritual culture.

Regarding Tibetan script, it is a well-known fact that it has the impact of Indian script. This was but natural as Sanskrit had a great impact on Tibetan language and literature. The literature of Tibet was considerably influenced by Indian literary model. The Tibetan books, though made of paper didn't follow the scroll format of China but adopted the Palm leaf format of India. *Thonmi-Sambhota*, a minister of *Srong-Tsen-Gampo* arrived in India in 632 A.D. and studied Sanskrit under the able-guidance of *Pandit Dev Vidya Sinha* and *Lipikara*. After his return to his country he devised the Tibetan alphabets on the model of *Brahmi script*. He made Tibetan grammar more or less on the lines of *Panini*. The grammar

framed by *Thonmi* contained 8 chapters; but tragically a sizable part of it was destroyed and burnt during regime of *Lang-dar-ma*, a reneged of Buddhism and a staunch exponent of the native *Dharma* called *Bon*. Only the first and the sixth chapter, namely, *Trinshad* and the *Lingawatar* were saved and they have been handed down to the Tibetan posterity.

Thonmi also made the first Tibetan translation from Buddhist text in Sanskrit and the historic tradition of literal and the faithful translation begins with the inventor of the script. The book for the first time translated from Sanskrit into the Tibetan was a Sutra named *Rantmegha*. The translation was done in a manner unique in the history of translation all over the world. It was a literal word for word translation and the same time not exotic to Tibetan literature or culture.[3] Tibetan syntax being strictly observed, the result has been astounding. If the Tibetan rendering of any Sanskrit work is retranslated in the Sanskrit, it leads to an almost complete restoration of the original. This has not only helped the correct reading of many obscure Sanskrit works lost in India. Numerous works were done during 7th Century A.D. to 17th Century A.D.

The Indian Science of dialectics, including probes into consciousness and matter, flourished in *Sakya*, Drepung monastery.

Karandvyuh Sutra, Ratnamegha Sutra and *Kemashatak* were translated. According to *Alexander Csmadecoreos* the *Suvarna Prabha Sottama Sutra* was translated by Jin Mitra, Sila Indra Bodhi and Bandeye-She-de during 730 and 802 A.D. with the help of Dhramakosa. S'antaraksita translated the *Hetuchakra* of *Dinganaga*. During Kamalsila's time, *Vimala Mitra, Buddha Gupta, Shantigarbha* and *Visuddha Sinha*, in collaboration with Tibetan Lo-Tze like Dharmaloka, Go-rin-chen-de and S'akyaprabha, rendered several Buddhist's text into Tibetan.

The noted Tibetan Lotza-wa, Rin Chon Sang-po (957-1055) A.D. with the help of Pandit Padmakar Gupta, Buddha Pal and Kamal Gupta translated a number of philosophical and tantric treatises such as *Haribhadra, Abhi-samaya Alankara-loka, Astanga Hridya Tamhita* and *Sumana Avadana* with the help of Rinchen Sang-po and others, StisaBhavayiveka's *Madhyamika Ratanapradip*. The Kala chakra *Jyotisi* was also translated during *Atisa's* time.

The Buddha *Kapaltantra* was translated by Sa-kaya –ye-she with the help of Go-khung-pa. During the time of King-Ye-She and Vibhuti Chandra was invited by Tibetan translator Pad-Mab-Ru-Tsi for the translation of Sanskrit text. *Nyaya-bindu* of Dharamkirti was translated by Ngo-Laden-Sherab, Ye-She-Lo-Do translated *ManjushriMula Tantra*. The birth of another great Tibetan Lo-Tsa-Wa-Pa-TsabNyi M-adrag corresponded with the death of Rinchhan Sang-po. He translated *Chatu-Sataka* of Aryadeva, *M-adhy-amika Avai-ara Bh-asya* of Nagarjuna and *Lakshanas Anusarini* of Purana Vardhana during the Sakya period in Tibet (1147-1216 A.D.). *NyayaParavesha* and *Pranjaya Pradeep Mala* were translated.

The 13th Century saw another great genius, Buston Rin Chhan dup who translated the works of *Bar's Kirti* and others. His greatest contribution to literature was, however, the review and the arrangements of hitherto scattered translations into the two monumental Buddhist collections, the *Kan-gyur* and *Tan-gyur* and preparation and index for both.[4]

The *Loknanda Nataka* of Chandragomi and *Meghd-uta* of Kalidasa were translated sometime in the 14th century A.D. From available records it appears that the translation activity was carried on till the 17th century A.D.[5] Besides, there were other translators too. The translated literature preserved the manners, customs, opinions, knowledge, ignorance superstitions, hopes and the fears of India. Some of Sanskrit originals of these translations have lost or destroyed due to time and historical factors. Consequently, indo-logical study as a whole will be beneficial if we go back to the Tibetans sources and not only to Sanskrit sources.

Reviewing the entire Tibetan literature we can say that India has contributed to the thought of Tibet with the help of religious teachers as well as others scholars in the various field of learning.

In the field of astrology the word (*Kar-rtsi*) refers to the Indian system of astrology. The hexagonical calculation of the cycle of years which is no longer prevalent in India was carried from India according to *Kalchakra Tantra* by 11th century A.D.

The area of art and architecture is not remain unaffected by Indian art. The history of Tibetan Buddhist art is closely connected with the history of that religion itself. It is said very confidently that first artists who painted frescoes and modelled plastic figures of the Gods were not Tibetans, but Indians, who accompanied the first apostles that introduced the new religion in the land of snow.[6] This statement is also confirmed by the Taranath, the Tibet tourist.

The images of gold. silver, copper, bronze, stone, clay in the temples and monasteries fall into various categories of the *Buddha, Bodhisattvas, Taras, Dakinis, Yidams of Dharmapalas*. Historical personages and non-human types etc. indicate that the Tibetan art contains strong influences and echoes of the dying Indian culture of the period of the *Pala dynasty* (middle of the 8th to the end of the 12th century AD) which temporarily was even politically dependent on Tibet.

The oldest Buddhist temple was built approximately in the middle of the 7th century AD e.g. *the Rivo Kang Cathedral* in Lhaso, founded by King Srong–tsen–gam–po. The oldest monastery is *Bsam–ya* founded by Padmasambhava in about 770 AD. The inner layout of most of the temples in Tibet follows the Indian tradition.

Some monasteries keep their sacred writings in the *St–upas*. Sometime eight such *Stupas* can be found standing in a row to honour the eight most important events in Buddha's life and the eight Indian *St–upas* in which the Buddha's ashes were placed after cremation. Tibetan *St–upas* bear unmistakable signs, that they were influenced by their Indian

counterpart.[7]

In painting too, the contours of the figures were all out lined in Indian ink. The painting of a picture ended with a consecration, for which the Lama wrote on the back in Indian ink.

Most of the teachers of Tibetan painting go back to Indian traditions of two different schools, the *Bengali-Nepalese schools* and the *Kashmiri school*. The oldest Tibetan frescoes bear strong resemblances to cave drawings of Ajanta. This applies not only to the types of Gods but also to their entire content. Tibetan paintings have huge variety of themes. Scenes from the life of the Buddha, taken from the *J-atakas*, are also reminiscent of the Ajanta paintings of India, through the direct inspiration to the Tibetans came not from Ajanta but from the art of the *Pala king of Bengal*.[8]

Some scholars have suggested that China has exercised her influence on paintings of Tibet. There is no doubt at all that the Chinese influences remain restricted rather to lesser details of an external nature. The result of Chinese influences can be seen in fantastic landscapes in the background with the rocks, rivers, animals, and clouds. All these influences were inextricably mixed up. An elephant, pointed in Chinese manner, standing on Chinese mountain and rocks on which Indian trees and bushes are growing is a familiar spectacle. Floating on Chinese clouds holding Chinese peonies in their hands, instead of Indian lotus flowers are quite common.

Tibetan sculpture is not uninfluenced by the traditions of the Indian arts. Significant feature of this are the elegant, soft modelling and the expressions of beatitude. A very attractive and the impressive kind of diminutive Tibetan sculpture can be found in the tiny relic called *Tsa-Tas*. They represent minute figures of various popular divinities or saints and even in those small sometimes microscopic dimensions. They are very fine and precisely modelled down to the smallest details. The custom of making such minute reliefs came to Tibet from India where they were they used as a souvenirs of pilgrimages to the sacred places of Buddhism. They are moulded in the wood or metals casts. The first little mould of this kind used in the Tibet was probably imported from India.

The most common decorative elements are lotus flowers, heads of monsters, serpent Gods and heads of monsters with elephant trunks, all these are from ancient Indian motifs. Tibet art did not grow out of Indian art merely superficially, or by taking over large sections of its iconography. It has to it a mother daughter relation, the one gave life to the other and they have common features, yet are independent personalities. The Chinese influences were only peripheral, without affecting the basis itself. The Chinese absorbed the Indian influences into their native culture, where as in Tibet the Indian roots remained much more obvious and therefore in many ways, Tibetan works of art differ comparatively little from their patterns.

The social customs and behaviour in the society were also influenced by India to

some extent. In the funeral ceremony they practice all the three forms enjoined by the Hindu scriptures such as burial underground, cremation of the rebirth after death also exists as Indian believe.

Like India monogamy, polygamy and polyandry all were in vogue. But monogamy was more practised than the other two. An ideal king *Stong-tsen-gampo* and many other wealthy men in ancient Tibet and the king *Dasaratha* and others in early days in ancient days practised polygamy. *Draupdi* in the Mahabharta and the *Jatila* belonging to the Gautama lineage are the examples of a polyandrical system in ancient India. Tibetan polyandry has been mentioned almost in every reference to that country.

Horoscopical study also matters much in settling marriage in both the societies. Among the eight forms of Indian marriage, the *Arsha* form in which the father gives his daughter in marriage after receiving a cow or bull from the bridegroom, according to the requirements of *Dharma* has more or less a resemblance to the Tibetan marriage system as the bride's mother is paid a certain sum of money commonly known as *Nu-rin* (breast price).

Consequently we have to look more to India than to any part of the world even including China for the background of Tibetan culture and history. Simultaneously it must not be forgotten that whatever was borrowed from India, in the name of culture and the religion was adopted to suit local conditions and the native Tibetan character and mentality, with the result that remained.

Reference:

1- Singh Raghunath, "Let the world wake up" National Integration-Tibet Issue, 1964, p-9.

2- Joshi, Lalmani – Studies in the Buddhist Culture of India, 1977, p-137.

3- Bagchi, P.C. – India and Central Asia, Kolkata, 1966.

4- Eliot, Charles – Hinduism and Buddhism, Reprint in the Great Britain, 1968.

5- Waddel – Buddhism of Tibet, p- 45.

6- Banerjee, A.C. – Buddhism in India and Abroad, Kolkata, 1973, p- 22.

7- Translated book – The brief history of Tibet, Dharmashala, 2002, p-5,8,9.

8- Banerjee, A.C. – Buddhism in India and Abroad, Kolkata, 1973, p- 22.

"Startup India : Opportunities and Challenges"

Ram Surendra Yadav*
Brijvas Kushwaha**

Abstract : Start up India is a revolutionary scheme that provides a way to success for deserving entrepreneurs having innovative ideas and more capability but due to financial problems or other similar issues is unable to do so. Government of India in the leadership of Prime Minister Shri Narendra Modi has decided to start a nation wise program as Start up India. Further, the government will give them support to make sure they can implement their ideas and grow. Success of this scheme will eventually make India, a better economy and a strong nation. In current business scenario, entrepreneurship has been considered as the propensity of mind to take calculated risk with confidence to achieve predetermined business objectives. So, entrepreneurship is es-sential for the vitality of any economy, developed or developing countries. Entrepreneurs create new businesses, generating jobs for themselves and those they employ. In many cases, entrepreneurial activity increases competition and, with technological or operational changes, it can increase productivity as well. Entrepreneurs give security to other people and also involve in social welfare activities. Entrepreneurial activity leads to economic growth and helps to reduce poverty, create a middle class, and foster stability. This paper is an attempt to study the future prospect of Startup India and its impact on Indian economic development. The study also aims to know the opportunities and challenges for startup India in current Indian scenario.

Keywords : Start up India, entrepreneurship, economic development, opportunities and challenges.

Introduction

The economic development of a country depends on its industrial development. The industrial development is based on the entrepreneurial competencies of the people. India is currently one of the fastest growing economies in the world. It is one of the biggest markets for Global corporations. Most of the developed countries interact with Indian market to get a permanent market share. It becomes essential for

* Assistant Professor, Govt. P.G. College, Musafirkhana, Amethi (U.P.)
Mob. No. : 9450476013, Email Id : yrsurendra@gmail.com
** Research Scholar, Department of Commerce, DDU Gorakhpur University, Gorakhpur (U.P.)
Mob. No. : 9918814252, Email Id : brijvas90@gmail.com

Indian Government to promote entrepreneurship and business activities in India.

Government has framed some policies to promote entrepreneur development in the country. Start up India is the current government initiative for the same purpose. Startup India is intended to build a strong eco-system for nurturing innovation and Startups in the country that will drive sustainable economic growth and generate large scale employment opportunities.

The Government through this initiative aims to empower Startups to grow through innovation and design. In order to meet the objectives of the initiative, Government of India is announcing this Action Plan that addresses all aspects of the Startup ecosystem.

With this scheme, Government hopes to accelerate spreading of the startup movement from Information technology sector to all the industrial sectors including agriculture, manufacturing, social sector, healthcare, education etc. Government also desires to promote this scheme from urban areas to semi-urban and rural areas. It will work also for rural development. Rural India's version of Startup India was named the Deen Dayal Upadhyay Swaniyojan Yojana.

Start up India - At a glance

The Government of India launched the full action plan of Start-up India on 16 January 2016 in New Delhi. The Startup India has connected to the country's IITs, IIMs, Central universities and NITs through various incubators. Incubators are institutions which help entrepreneurs to develop their ideas to a point where investors can see the viability of the business model. Incubators usually provide hard infrastructure i.e. plug and play office space and services such as mentoring, advisory, access to technology experts and potentially seed funding. Incubators could be run by government, private sector and educational institutions. Incubators usually charge a small fee from the entrepreneur and could take a stake in the venture. The incubation facilities and specific courses in entrepreneurship, offered by some reputed colleges and institutions in the country where the students can also develop the essential business management skills and systems that enable them to grow. Oracle on 12 February 2016 announced to set up nine incubation centers in Bangalore, Chennai, Hyderabad, Trivandrum, Mumbai, Pune, Vijayawada, Gurgaun and Noida. Wherever there are youth, they will be linked through live connectivity. Start-up India would not be limited to only some cities but spread to every nook and corner of the country.

The objective of this ambitious programme is to promoting bank financing

for start-up ventures and offer incentives to boost entrepreneurship and job creation. The MUDRA Bank, a new institution set up for development and refinancing activities relating to micro units with a refinance Fund of ₹ 200 billion. The Startup India initiative is also aimed at promoting entrepreneurship among Scheduled Caste/ Scheduled Tribes, women communities. Softbank of Japan which has invested US$2 billion into Indian startups. The Japanese firm had pledged the total investments at US$10 billion. Google declared to launch a startup, based on the highest votes in which the top three startups will be allowed to join the next Google Launch pad Week, and the final winner could win an amount of US$100,000 in Google cloud credits.

Currently, five states of the Nation like Andhra Pradesh, Telangana, Karnataka, and Kerala have shown their great performance in terms of their policies implementation for supporting Startup India programme. Bengaluru is a metro city of Karnataka, is known as the Silicon Valley of India. Kerala is well known for the government's startup policy, 'Kerala IT Mission', which focuses on fetching Rs.50 billion in investments for the State's startup ecosystem. It also made India's first telecom incubator Startup village in 2012. Telangana has launched the largest incubation center in India as 'T-hub'. Andhra Pradesh has also established a Technological Research and Innovation Park as a Research and Development laboratory. Andhra Pradesh has also created a fund called as 'Initial Innovation Fund' of Rs 100 crores for entrepreneurs. The various key points preferred in Startup India programme are as follow:

- A self certification system has been started to reduce the regulatory burden on Startups. This self-certification will apply to laws like payment of gratuity, contract labour, employees' provident fund, water and air pollution acts.
- A dedicated web portal and mobile app is developed to resolve queries and provide handholding support to startups hub. It is a single point of contact for the entire startup ecosystem to enable knowledge exchange and access to funding.
- E-registration facility to encourage entrepreneurship.
- For patent protection, the government of India is also working on a legal support for fast-tracking patent examination at lower costs. It will promote awareness and adoption of Intellectual Property Rights (IPRs) by startups.
- A startup would not be required to obtain a certificate of eligibility from the

Inter-Ministerial Board of Department of Industrial Policy and Promotion to availing benefits related Intellectual Property Rights.

- The Government of India has been established a 'fund of funds' of Rs. 10,000 crores over four years for startups which will be governed by SIDBI and the Life Corporation of India will be a co-investor in this fund.
- Income tax exemption will be provided to startups for three years in a block of five years, if they are established between 1st April 2016 to 31st March 2019. To take advantage of tax exemption benefits must obtain a certificate of eligibility from inter-ministerial board of Department of Industrial Policy and Promotion.
- Exemption from capital gain tax for 3 years. Currently, investments by venture capital funds in startups are exempt from this law. Now, the same is being extended to investments made by incubators in startups.
- Innovation focused programme will be start for 10 lakhs students from 5 lakhs schools at initial stage to develop their innovation and management skill.
- For promoting entrepreneurship in biotechnology five new bio clusters, 50 new bio incubators, 150 technology transfer offices and 20 bio connect offices will be established.
- No initial inspection will be done during the first 3 years for startups.
- The application of patent filed by the startups, 80 percent of fees will be reduced.
- The credit guarantee fund for startups would help flow of venture debt from the banking system to startups by standing guarantee against risks.
- Income tax exemption to startups announced for three years, if they are incorporated between 1st April 2016 and 31st March 2019. To avail these benefits one must get a Certificate of Eligibility from the Inter-Ministerial Board of DIPP such as, startups must be a private limited Company or limited liability partnership or partnership firm and incorporation should not be more than 5 years and also annual turnover should not exceed Rs. 25 Crores.
- Relaxed norms on prior experience and turnover for public procurement for micro and small enterprises have been provisioned in the Procurement Policy of Ministry of Micro Small and Medium Enterprises.

- 7 proposals for Research Parks, 16 proposals for TBIs and 13 proposals for Startup centers have been recommended by the National Expert Advisory Committee (NEAC) formed by Ministry of Human Resource Development.
- Seven new research parks will be established by the Government, in which six in IITs and one in IISc with an initial investment of Rs 100 crore each.
- Public private partnership (PPP) model is also included. PPP model being considered for 35 new incubators, 31 innovation centers at national institutes
- Department of industrial policy and promotion will write to top companies to request them to support the initiative by setting up new incubators or scale up existing incubators in collaboration with educational institutes.
- Special arrangement for female applicants to promote women empowerment in India.
- Atal Innovation Mission (AIM) has been started for the people to develop their entrepreneurial and management skills.
- Faster and easy exit policy for startups.

Objectives

1. To study the policy of startup India scheme
2. To study the future prospect of startup scheme on economic development
3. To understand the opportunities and challenges of startup India.

Opportunities for startup in India

The entrepreneur is one who is willing to bear the risk of a new venture if there is a significant chance for profit. Others emphasize the entrepreneur's role as an innovator who markets his innovation. Still other economists say that entrepre-neurs develop new goods or processes that the market demands and are not currently being supplied. Many entrepreneurs struggle to find the capital to start a new business.

There are many sources to consider, so it is important for an entrepreneur to fully explore all financing options. They also should apply for funds from a wide variety of sources such as personal savings, from friends and family, borrowings from commercial banks and secured loan from other lending institutions. However, if an entrepreneur has money in a bank savings account, they can usually borrow

against that money. If an entrepreneur has good credit, it is also relatively easy to get a personal loan from a bank. These loans tend to be short-term and not as large as business loans. Venture investors are a major source of funding for start-ups that have a strong potential for growth. However, venture investors insist on retaining part ownership in new businesses that they fund. Start up India offer to encourage small and medium-sized businesses.

Governments use taxes to raise money. But taxes increase the cost of the activity taxed, discouraging it somewhat. Therefore, policymakers need to balance the goals of raising revenue and pro-moting entrepreneurship. Corporate tax rate reductions, tax credits for investment or education, and tax deductions for businesses are all proven methods for encouraging business growth.

Challenges for startup in India

Every Government policy targets economic development in a country. Start up India scheme of Government also framed for the ultimate objective of economic development. But, its success in Indian economy has some big challenges. These challenges can be classified as under:

- **To promote Entrepreneurship :** Entrepreneurship and startups are only a recent phenomenon in the country. It is only in the last decade and half that people in the country have moved from being job seekers to job creators. Governments can also show that they value private enterprise by making it easier for individuals to learn business skills and by honoring entrepreneurs and small business owners. Doing a startup is tough and every country sees more failures than success. More often than not an entrepreneur needs to be prepared to face failures and unprecedented hardship. However, culturally we are not groomed to fail and failure is frowned upon. Is society changing? What groups have unfulfilled needs? What about people's perceptions? Entrepreneurship thrives on celebrations and a society that fails to appreciate business failures stifles innovation and creativity even before it can start. A startup failing has to be OK as failures often teach an entrepreneur, what to do and what not to do.
- **Role of advisors for deserving Entrepreneur :** Startup is precarious and often a lonely journey. Having a brilliant idea is different from making that idea a business success. For a startup, it is very important to have mentors who have been through a similar process of starting or have business

experience. A great mentor is often what separates success from failure by providing valuable inputs. However, there is no formal mechanism to mentor startups in the country. Every mentoring that happens is on an adhoc basis. A startup that has raised funds can count the investors for some form of mentoring, but honest, unbiased, good business mentors are far and few in between. For startups finding a good mentor is often an uphill task.

- **Interact with Government Policies :** Government is the single largest enabler for the entrepreneurial ecosystem. Government's role in ease of doing business and helping companies start is vital to ensuring success. The latest World Bank Ease of Doing Business (out of 189 economies) ranks India at 142. It is difficult to start a business in India as legal rules and procedure takes about 30 days to comply compared to just 9 days in OECD countries. The government's role has so far been limited to giving out grants and loans, but without an effective, enabling environment, implementation is far off the target. In this regard it will be interesting to see the proportion of the recently announced Startup Fund in this year's budget. For startups to thrive and succeed, the government has a lot to do and understand the importance of entrepreneurship in economic development.

- **Availability of skilled manpower** : The economy has been in a flux and along with the world economy the heady days of high growth are long gone. In an uncertain economy where one is not sure about demand, for a startup, it is particularly difficult to make correct estimates on the number of employees needed. This, however, is the minor problem where the biggest issue is about finding adequate skilled manpower. National Skill Development Corporation (NSDC) has mandated to skill 150 million Indians by 2022. For a startup, it is particularly difficult to attract and hire talent and skilled workers. A startup often cannot match the salaries drawn at larger companies nor is a job at a startup seen as a steady one. This means startups face severe hiring challenges and at times have to settle for the next best option.

- **Financial Resources :** Starting a business takes money. There are re-quired procedures and fees as well as the initial costs of the new enterprise itself. Therefore, the most important activity a govern-ment can undertake is to assist potential entrepreneurs with finding money for start-ups. Capital and access to capital has been a perennial problem for startups. While, of late angel investors, venture capital and private equity have brought succor to

some extent, a large number of startups still grapple to raise funds from institutional setup. Funding challenge is not merely limited to seed rounds, but also for vital Series A and B rounds. For a startup looking to scale, it is still very hard to raise rounds to scale as the number of investors that write larger cheques in India are very limited in number.

Future prospects of startup in India

India is currently one of the biggest economies of the world. It has enormous opportunities for entrepreneurs and industrialists. So, an effective entrepreneurship development programme is required to promote skills and entrepreneurial qualities among individuals in India.

The country's economic policy environment must be favorable for organizations to achieve efficiencies in today's global market. It should enable the entrepreneurs to provide a magical touch to an organization, whether in public or private or joint sector, in achieving speed, flexibility, innovativeness, and a strong sense of self-determination. They bring a new vision to the forefront of economic growth of a country. The study of entrepreneurship has relevance today, not only because it helps entrepreneurs better fulfill their personal needs but because of the economic contribution of the new ventures. Innovation is the essence of start up. More than increasing national income by creating new jobs, entrepreneurship acts as a positive force in economic growth by serving as the bridge between innovation and market place.

It has been concluded that a system is required through Start up India initiatives which would not only promote entrepreneurs particularly in the manufacturing sector but also the micro units would be able to graduate faster as small and medium units. If this objective is achieved the goal of job realization through self-employment would be complete as self-employment is the answer to providing jobs to the huge proportion of population in the economically active age group. This process would be fast tracked by the programmes well supported by the Start up India scheme which would facilitate availability of skilled manpower as entrepreneurs complain about skill mismatch. Given that startups are emerging as major job creators, both the Central and State Government need to put in place appropriate policy framework for the start-ups. Both the government has to make joint efforts to make the policy successful and to make the status of India as Job creators instead of Job seekers.

References :

- Prof. Gurumoorthy & Prof. Suresh Bhagavatula, (2016), Entrepreneurship and Start-Up Activities at Indian Higher Education Institutions, Danish Agency for Science, Technology and Innovation IDCK Analysis No. 3.
- Ms. Sunita Sanghi & Ms. A. Srija, (2016). Entrepreneurship Development in India-the Focus on Start-ups/special article/laghu udyog samachar.
- www.startupindia.gov.in/news/status Report, September 18, 2016
- www.imesofindia.indiatimes.com/India/January-16/article
- www.financialexpress.com/article/economy/live-pm-narendra-modi-to-unveil-startup-india-today
- www.hindustantimes.com/business/cabinet-clears-stand-up-india-scheme-for-women-and-sc-st.
- www.inc.com/tess-townsend/india-narendra-modi-visit-silicon-valley
- Times of India Economic Times. Retrieved, June 15, 2016
- www.livemint.com/Indust/After-Digital-India-Oracle-seeks-to-participate-in-Make-in.
- www.thehindu.com/todays-paper/tp-national/tp-kerala/startup-mission-to-ink-pact-for-innovation-zone/article8060413.ece
- www.business-standard.com/article/news-ani/pm-modi-to-launch-startup-india-campaign-today
- www.startupindia.gov.in/news/status Report, 18 September 2016
- www.pmjandhanyojana.co.in/start-up-india-stand-up-india-scheme

Indo-Nepal Economic Relationship in 21st Century

Manjeshwar*

The Federal Democratic Republic of Nepal has traditionally maintained a non-aligned policy and enjoys friendly relations with neighboring countries, especially India and China. As a small, landlocked country wedged between two larger and for stronger powers, Nepal maintains good relations with both India and China. Constitutionally, Foreign Policy is to be guided by "the principles of the United Nations Charter, nonalignment, Panchsheel [five principles of peaceful coexistence], International Low and the value of World Peace". In practice, foreign policy has not been directed toward projecting influence internationally but toward preserving autonomy and addressing domestic economic and security issues.

India's most substantive international relations are perhaps with international economic institutions, such as the Asian Development Bank, the International Monetary Fund, the World Bank, and the South Asian Association for Regional Cooperation, a multilateral economic development association. Nepal also has strong bilateral relations with major providers of economic and military aid, such as France, Germany, Japan, Switzerland, the United States, and particularly and United Kingdom, with whom military ties date to the nineteenth century. The country also maintains strong political relations with India and China, usually attempting to balance one against the other. However, relations with India are fraught with trade and border disputes and Indian suspicions that Nepalese and Pakistan rebels use Nepal as a haven to attack India. Nepal has played an active role in the formation of economic development oriented South Asian Association for Regional Cooperation (SAARC) and is the site of its secretarial. On international issues, Nepal follows a nonaligned policy and often votes with the Non-Aligned Movement in the United Nations. Nepal participates in a number of UN specialized agencies and is a member of the World Bank, International Monetary Fund, Colombo Plan, and the Asian Development Bank.

Indo – Nepal Relations:

Relations between India and Nepal are close yet fraught with difficulties stemming from Geography, Economics, the problems in – Recent in big power – small power relations, and common ethnic, linguistic and cultural identities that develop the two countries borders.

*Asst. Professor, Dept. of Economics, Maharana Pratap P.G. College, Jungle Dhusan, Gorakhpur.

New Delhi and Kathmandu initiated their intertwined relationship with the 1950 Indo-Nepal Treaty of Peace and Friendship and accompanying letters that defined security relations between the two countries, and an agreement shall governing both bilateral trade and trade transiting Indian sail. The 1950 treaty and letters stated that "neither government shall tolerate any threat to the security of the other by a foreign aggressor" and obligated both sides "to inform each other of any serious friction or misunderstanding with any neighboring state likely to cause any breach in the friendly relations subsisting between the two governments". These accords cemented a "special relationship" between India and Nepal that granted Nepal Preferential economic treatment and provided Nepali's in India the same economic and educational opportunities as Indian Wizens.

Because of strong cultural, religious, linguistic, and economic ties, Nepal's association with India traditionally has been close. India and Nepal restored trade relations in 1990, after a break caused by India security concern over Nepal relations. A bilateral trade treaty was signed in 1996. Citizens of the two countries can travel to the other without visa requirements. Nepalese citizens are permitted to stay and work in India freely. Nepal's economy has also been enormously benefited from the surge in India's economy.

21st Century:

In 2005, after king Gyanendra took over, Nepali's relations with India soured. However, after the restoration of democracy, in 2008, Prachanda, the Prime Minister of Nepal, visited India, in September 2008. He spoke about a new dawn, in the bilateral relations, between the two countries. He said, "I am going back home that a new era has dawned. Time has come to effect a revolutionary change in bilateral relations. On behalf of a new government, I assure you that we are committed to fresh start." He met India's Prime Minister, Manmohan Singh, and Foreign Minister, Pramab mukhanrgee. He asked India to help Nepal frame a new constitution, and to invest in Nepal's infrastructure, and its tourism industry.

In 2008, Indo-Nepal relations got a further boost with an agreement to resume water tools after a four year hiatus. The Nepali's Water Resources Secretary Sankar Prashad Koirala said the Nepal-India joint committee on Water Resources meets decided to start the construction of preached Kosi ambankment after the water level goes down. During the Nepal P.M. visit to New Delhi in September the two Prime Minister expressed satisfaction at the age – old close, cordial and extensive relationship between their states and expressed their support and cooperation to further consolidate the relationship.

The two issued a 22 point statement highlighting the need to review, adjust and update the1950 Treaty of Peace and Friendship, amongst other statement. India would also provide a credit line of up to 150 crore rupees to Nepal to insure uninterrupted supplies of petroleum products, as well as left bans on the export of rice, wheat, maize, sugar and sugar rose for quantities agreed to with Nepal. India would also provide 20

crore as immediate flood relief. In return, Nepal will take measures for the "promotion of investor friendly, enabling business environment to encourage Indian Investments in Nepal.

Furthermore, a three-tire mechanism at the level of Ministerial, Secretary and technical levels will be built to push forward discussions on the development of water resources between the two sides. Practically India acknowledged a willingness to promote efforts towards peace in Nepal. Indian External Affairs Minister Pranab Mukharjee promised The Nepali Prime Minister Prachanda that he would "extend all possible help for peace and development".

India-Nepal relationship is shaped by the countries old Social-Cultural, historical and geographic linkages. Extensive people to people contacts permit all aspects of the lives of the people of India and Nepal and transcend borders and governments. Welfare of the people of the two countries is interlinked and developments in one country in variably have an impact on the other. Few other Sovereign states in the world can take pride in a relationship as wide ranging and multifaceted as that shared between India and Nepal.

The visit of Prime Minister Hon'ble Mr. G. P. Koirala to India one month after the restoration of multi-party democracy in Nepal saw India extend a comprehensive package of assistance to help Nepal tide over immediate financial needs and support peace, democracy and stability. A comprehensive economic package worth Rs. 1000 crores was announced during the visit. A soft credit line of USD 100 million for infrastructure development projects was extended, and outstanding dues on defense purchases worth NRs. 1.6 billion waived. Government of India also agreed to doubling the number of GOI scholarships for Nepali's students and to supply of 25,000 metric tonnes of fertilizers to Nepal at subsidized prices.

Prime Minister Hon'ble Pushpa Kamal Dahal Prachanda paid on official visit to India from 14-17 September 2008, and met President, Vice President, Prime Minister and External Affairs Minister as well as chairperson of UPA and the Leader of Opposition. A joint press statement was issued at the conclusion of the visit, reiterating the special features of the bilateral relationship and committing both side to work towards further improving relations. India agreed to implement the Naumure Hydro-Electric project on Rapti River besides the Rs. 20 crores assistance for Koshi breach relief. Credit of upto Rs. 150 crores was also provided to GON to ensure uninterrupted supplies of Petroleum products. We have also permitted export of 10,000 tonnes of wheat and 15,000 tonnes of rice to Nepal, along with lighting of ban on other food items. P.M. Prachanda visited India again November 12-15, 2008 to attend the BIMSTEC Summit.

The Foreign Minister of Nepal Hon'ble Mrs. Sujata Koirala visited India from 5-10 August 2009 where she held fruitful discussions with their counterparts. Foreign Secretary of India visited Nepal 14-15 September 2009 to exchange views on the future course of cooperation between the two countries.

In keeping with the tradition of regular high-level exchange of visits between India and Nepal, President, Hon'ble Dr. Ram Baran Yadav, first President of Nepal, paid a state visit to India from 15-18 February 2010 at the invitation of our President. He was companied by Mr. Sarat Singh Bhandari, Minister of Tourism and Civil Aviation and high-level official delegation. During the visit he met the President. The Vice President, The Prime Minister, Minister of Finance, External Affairs Minister, Minister of Home Affairs, the Chairperson of UPA and the Leader of Opposition and the Foreign Secretary called upon the visiting President. He also visited Haridwar and met a cross section of political leaders in India. During the visit of President of Nepal to India (15-18 February 2010) four MoUs/ agreements were signed in the presence of the President of Nepal and our Prime Minister. These included (i) Air Service Agreement between India and Nepal; (ii) MoU for extension of railways line to five cross border pointing along the India-Nepal border; (iii) MoU on establishment of Nepal Bharat Maitri Sabhagrah in Birgunj. In response to Nepal's request for supply of food items, our Prime Minister announced that India will supply 50,000 metric tonnes of wheat, 25,000 metric tonnes of rice and 10,000 metric tonnes of pulses to Nepal. Our willingness to supply on additional 200 thousand metric tonnes of wheat, if required, was also conveyed. To facilitate economic and infrastructure development in Nepal, Prime Minister also announced the extension of a new Concessional Line of Credit for US $250 million.

India remains steadfast in its commitment to extend assistance for Nepal's economic development and political stabilization. In India's support continues to be in accordance with the wishes and priorities of the people and Government of Nepal. India-Nepal economic cooperation stands to be further strengthened with the ushering in of a new era of hope and peace in Nepal.

India-Nepal relations are so strong that it's very hard to shape in more words because these two neighboring nations has a history of deep ties and shared concern from ancient times. Quality of relations between these two countries should not be seen in terms of treaty; having faith in each other's role in any dispute can be solved that consensus could be formed between these two friendly Nations. Indeed there are no reasons among the peoples of the both sides of border to involve in any short of hate campaign against each other; any development in this regard would be indeed with an impractical and unviable consequences. So, it must realized that interest of India would not affect the any move of peace process in Nepal; its need of hour to end the causes of political insecurity among the diasporas on the both side of the borders.

Infrastructures are major issues that need to take on in such active manner since perennial floods in a major impediment for socio-economic structure of Terrain region in Nepal and entire North Bihar. A radical shift in policy towards the existing infrastructure of water management is the first step that required to be taken by the governments of both

countries. Water management possessed very crucial and strategic place in the sphere of India-Nepal relations as their catchments are very productive of the vast agricultural areas as well as alternative source of energy; projects like Pancheswer, Saptkosi, Naumure etc. needs rational handling as they are immensely crucial for the sake of both countries energy requirements. India has utmost concern with Nepali's state of affairs in similar manner; Nepal too has immense benefits from a stronger India, so despites some ups and down in events it would be compatible to remains in same strong bond of sharing forever brotherhood always remains a great idea as in such set of relationship of every member has some specific roles to play irrespective of identities like big brother and small brother; being sanguine for same must in case of India-Nepal relations.

References :

- Conway, G. (1992). Sustainable Rural Livelihoods: Practical Concepts for 21st Century. Sussex: Institute of Development Studies.
- Kapuria, R.S. (1967) The India Rupee: A Study in Retrospect and Prospect. Bombay: Vora.
- Rose, Leo E., and Margret W. Fisher (1970). The Politics of Nepal: Persistence and Change in an Asian Monarchy. Ithaca: Cornell University Press.
- Tyagi, Sushila (1974). Indo-Nepali's Relations, 1858-1914. Delhi: O.K. Publishing.
- Business Economics
- Economic times news online Eds., http://economicfouram.in
- World economy news online Eds., http://economicfouram.in
- International business guide

जागरण की वेला

''जन-आंदोलन एक बदलती हुई व्यवस्था के युग में स्वाभाविक और आवश्यक है। वास्तव में वे समाज की जागृति के साधन और उसके द्योतक हैं। यह आवश्यक है कि ये आंदोलन दुस्साहसपूर्ण और हिंसात्मक न हों प्रत्युत वे हमारी कर्मचेतना को संगठित कर एक भावात्मक क्रान्ति का माध्यम बनें। एतदर्थ हमें उनके साथ चलना होगा, उनका नेतृत्व करना होगा। जो राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्र में यथास्थिति बनाये रखना चाहते हैं, वे इस जागरण से घबड़ाकर निराशा और आतंक का वातावरण बना रहे हैं। हमें दुख है कि हम उनके साथ सहयोग नहीं कर सकते। वे कालचक्र की गति को थामना चाहते हैं, भारत की नियति को टालना चाहते हैं। यह संभव नहीं होगा। हम अतीत के गौरव से अनुप्राणित है परंतु उसको भारत के राष्ट्र जीवन का सर्वोच्च बिन्दु नहीं मानते, हम वर्तमान के प्रति यथार्थवादी है, किन्तु उससे बंधे नहीं, हमारी आंखों में भविष्य के स्वर्णिम सपने हैं किन्तु हम निद्रालु नहीं बल्कि उन सपनों को साकार करने वाले जागरूक कर्मयोगी हैं। अनादि, अतीत, अस्थिर, वर्तमान तथा चिरंतन भविष्य की कालजयी सनातन संस्कृति के हम पुजारी हैं।''

हमारा लक्ष्य

''हमने किसी संप्रदाय या वर्ग की सेवा का नहीं बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र की सेवा का व्रत लिया है। सभी देशवासी हमारे बांधव हैं। जब तक हम इन सभी बंधुओं को भारत माता के सपूत होने का सच्चा गौरव प्रदान नहीं करा देंगे हम चुप नहीं बैठेंगे हम भारत माता को सही अर्थों में सुजला, सुफला बनाकर रहेंगे। यह दशप्रहरण-धारिणी दुर्गा बनकर असुरों का संहार करेगी, लक्ष्मी बनकर जन-जन को समृद्धि देगी और सरस्वती बनकर अज्ञानान्धकार को दूर कर ज्ञान का प्रकाश फैलायेगी। जब तक हम हिंद महासागर और हिमालय से परिवेष्टित भारतखंड में एकरसता, कर्मठता, समानता, सम्पन्नता, ज्ञानवत्ता, सुख और शांति की सप्तजाह्नवी का पुण्य-प्रवाह नहीं ला पाते, हमारा भगीरथ तप पूरा नहीं होगा। इस प्रयास में ब्रह्मा, विष्णु और महेश सभी हमारे सहायक होंगे। विजय का विश्वास है तपस्या का निश्चय लेकर चलें।''

(कालीकट २८ दिसम्बर, १९६७)

एकात्म मानववाद, परिस्थिति निरपेक्ष अनन्त दर्शन

जगदीश प्रसाद माथुर*

''एकात्म मानववाद' की चर्चा फिर उभर ही है। १९६४-६५ में स्वर्गीय पं. दीनदयाल उपाध्याय ने उस समय के भारतीय जनसंघ के मौलिक सिद्धांत के रूप में इस शब्द और दर्शन का राजनीति में प्रयोग किया। अंग्रेजी भाषान्तर Intergral Humanism के रूप में किया गया है। H९m९nism अर्थात् मानववाद का मूल अभिप्राय एक ऐसी बौद्धिकता से रहा है जिसके अनुसार मानव और उसकी क्षमताओं, आवश्यकताओं तथा उसके हित-अहित को केन्द्र मानकर विचार किया। प्रारंभ में ही स्पष्ट करना उचित होगा कि यूरोप, अमरीका आदि के सभी भारत-इतर विचारकों और विद्वानों ने मानववाद (Humanism) को केवल भौतिकता के परिवेश में ही स्वीकार किया है। ग्रीक और रोमन शास्त्रीय लेखकों के परिवेश में ही स्वीकार किया है। ग्रीक और रोमन शास्त्रीय लेखकों ने मानव तथा मानवता की एक ओर पाशविकता और दूसरी ओर ईश्वरीयता से भिन्नता के रूप में ही उल्लेख किया है। विपरीत इसके भारतीय दर्शन में मानव और मानवता के विचार में अध्यात्म का भी प्रभावशाली समावेश है। अपनी बुद्धि के कारण मानव सारी क्रियाओं का केन्द्र है। स्वयं उसका कल्याण और प्रकृति का उपभोग उसके कार्यकलापों का केन्द्र-बिन्दु रहा है आज भी है, और आगे भी रहेगा। अन्तर केवल इतना ही है कि विचारकों ने मानव को किस रूप में समझा और आंका है, तथा उसकी मूल प्रकृति की किस क्षमता और पहलू को कब और कितना महत्व दिया है।

उदारवाद और मार्क्सवाद

यूरोप की राजनीति में इस विषय के कई रूप रहे हैं। इनमें दो विचारधाराएं प्रमुख रही है- Liberalism तथा Marxism (उदारवाद तथा मार्क्सवाद)। यह उल्लेख करना भी उचित होगा कि यद्यपि Socialism (समाजवाद) शब्द का उपयोग पहले से होता रहा था, परंतु कार्ल मार्क्स के नये दर्शन के उदय के पश्चात समाजवाद प्रायः साम्यवाद के दृष्टिकोण के समानान्तर माना जाने लगा है। इस बात का उल्लेख करना भी आवश्यक है कि समाजवाद का अर्थ सम्बन्धित देश और समाज की पृष्ठभूमि में अलग-अलग अर्थ में प्रयोग किया जाता रहा है। विशेषतः भारत में इसका रूप प्रारंभ के मूल विचार से पूर्णतः अलग हो चुका है। कांग्रेस पार्टी, समाजवादी दल का समाजवाद तथा गांधीवादी समाजवाद अब भारत में अपने मूलार्थ से हटकर भिन्न-भिन्न रंगों में समझा जाने लगा है। इस कारण उसका एकात्म मानववाद के तुलनात्मक संदर्भ में यहां उल्लेख नहीं किया जायेगा।

---

*संकल्प से साभार

हर विचारधारा और सिद्धान्त का उदय काल और देश की उपलब्ध परिस्थितियों की विशेष पृष्ठभूमि में होता है। फिर भी बहुत से नवोदित सिद्धांत और विचारधाराएं कालान्तर में व्यापक रूप धारण कर लेती हैं। Liberalism (उदारवाद) का प्रारंभ भी इसी भांति हुआ। व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा उसके मनोभावों (Spirit) की अभिव्यक्ति एवं स्वतंत्रता और उसके विकास की आवश्यकता उदारवाद (Liberalism) की मूल मान्यता रही है। यह सिद्धांत व्यक्ति और समाज दोनों के लिए समान रूप से स्वीकारा गया है। अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में Liberalism एक आंदोलन और राजनीतिक मत की परिवर्तनशील शैली के रूप में यूरोप और अमरीका में चलता रहता था। यह शब्द प्रयोग सर्वप्रथम स्पेन के एक राजनीतिक दल द्वारा किया गया। तत्पश्चात् ब्रिटेन फ्रांस, इटली, जर्मनी तथा अमरीका में इस मत के राजनीतिक दल चलते रहे। व्यक्ति की स्वतंत्रता का आदर्श इन सबकी मूल प्रेरणा थी। चर्च के दबावपूर्ण अधिकार, रजवाड़ाशाही (Feudal Order), खानदानी राज, शिक्षा प्रणाली तथा समाचार प्रसारण की स्वतंत्रता पर रोक (Censorship) आदि के विरूद्ध यह दल सतत संघर्षरत रहे। अत: यह दल मनुष्य को उन सब दबावों और रूढ़ियों से मुक्त कराने का आदर्श लेकर आवाज बुलन्द करते रहे, जिसे अमरीका के तीसरे राष्ट्रपति श्री जैफर्सन (Thomas Jefferson) ने ("Dead hand of the past" कहा था। उदारवाद की दूसरी प्रमुख मान्यता थी कि प्रकृति के साथ मनुष्य का अधिक दखल समस्याएं खड़ी करता है। प्रकृति के दोहन को मुक्त छोड़ा जाना चाहिए। साथ ही अमरीका के थामस जैफर्सन (Thomas Jefferson) इंगलैंड के श्री लोके, फ्रांस के रूसो (Rousseau) ने liberalism के अन्तर्गत यह सिद्धांत भी प्रतिपादित किया कि मानव अधिकार प्रकृति जनित है, सरकार को इनकी रक्षा करनी चाहिए तथा व्यक्ति और समाज को अपने इन नैसर्गिक अधिकारों की सरकार के विरूद्ध भी रक्षा करनी होगी। अठारहवीं शताब्दी के विचारकों ने इन नैसर्गिक अधिकारों की व्याख्या और उनका उपयोग राजनीति-इतर धर्म, कला, विधि तथा अध्यात्म के क्षेत्र में भी किया है। Petitions of Rights और Bill of Rights तथा व्यक्ति एवं नागरिक के अधिकारों की अधिघोषणाएं उस काल की प्रहरी बन गई थी। परंतु कालान्तर में उदारवादी बुद्धिजीवियों (literal interllectuals) और प्रभावी रूप में उभरते व्यापारियों के बीच मेल बैठता चला गया और यथेच्छकारिता (Laissez Faire) के सिद्धांत का उदय हुआ। परिणामत: पूंजीवादी अर्थव्यवस्था (capitalism) ऐसी उभरी कि व्यक्ति की स्वतंत्रता नष्ट हो गई और पूंजी के प्रभाव में दबी सरकार समाज के लिए दमनकारी बन बैठी। इस पृष्ठभूमि में इंग्लैंड में हेरेल्ड लास्की (Herald J. Laski) जैसे विचारकों के नेतृत्व में एक नए स्कूल का उदय हुआ जो उदारवादियों के अनुसार मानवीय उद्देश्यों की उपलब्धि का लक्ष्य तो मानता था, परंतु liberals द्वारा इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए तरीकों और कार्य-प्रणाली को हास्यास्पद कहकर खिल्ली उड़ाता था। उसने समाजवादी अर्थात सम्पत्ति पर समाज के अधिकार को अनिवार्य बताया। यहां से केन्द्रित अर्थव्यवस्था वाले समाजवाद का प्रारंभ हुआ।

उपरोक्त पृष्ठभूमि में ५ मई, १८१८ को जर्मनी के यहूदी परिवार में जन्मे इतिहास के प्राध्यापक तथा पत्रकार Karl Henrich marx ने एक नए दर्शन को जन्म दिया। फरवरी १८४८ में फ्रांस की क्रांति की पृष्ठभूमि में कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र एक आकर्षक वस्तु बनकर सामने आया। मार्क्स की विश्वविख्यात रचना का प्रथम खंड दास कैपिटल (Das Kapital) १८६७ में प्रकाशित हुआ। इसका दूसरा और तीसरा खंड कार्ल मार्क्स की मृत्यु उपरांत १८८५ तथा १८९४ में प्रकाशित किया गया। उपरोक्त Liberalism तथा मार्क्सवाद के सम्बन्ध में कार्ल का उल्लेख करने का अभिप्राय इस अर्थ में तुलना करना है कि जहां यह दोनों प्रमुख दर्शन एक विशेष परिस्थिति में निकट भूत की उपज है, वहां भारतीय दर्शन, जो एकात्म मानववाद का आधार है, भूत और भविष्य दोनों दृष्टि से कालातीत है। इस कारण जब कोई चर्चा करता है कि एकात्म मानववाद अथवा भारतीय (हिन्दू) दर्शन का भविष्य क्या है तो मेरा उत्तर है कि इनका कोई भविष्य नहीं है, क्योंकि भविष्य उसका होता है जिसका अन्त हो, अनंत का कोई भविष्य नहीं होता।

मार्क्सवाद की बुनियाद

मार्क्सवाद की बुनियाद इस सिद्धांत पर है कि आर्थिक विकास (जिसमें स्वभावत: औद्योगिक और वैज्ञानिक विकास सम्मिलित है) सामाजिक तथा मनुष्य की हर प्रक्रिया को संचालित करता है। अर्थात् मानव मुख्यत: आर्थिक प्रणाली है। इसके पांच मूलभूत सिद्धांत है-

Determinism - (इस शब्द का हिंदी भाषान्तर नहीं किया जा रहा है)। मोटे रूप में इसके अनुसार मान्यता है कि इतिहास जिस प्रक्रिया से चलता है उसे मनुष्य-बुद्धि से पहचाना जा सकता है तथा उसके आधार पर भावी समाज के गठन को पहले से समझा जा सकता है।

दूसरा सिद्धांत Economic Interpretation of History अर्थात इतिहास का आर्थिक रूप में निर्वाचन। यह उपरोक्त determinism के सिद्धांत से गहरी तरह सम्बन्धित है। मान्यता है कि आर्थिक उत्पादन आधारभूत वस्तु है। जैसे-जैसे आर्थिक ढांचा बनता जाता है, उसके अनुसार समाज का रूप और मान्यताएं बदलती जाती है। आर्थिक ढांचा और प्रक्रिया सब परिवर्तन ओर विकास का मूल है। मार्क्स की मान्यता है कि संस्थाएं, कानून और राजनीति, और यहां तक की धार्मिक मान्यताएं भी उत्पादन तत्व से बनती-बिगड़ती है। इसी प्रक्रिया से इतिहास बना है तथा उसी के आधार पर भविष्य की कल्पना साधी जा सकती है। यह कहना न्यायसंगत नहीं होगा कि मार्क्स ने आदर्शवादी प्रेरणाओं, देशभक्ति तथा अभौतिक भावनाओं को पूर्णत: नकारा है। परंतु उसकी यह मान्यता अवश्य है कि यह अभौतिक प्रेरणाएं गौण है तथा भौतिक इच्छाओं और आर्थिकता से ही सम्पूर्ण रचना बनती और बढ़ती है। भारतीय दर्शन का यहां पर ही मार्क्सवाद से भारी मतभेद है।

तीसरा सिद्धांत है Dialectics प्राय: इसे Dialectical materialism कहा जाता है। मोटे तौर

से इसे सतत भौतिक द्वंद्व का सिद्धांत कहा जा सकता है। अर्थात् इसके अनुसार किसी प्रकार की प्रगति अथवा परिवर्तन नये और पुरातन के बीच अनिवार्य संघर्ष से ही संभव है। यदि परस्पर का यह संघर्ष न हो अथवा समय से पूर्व द्वंद्व घटा दिया जाये तो प्रगति नहीं हो सकती। कार्ल मार्क्स ने यह मान्यता जर्मनी के दूसरे विचारक हीगल से प्राप्त की थी यद्यपि दोनों के विचारों में भी थोड़ा भेद है। स्पष्ट करने के लिए यह कहना उचित होगा कि इस मान्यता के अनुसार समाज सुधार अथवा किसी प्रकार का क्रमिक परिवर्तन वांछित नहीं। कोई भी सुधार उस समय तक वास्तविक परिवर्तन नहीं माना जा सकता जब तक कि वह अपने से पूर्व की स्थिति को पूर्णतः नष्ट न कर दे। इसके लिए रक्त क्रांति को अनिवार्य माना गया है।

चौथा सिद्धांत है class struggle अर्थात् वर्ग संघर्ष। इसकी उपज उपरोक्त dialectism में से ही है।। मान्यता है कि दो वर्गों के बीच कोई मेल संभव नहीं तथा उनके हितों के बीच सतत संघर्ष है। इस संघर्ष में अन्ततः विजयी होकर निकलेगा और Dictatorship of the proletariat (सर्वहारा का अधिनायकवाद) पैदा होगा तथा उस स्थिति में सबको आवश्यकतानुसार वस्तु उपलब्ध होगी, और किसी राज्य (State) की आवश्यकता शेष नहीं रहेगी। काल ने मार्क्स की इस कल्पना को ध्वस्त कर दिया है।

निम्नलिखित दो और मूल मान्यताओं का यहां विस्तार से उल्लेख नहीं किया जा रहा है- प्रथम, Labour Value Theory (श्रम और उसका मूल्य) तथा Theory of Alienation पंजीवादी व्यवस्था में कारीगर केवल जीवित रहने मात्र के लिए कार्य करता है, उसकी आन्तरिक अभिव्यक्ति उसकी कला में नहीं होती।

ऊपर उल्लेख किए गए मार्क्स के सिद्धांतों का निचोड़ यह है कि व्यक्ति मूलतः आर्थिक प्राणी है। समाज में वर्ग संघर्ष अनिवार्य तथा प्रगति का एकमेव मार्ग है। रक्त क्रान्ति आवश्यक है तथा सर्वसत्ता व्यक्ति की नहीं, समाज अर्थात् राज्य की है। इसमें से मनुष्य का व्यक्तित्व नगण्य हो पूर्णाधिकार सम्पन्न राज्य सत्ता की मशीन का एक पुर्जा मात्र बनकर रह जाता है। साम्यवादी देश इसका उदाहरण है।

कार्ल मार्क्स काल वाह्य

व्यवहार में कार्ल मार्क्स की प्रायः सभी मान्यताएं कालचक्र ने नकार दी है। उल्लेखनीय है कि भारत के सर्वप्रथम तथा अद्वितीय मार्क्सवादी विचारक श्री मानवेन्दु नाथ राय (एम.एन. राय) जो वर्षों तक लेनिन, स्टालिन और ट्राटस्की जैसे साम्यवाद के महायोद्धाओं के साथ काम करने के अनुभव के पश्चात स्वदेश लौटे थे, ने भी मार्क्सवाद को अव्यवहारिक और अनुपयोगी बताया है। स्मरण हो कि एम.एन. राय बाल्यावस्था से क्रांतिकारी थे। पहले महायुद्ध से लेकर दूसरे महायुद्ध तक

वह विदेशों में क्रांति का संदेशवाहक बनकर घूमते रहे। दूसरे साम्यवादी महासम्मेलन (Second Congress of the Comintern-July 23 August 17, 1920) में लेनिन के साथ उनका अभिलेख समानान्तर रूप से स्वीकार किया गया था। उनके उद्धरण नीचे दिये जा रहे हैं।

"The Russian experience proved that Socialism or Communism could be nothing more than State Capitalism. The Communist National State of Russia become an integral part of the precarious status quo, adding to its precariousness." (New Humanism, Second Edition, page-15).

वर्ग संघर्ष के सम्बन्ध में एम.एन. राय ने कहा है–

"The dogma of an uncomparising class struggle, and the false expectation of a polarisation of society into two classes moved exclusively by the economic incentives, led Marx and Lenin, particularly the latter, to visualise revolution taking place through an insurrection engineered by the so-called vanguard of the proletariat to be followed by its disctatorship over the people. This theory not only defeats its purposes as proved by the Russian experience, by creating a new system of political domination, cultural regimentation and economic enslavement, but the uniform failure of Communists all over the world, after their accidental success in Russia, proves its utter inadequacy even as a technique for the capture of power." (New Humanism page-31)

साम्यवाद के अन्तर्गत आर्थिक विकास पर कहा है:-

"Even the measure of economic equality under communism is deceptive and doubtful...The price is forefeiture of political and intellectual freedom, and cultural regimentation. This experience exposes the fallacy of social philosophy based on the doctrine of the economic man." (New Humanism, page 96-97).

इस भाँति Welfare State जिसमें साम्यवाद और उसके तानाशाही तरीकों से हटकर एक समतावादी आर्थिक व्यवस्था का यत्न किया गया है के सम्बन्ध में भी एम.एन. राय का मत बिल्कुल बदल गया था। इस विषय में उनके निम्न वाक्य ध्यान देने योग्य हैं–

"This experiment is being made in Britain. The distinctiou between economic theories of capitalism and socialism is getting lost in practice. Because both start from the doctrine of the economic man. The idea of welfare state was conceived by bourgeois Liberalism in the age of capitalist prosperity towards the end of the 19th century...There is something fraudulent in this welfare"- page 97-98).

एकात्म मानवदर्शन

स्पष्ट है कि भारत की भूमि में जन्मा कोई भारतीय विचारक अपने मूल से हट नहीं सकता,

चाहे मार्क्सवाद तथा किताबी समाजवाद से जुड़े कुछ लोग भारत के मूल दर्शन को स्वीकार न करें। भारतीय दर्शन, जिसकी बुनियाद पर पं. दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानववाद का प्रतिपादन किया, न तो अपौरूषेय है और न किन्हीं विशेष परिस्थितियों की प्रतिक्रिया में उपजा विचार। महापुरूषों ने जिस भांति मानव को देखा और उसकी मूल प्रकृति और प्रेरणाओं को समझा, यह उसी का निष्कर्ष है। एकात्म मानववाद मूलतः नया दर्शन नहीं, वर्तमान राजनीतिक भूमिका में उसका प्रयोग अवश्य प्रथम कहा जा सकता है।

भारतीय दर्शन ने व्यक्ति, समाज तथा सम्पूर्ण सृष्टि का संकलित विचार किया है। इसका दृष्टिकोण एकात्मवादी अर्थात Integrated है। इसी आधार पर पं. दीनदयाल ने अपने राजनीतिक दर्शन को एकात्म मानववाद (Integral Humanism) की संज्ञा दी। यह दर्शन सदियों पुराना है परंतु प्रतिगामी नहीं। एक भांति यह सर्वकालिक है। जीवन में अनेकता और विविधता को स्वीकार करते हुए उसके मूल में निहित एकता को खोजा और देश-काल के अनुसार इस एकता की भिन्नरूपता को भी स्थान दिया है। इसी कारण जहां पाश्चात्य विचार-दर्शन, मुख्यतया साम्यवाद सतत आंतरिक संघर्ष को अनिवार्य समझता है, वही एकात्म मानववाद के अनुसार यह द्वंद्व उपयोगी होते हुए भी स्थायी नहीं है। परस्पर द्वंद्व का क्षेत्र जहां छोटा और सीमित है वहां अन्तर्निहित एकता तथा समन्वय का क्षेत्र अधिक व्यापक और दीर्घकालिक है। यह है सत्य की अनन्त खोज के प्रयास में भारतीय और विदेशी दृष्टिकोण का मूल अन्तर।

पंडितजी से पूर्व

एकात्म मानववाद (Integral Humanism शब्द का प्रयोग पं. दीनदयाल उपाध्याय ने भारत में प्रथम बार नहीं किया था। विश्व विख्यात मार्क्सवादी एवं जन्मजात क्रान्तिकारी मानवेन्द्र नाथ राय (असली नाम नरेन्द्रनाथ भट्टाचार्य) ने भारत लौटने पर जब साम्यवाद को अर्थहीन मानकर एक नए विचार की कल्पना की तब उसके लिए (Integral Humanism) शब्द का प्रयोग किया था। उन्होंने इसे बाद में बदलकर Scientific Humanism और अन्ततः Redical Humanism शब्द का प्रयोग किया। हो सकता है Integral Humanism शब्द को इसी कारण छोड़ा हो कि इससे ईश्वरीय भारतीय दर्शन की झलक आती है। स्मरण रहे कि मानव के विकास और स्वतंत्रता को मूल मानकर चलने को मानते हुए भी एम.एन. राय अनिश्वरवादी रहे। नैतिक मूल्यों की समाज रचना में अनिवार्यता और अन्य सम्बन्धित विचारों से श्री राय भारतीय दर्शन के बिल्कुल निकट लौट आये थे। उनका कहना था-"The crying need of the time is to harmonise ethics with a social philosophy and political practice. The sovereignty of man, which must be the foundation of any revolutionary social philosophy, can be deduced only from the fact that man is a moral entity. It is a time honoured belief which could not be sustained in practice, now the belief must be replaced by the knowledge of the fact that: that man is moral because he

is rational (New Humanism page 88)"

वैचारिक साम्यता

आगे आप देखेंगे कि मानव की सत्ता और नैतिकता के सम्बन्ध में एम.एन. राय और दीन दयाल उपाध्याय के विचारों में कितना साम्य है।

मनुष्य शरीर, तन बुद्धि और आत्मा का समुच्चय माना गया है। इन चारों तत्वों की समान प्रगति, समाज तथा उसको नियंत्रित करने वाली राज्य सत्ता सहित सभी संस्थाओं का लक्ष्य होना चाहिए। शरीर को कोई नहीं नकार सकता क्योंकि वह स्थूल रूप में सामने देखने वाली वस्तु है। मन मनुष्य की एक ऐसी शक्ति है जो शरीर की स्थूलता से ऊपर और विवेक-बुद्धि से अलग है। इसे intution अथवा Sixth Sense आदि जैसी संज्ञा से समझा जा सकता है। मनुष्य में एक ऐसी अदृष्य क्षमता है कि वह बगैर शारीरिक अवयवों से अनुभव किए तथा विवेक और तर्क से सुलझाये बिना किसी बात का अनुभव कर पाता है। बुद्धि वह शक्ति है जिसके अनुसार मनुष्य विवेक का उपयोग कर चीजों को समझता और करता है। इसके द्वारा मनुष्य जानवर से अलग माना जाता है। इसी आधार पर उसे एक rational animal माना गया है। आत्मा के अस्तित्व के विषय में भी प्रायः बड़ा विवाद नहीं है। ईश्वरवादी सब विचारधाराएं आत्मा को स्वीकार करती है। जैन दर्शन में यद्यपि ईश्वर को नहीं माना गया है परंतु आत्मा का अस्तित्व स्वीकारा गया है। अनीश्वरवादी विचारक, जैसे मार्क्स तथा एम.एन. राय जैसे विचारक आत्मा के अस्तित्व को नहीं मानते। इनके अनुसार शरीर और विवेक एवं शुद्ध जैविक (biological) प्रक्रिया है। इसी कारण एम.एन. राय व अनीश्वरवादी विचारकों ने मनुष्य के लिए नैतिक मूल्य की अनिवार्यता को स्वीकारते हुए भी आध्यात्म को नहीं माना है। आत्मा को स्वीकारने वालों ने उसे अनश्वर और सूक्ष्म माना है। अनश्वरता की इस मान्यता से स्वभावतः मनुष्य में यह जिज्ञासा जन्म लेती है कि मैं क्या हूं, क्यों हू और इस जीवन के पश्चात् क्या होगा, आदि आदि? इस जिज्ञासा की संतुष्टी के लिए खोज और यत्न अध्यात्म का मूल है। अतः पूर्ण भौतिकवादी और नास्तिक विचारक मनुष्य ही शारीरिक भूखों की संतुष्टी और भोग तक ही विचार करके रूक गए। इससे आगे नहीं बढ़ पाए। समाज के लिए नैतिक मूल्यों अथवा मानव धर्म (Human Values) की आवश्यकता को उपयोगी मानते हुए भी मानव के आधे रूप को ही इन्होंने देखा और समझा है। एकात्म मानववाद और दूसरे विचारकों के बीच यहां से दो अलग-अलग रास्ते बंट जाते हैं। इसका अर्थ एकात्म मानववाद का विज्ञान की प्रगति को रोकना अथवा उसे नकारना नहीं। इसके विपरीत विज्ञान को सही दिशा देना और उससे मानव जीव के उचित मार्ग पर चलने में सहयोग और सहायता लेना है। उपरोक्त उदारवादी (Libcralism) के मार्ग पर चलने वालों ने भी आदमी की स्वतंत्रता और उसकी सत्ता को मूल तत्व मानते हुए भी केवल शारीरिक भूख और सुरक्षा का विचार किया। इस कारण उनका राजनीतिक और सामाजिक दर्शन भी अपूर्ण और अल्प प्रभावी होकर रह गया।

चार पुरूषार्थ

मनुष्य को शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का समुच्चय स्वीकार करने के साथ जीवन के चार आदर्श चार पुरूषार्थ के रूप में स्वीकार किए गए हैं। एक भाँति यह चार मूल प्रेरणाएं हैं जो मानव को संचालित करती है। ये है धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन चार पुरूषार्थों को कोरी आध्यात्मिकता मानना भूल होगी। इसी भाँति इन्हें हिंदू धर्म (प्रचलित अर्थों में) से जुड़ा और साम्प्रदायिकता की छाप देना अन्याय होगा। इन चार प्रेरणाओं को विचारकों ने मानव की मूल प्रकृति और आचरण के सूक्ष्म विश्लेषण के पश्चात सार्वभौमिक कालातीत सत्य के रूप में प्रस्तुत किया है।

धर्म की व्यापकता

धर्म का व्यापक अर्थ है। मनुष्य ने अपने जीवन के विकास के दौरान सत्य की खोज के अनेकाविध प्रयास किए है। सत्य की इस खोज में कुछ ऐसे मानव सिद्धांत उभरकर सामने आये, जिन्हें मूल माना जा सकता है। इन्हें ही धर्म माना गया है। जिन सिद्धांतों का हमें अपने दैनिक जीवन में और सामाजिक सम्बन्धों में पालन करना है, वे जिस वस्तु द्वारा नियत किए गए हैं, उसे उसका धर्म कहते हैं। धर्म सत्य का जीवन में मूर्त रूप है और उसमें हमारी प्रकृति को नये रूप में ढालने की शक्ति है। धर्म की धारणा के अन्तर्गत वे सब प्रेरणाएं और गतिविधियां सम्मिलित हैं जो मानवीय जीवन को गढ़ती और बनाये रखती है। मनुष्य के पृथक-पृथक हित होते हैं, विभिन्न इच्छाएं होती है और कई बार विरोधी आवश्यकताएं भी होती है जो बढ़ती है और बढ़ने की इस प्रक्रिया में परिवर्तित हो जाती है। इस सबको समूचे रूप में नियंत्रित कर प्रस्तुत करने का काम धर्म का है। काल और देशानुसार धर्म भिन्न रूप धारण कर सकता है।

धर्म एक मानवीय गुण और जीवन की प्रेरणा है। यह मानव का आर्थिक और स्वार्थी प्राणीमात्र होना नकारता है। मार्क्सवादी मानव को आर्थिक प्राणी मानता है परंतु धर्म उसे इस धरातल से उठाकर ऊंचे भावों से प्रेरित करता है। उदाहरणार्थ, यदि एक आदमी सड़क पर खड़ा देखता है कि एक भारी ट्रक पास खड़े बच्चे को रौंद देगा तो वह किसी अज्ञात प्रेरणा से झपटकर जीवन का खतरा मोल लेकर भी उसे बचाना चाहता है। इसमें उसका कौन-सा स्वार्थ अथवा आर्थिक हित है? इसके पीछे केवल एक मानवीय प्रेरणा काम करती है। अपने स्वार्थ और हित से विरत होकर दूसरों के प्रति चाहे वह व्यक्ति हो अथवा समाज अथवा उससे भी बढ़कर प्राणीमात्र मानव का उच्च भाव धर्म का मूल है। भारतीय विचारकों ने इस प्रेरणा को पुष्ट और विकसित करने पर बल दिया है। भारतीय दर्शन वर्ग संघर्ष अथवा द्वंद्वात्मक संरचना को प्रथम और प्रमुख नहीं मानता। इसके विपरीत सहयोग और समन्वय को स्वीकारता है। धर्म मनुष्य को जीवन तथा उसके सुख और आनन्द से विपरीत नहीं सिखाता वरन उसकी उपलब्धि की प्रेरण देता है क्योंकि मानव की अन्य दो प्रेरणाओं (अर्थ और काम) की पूर्ति के बिना व्यक्ति अधूरा ही रह जायेगा। एकात्म मानववाद इसी समन्वित

दृष्टि का परिचायक है।

अर्थ

मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं को अर्थ की संज्ञा दी गई है। धन वैभव आदि के अर्जन की इच्छा उसकी मूलक है। पं. दीनदयाल उपाध्याय ने कहा है "अर्थ की आज की परिभाषा के अनुसार उसमें राजनीति और अर्थनीति का समावेश होता है"। मनुष्य ने अपने शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साधनों की खोज में प्रकृति का भी दोहन किया है। इस प्रयास में जो-जो साधन हैं और वस्तुएं उपलब्ध होती रही हैं, व्यक्ति उनका उपभोग कर सुख और सुरक्षा प्राप्त करना चाहता रहा है। यह प्रेरणा प्रबल और प्रभावी है। इसकी भरपूर उपलब्धि वांछित है, परंतु धर्म की सीमा के अन्तर्गत। दीनदयाल जी के शब्दों में, "अर्थ के अभाव के समान ही अर्थ का प्रभाव भी घातक होता है, प्रभाव का अर्थ आधिक्य मात्र नहीं। जब व्यक्ति और समाज में अर्थ, साधन न रहकर साध्य बन जाय तथा जीवन की सभी विभूतियां अर्थ से प्राप्त हो तो वहां अर्थ का प्रभाव उत्पन्न हो जाता है. .. जहां गौण अर्थ अर्थात मुद्रा तथा उपभोक्ता वस्तुओं के लिए लगने वाली उत्पादक वस्तुओं का आधिक्य हो वहां भी अर्थ का प्रभाव होता है। इन सभी प्रकार के अर्थ के प्रभावों से बचना चाहिए।"

आधुनिक काल में अर्थ का प्रभुत्व है। इस सम्बन्ध में डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा है-"आर्थिक उपादान (साधन) भी मानव-जीवन का एक अत्यावश्यक तत्व है। सम्पत्ति में स्वतः कोई पाप नहीं, ठीक वैसे ही जैसे गरीबी में स्वतः कोई पुण्य नहीं... पर यदि किसी एक के सम्पत्ति जमा करने के प्रयत्नों से दूसरे लोगों को आर्थिक या नैतिक हानि पहुंचती है तो अवश्य यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि क्या ऐसे उपायों से सम्पत्ति जमा कराना भला है या नहीं।" अतः समाज को अधिकार है कि वह धर्मानुकूल उसको नियंत्रित करे।

काम

काम का सम्बन्ध मानव की विभिन्न कामनाओं की पूर्ति और तृप्तिसे है। काम केवल सैक्स नहीं है। शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति से लेकर वे सारी कामनाएं जो मनुष्य में समय-समय पर उठती है, काम के अन्तर्गत आती है। बहुधा इन इच्छाओं का उत्तर नहीं होता कि अमुक इच्छा क्यों है? इनका समाधान आवश्यक माना गया है। विचारकों ने यह भी माना है कि मानवीय इच्छाओं की कभी परमपूर्ति नहीं हो सकती। इच्छा या कामना एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है जिसकी मनानुभूत संतुष्टि आवश्यक है। देशकाल के अनुसार निश्चित किया गया धर्म उसे सीमा और मर्यादा में बांधता है। इस सीमा पर आकर समाज को अधिकार को प्राप्त होता है कि मानव की इच्छाओं को कब कैसे और किस मात्रा में बांधे। यह बंधन ऐसे नहीं होने चाहिए कि आदमी के व्यक्तित्व को ही समाप्त कर उसे समाज का एक व्यक्तित्वविहीन पुर्जा मात्र बना दे। यही है साम्यवादी और पाश्चात्य समाजवाद

के साथ एकात्म मानववाद का मूल अन्तर। काम और अर्थ का उपभोग भी इस प्रकार हो कि वे एक ऐसे संतुष्ट मानव का निर्माण करने में सहायक हो जो संतुलित समाज व्यवस्था और उसकी विभिन्न संस्थाओं के निर्माण और संचालन में धर्मानुकूल अपना भाग पूरा कर सकें। कला, साहित्य आदि काम के अंग है। काम निकृष्ट अथवा वांछनीय नहीं। यह मानव की स्वयं की अभिव्यक्ति का बड़ा माध्यम भी है। इससे जीवन में सरसता प्राप्त होती है। अर्थ की भाँति काम पूर्ति की मर्यादाएं भी धर्म निर्धारित करता है। समाज द्वारा निर्धारित नियम और कानून के बंधनों के साथ संयम का भी निर्देश है। अर्थात समाज तथा राजतंत्र सहित सभी संस्थाएं नागरिकों में दंड भय आदि के साथ स्वतः नियंत्रण और संयम का भाव पैदा करने की दिशा में भी यत्नशील रहनी चाहिए।

मोक्ष

मोक्ष मानव की उस जिज्ञासा को प्रकट करता है जिसक अधीन मानव प्राकृतिक रूप से यह जानना चाहता है कि मैं कौन हूं, जीवन क्या है, और इसका अंत अथवा परिणाम क्या होगा? इन जिज्ञासा के उत्तर में दार्शनिकों ने विभिन्न विचार कल्पनाएं प्रस्तुत की है। परंतु इन सबने आत्मा और उसका अनश्वर होना स्वीकार किया है। हर सम्प्रदाय के हिन्दू, पुनर्जन्म में विश्वास करते है। मुसलमान और ईसाई आदि मत पुनर्जनम को न मानते हुए भी मृत्योपरांत रूह के बने रहने को स्वीकार करते हैं। सामान्य रूप में मोक्ष का अभिप्राय आवागमन प्रक्रिया से मुक्त आत्मा के ब्रह्म में लीन होना समझा जाता है। आवागमन को मानने वाले हिन्दुओं के सम्प्रदायों मेंभी मोक्ष के इस अर्थ के विषय में मतभिन्नता है। जैन दर्शन भगवान को नहीं मानता, केवल आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करता है। जैन मतावलम्बियों के लिए कैवल्य जीवन का अन्तिम लक्ष्य और परिणाम है। इसी भाँति बौद्ध धर्म निर्वाण को अन्तिम लक्ष्य मानता है। निर्वाण और कैवल्य की कल्पना मोक्ष से भिन्न है। अतः मोक्ष मानव की उस प्राकृतिक जिज्ञासा की पूर्ति और प्राप्ति कहा जा सकता है जो व्यक्ति को उसकी आस्थानुरूप सत्य और जीवन के अन्तिम लक्ष्य को जानने के लिए प्रेरित करती है। इसे किसी विशेष धर्म (मजहब) अथवा उपासना पद्धति से जोकर साम्प्रदायिक रूप में देखना न्यायसंगत नहीं होगा। मोक्ष धर्म से नियंत्रित अर्थ और काम की उपलब्धि के साथ जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति है।

सारांश

अन्त में थोड़े शब्दों में कहना हो तो कहा जा सकता है कि एकात्म मानववाद के अनुसार मनुष्य शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का समुच्चय है तथा वह चार मूल प्राकृतिक प्रेरणाओं (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) से चलित जीवन्त इकाई है और उसका अपना स्वयं है। इस इकाई का इन चार पुरूषार्थ अनुसार संकलित विचार किया जाना चाहिए। इसी भाँति समाज का संतुलित गठन और

विकास आवश्यक है। समाज समयानुसार जिन विविध संस्थाओं का निर्माण करता है उनकी दिशा भी इसी लक्ष्य की पूर्ति की ओर होनी चाहिए।

उपाध्याय जी की अवधारणा

भारत के महान विचारकों ने मानव के प्राकृतिक तत्वों का इस प्रकार विश्लेषण कर एक कालातीत और परिस्थिति निरपेक्ष दर्शन के रूप में प्रस्तत किया है। पं. दीनदयाल उपाध्याय ने इस दर्शन को आधुनिक राजनीति में प्रयोग के लिए प्रथम बार एकात्म मानववाद के रूप में रखा। मूल सिद्धांत के रूप में एक सुसंस्कृत, शक्तिशाली समाज के निर्माण की रूपरेखा इसमें उपलब्ध है। सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्र की विविध बारीक नीति निर्धारण में एकात्म मानववाद दिशाबोध का कार्य करता है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानववाद की व्याख्या करते हुए देश की अर्थव्यवस्था के उद्देश्य निम्न प्रकार इंगित किए हैं :-

(१) प्रत्येक व्यक्ति को न्यूनतम जीवन स्तर की आश्वस्ति तथा राष्ट्र की सुरक्षा सामर्थ्य की व्यवस्था।

(२) इस स्तर के उपरांत उत्तरोत्तर समृद्धि जिससे व्यक्ति और राष्ट्र को वे साधन उपलब्ध हो सकें जिससे कि वे अपने चिति के आधार पर विश्व की प्रगति में योगदान कर सकें।

(३) उपर्युक्त लक्ष्यों की सिद्धि के लिए प्रत्येक सवय एवं स्वस्थ व्यक्ति को साभिप्राय रोजगार का अवसर देना तथा प्रकृति के साधनों को मितव्ययिता के साथ उपयोग करना।

(४) राष्ट्र के उत्पादक उत्पादनों का विचार कर अनुकूल प्रौद्योगिकी का विकास करना।

(५) यह व्यवस्था "मानव" की अवहेलना न कर उसके विकास में साधक हो तथा समाज के सांस्कृतिक एवं अन्य जीवन-मूल्यों की रक्षा करे। यह लक्ष्मण रेखा है जिसका अतिक्रमण अर्थरचना किसी भी परिस्थिति में नहीं कर सकती है।

(६) विभिन्न उद्योगों आदि में राज्य, व्यक्ति तथा अन्य संस्थाओं के स्वामित्व का निर्णय व्यावहारिक आधार पर हो।

इस उपरोक्त रूपरेखा को संवारते हुए दीनदयाल जी का कथन था :

"आज की परिस्थिति में यदि किन्हीं दो शब्दों का प्रयोग कर अपनी अर्थव्यवस्था की दिशा के परिवर्तन को बताना हो तो वे हैं विकेन्द्रीकरण और स्वदेशी....स्पष्ट है कि अनेक पुरानी संस्थाएं बदलेंगी और नई जन्म लेंगी.... हमें यथास्थिति का मोह त्यागकर नवनिर्माण करना होगा। इस रचना

में प्राचीन के प्रति अश्रद्धा एवं अवज्ञा का भाव अवश्य नहीं होना चाहिए, किन्तु उससे चिपटे रहने की आवश्यकता नहीं।

उद्‌बोधन

अन्त में भारत की वर्तमान भूमिका को स्पष्ट करने हेतु दीनदयाल जी का उद्‌बोधन उद्धृत करना उपयोगी होगा। एकात्म मानववाद पर बोलते हुए उन्होंने कहा था–

"भगवान की सर्वश्रेष्ठ कृति मानव अपने को खोता जा रहा है। हमें मानव को पुनः अपने स्थान पर प्रतिष्ठित करना होगा, उसकी गरिमा का उसे ज्ञान कराना होगा, उसकी शक्तियों को जगाना होगा तथा उसे देवत्व की प्राप्ति के हेतु पुरूषार्थशील बनाना होगा। हमें मानव का उत्कर्ष चाहिए।"

"विश्व के ज्ञान और आज तक की सम्पूर्ण परम्परा के आधार पर हम एक ऐसे भारत का निर्माण करेंगे जो पूर्वजों के भारत से अधिक गौरवशाली होगा, जिसमें जन्मा मानव अपने व्यक्तित्व का विकास करता हुआ सम्पूर्ण मानव ही नहीं अपितु सृष्टि के साथ एकात्मता का साक्षात्कार कर "नर से नारायण" बनने में समर्थ हो सकेगा। यह हमारी संस्कृति का शाश्वत दैवीय प्रवाहमान रूप है। चौराहे पर खड़े विश्व मानव के लिए हमारा यही दिग्दर्शन है।"

पुनर्पाठ

अष्टावक्र

मुरली मनोहर जोशी*

संस्कृति के उषाकाल में ही भारतीय मनीषा ने इस सत्य का साक्षात्कार कर लिया था कि ज्ञान का अव्यभिचारी रूप ही वरेण्य है। हमारे मंत्रद्रष्टाओं ने कहा था कि ज्ञानार्जन का अर्थ ही है सत्य की खोज और प्रदूषित ज्ञान को प्रश्रय देने से असत्य की प्रतिष्ठा होती है। उन्होंने यह भी समझ लिया था कि ज्ञान का उद्देश्य व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं का उपार्जन न होकर लोक-कल्याण होना चाहिए तथा आध्यात्मिक सम्पन्नता स रहित निरी भौतिक समृद्धि श्रेयस्कर नहीं हुआ करती। भारतीय मनीषी यह भी बखूबी जानते थे कि स्वाध्याय के बिना ज्ञानार्जन का कोई अन्य सरल उपाय नहीं है। इसीलिए संस्कृत वाङ्मय में इन स्थापनाओं को पुष्ट करने वाले अगणित प्रकरण बिखरे पड़े हैं। पूरा साहित्य पढ़ने की फुरसत इस उच्च तकनीकी के व्यस्ततापूर्ण युग में न भी मिले तो रामायण और महाभारत के अवलोकन से ही बहुत कुछ पता चल जायेगा। अगर इन ग्रंथों को मूल रूप से पढने का समय न भी निकाल पाएं तो इनके संक्षिप्त संस्करण ही पढ़ लें। उससे भी यह जान लेंगे कि अष्टावक्र, कच, विश्वामित्र आदि ऐसे उदाहरण है जो भारतीय मनीषा की इन प्रवृत्तियों को पूरी तरह उजागर कर देते हैं।

कम्प्यूटर और संस्कृत

आप हंसेंगे मुझ पर, और कहेंगे-''यह कहां की बातें ले बैठा, उधार भारत का कम्प्यूटरीकरण हो रहा है और देश ''इक्कीसवीं सदी' में प्रवेश करने के लिए सारे सरंजाम इकट्ठे करने में बड़ी तेजी से जुटा हुआ है और यह ईसा से भी इक्कीस सदी पहले की बाते सुनाकर हमारा बेशकीमती वक्त बरबाद कर रहा है।'' पर मेरे भाई, यह मैं कैसे समझाऊं कि बहुत से विद्वानों की राय यह बनती जा रही है कि बीसवीं सदी का कम्प्यूटर भले ही चाहे जिस भाषा में गिटपिट करें, पर इक्कीसवीं सदी वाला कम्प्यूटर तो शायद संस्कृत ही बोलेगा, क्योंकि भाषाविज्ञान के लिहाज से संस्कृत और कम्प्यूटर का मिजाज एक-जैसा ही है। और अगर कहीं सचमुच ऐसा हो ही गया तब तो आपके लिए संस्कृत साहित्य पढ़ना आवश्यक हो जायेगा और आवश्यक हो जायेगा उन सब

*पूर्व मानव संसाधन एवं विकासमंत्री, भारत सरकार, नई दिल्ली (१९९१ ई. में प्रकाशित प्रज्ञा प्रवाह से साभार)

उपाख्यानों को जानना-समझना भी जिन्हें आप दकियानूसी बकवास कहकर रद्दी की टोकरी के हवाले कर चुके हैं। तब तो अष्टावक्र जैसों की कथा का ज्ञान आपको महिमामंडित कर सकेगा।

आप कह सकते हैं, आखिर अष्टावक्र यानी आठ जगह से टेढ़े व्यक्ति को जानने-समझने के लिए उन तमाम ग्रंथों की क्या आवश्यकता है, जबकि आज अस्पतालों में प्रतिदिन टेढ़े-मेढ़े विकलांग बालक प्रतिदिन जन्म लेते हैं। उनमें से कुछ तो आठ क्या, अठारह जगह से टेढ़े-मेढ़े होते हैं। उनको देखकर क्या अष्टावक्र के बारे में अनुमान नहीं लगाया जा सकता? यह प्रश्न तो सरल है पर जटिल है इसका उत्तर। और जटिल है यह समझना की विश्व भर में जन्म लेते ये विकलांग, विरूप, विकृत बालक एक ऐसी आनुवंशिक विकृति के दुष्परिणाम हैं, जो उन पर बलपूर्वक लादी गई है। इससे भी कहीं जटिल है यह समझा पाना कि यह विकृति, तकनीकी विकास पर आधारित एक समाजार्थिक व्यवस्था का अभिशाप है जो इन प्राणियों को जन्म से ही भोगना पड़ रहा है। इनकी चर्चा इस समय नहीं। यह तो उस प्रणाली के परिणाम हैं जिसमें कुछ को स्वस्थ एवं सबल बनाए रखने के लिए बहुतों को जन्म से ही रोगी एवं दुर्बल रहने पर ही नहीं बल्कि विकलांग होकर जन्म लेने पर विवश कर दिया जाता है। प्रसंग आने पर करूंगा इनकी भी चर्चा, क्योंकि सारी दुनिया के अस्सी प्रतिशत लोगों को इस तरह हतभाग्य बनाने का अधिकार किसी को नहीं दिया जा सकता। भगवान को भी नहीं। पर मैं जिस अष्टावक्र की बात कर रहा था, उसका मामला इनसे कुछ भिन्न है।

महाभारत के वनपर्व के अन्तर्गत तीर्थयात्रा पर्व के एक सौ बत्तीसवें अध्याय में जिस अष्टावक्र के जन्म की कथा है, मैं उसकी चर्चा कर रहा हूं। इस वृत्तांत के अनुसार *कहोड मुनि अपनी पत्नी सुजाता सहित अपने आश्रम में वेदों के अध्ययन एवं अध्यापन में लगे रहते। मुनि रात में स्वयं पढ़ते थे* और दिन में शिष्यों को पढ़ाते थे। एक दिन जब वे अपने शिष्यों के साथ स्वाध्यायरत थे, तब उन्होंने सुना कि कोई कह रहा है-*सर्वा रात्रिमध्ययनं करोषि,नेदं पितः सम्यगिवोपवर्तते*'' -''पिताजी, आप रात भर वेदाध्ययन करते रहे हैं, तो भी इस समय आप ठीक-ठीक नहीं पढ़ा पा रहे हैं।'' मुनि ने इधर उधर देखा पर समझ में नहीं आया कि यह आवाज कहां से आयी। वे पुनः शिष्यों के साथ व्यस्त हो गये। थोड़ी ही देर में फिर वही आवाज सुनाई दी ''*नेदं पितः सम्यगिवोपवर्तते*'', ''पिताजी, आप ठीक-ठीक नहीं पढ़ा रहे हैं।'' स्वाभाविक था कि शिष्यों के सामने ऐसा आरोप सुनकर कहोड मुनि अपने को अपमानित अनुभव करते। वे ढूंढने लगे कि कौन यह बात बार-बार कह रहा है? कौन यह दुस्साहस कर रहा है?

खोजते-खोजते पता चला कि उनकी पत्नी सुजाता के गर्भ में जो जीव है वही कह रहा है- ''*नेदं पितः सम्यगिवोपवर्तते।*'' अब एक विचित्र स्थिति थी। कहोड मुनि के शिष्यों की उपस्थिति में ही उनकी पत्नी की कोख में उन्हीं द्वारा स्थापित प्राणी गर्भ में ही बैठा-बैठा उनके ज्ञान को चुनौती दे रहा है। कह रहा है, ''हे पिता, आप पढ़ाने मे घोटाला कर रहे हैं'', और यह भी कह रहा है कि

"आपसे ही वेदादि शास्त्रों को सुनकर जो कुछ सीख पाया हूं उसी के आधार पर कह रहा हूं- *'नेदं पितः सम्यगिवोपवर्तते'।* चाहिए तो यह था कि कहोड मुनि प्रसन्न होते कि कुछ दिनों बाद उन्हीं के यहां जन्म लेने वाला गर्भस्थ प्राणी इतना विद्वान है कि मां के पेट से ही अपने पिता के अध्यापन की त्रुटियां बता रहा है। वह इतना तेजस्वी है कि बिना डरे हुए पिताश्री की गलतियां बता रहा है। वस्तुतः कहोड मुनि जैसे वेदाध्यायी से अपेक्षा तो यह थी कि वे इस जीव को आशीर्वाद देते और अपनी गलती सुधार लेते, पर उन्हें तो इस घटना में अपना घोर अपमान झलक रहा था। सोचने लगे गर्भ में बैठे हुए इस पिद्दी की इतनी मजाल कि श्वेतकेतु के बहनोई, उद्दालक के जमाता कहोड मुनि के वेदपाठ में दोष निकाल रहा है। बोले, "अरे, तू मां के पेट से ही इतनी टेढ़ी बातें बोलता है, अपने पिता को उसके शिष्यों के सम्मुख अपमानित करता है, जा, तू आठ जगहों से टेढ़ा हो जा- *'तस्माद् वक्रो भवितास्यष्ट कृत्वः'*- महाभारतकार कहता है, और फिर महर्षि अष्टावक्र आठ अंगों से टेढ़े होकर ही जन्मे-*"सर्वे तथा वक्र एवाभ्यजायदष्टावक्रः प्रथितो वै महर्षिः।"*

पुत्रों द्वारा अपने पिताओं की अनीति और अन्याय के विरूद्ध किए गए संघर्षों के उदाहरण तो बहुत से मिलेंगे और ऐसे प्रसंग भी पर्याप्त मात्रा में मिलेंगे जब शिष्यों ने गुरूओं को पराजित किया हो, पर ऐसा अद्भुत उदाहरण तो अष्टावक्र के उपाख्यान के अतिरिक्त अन्यत्र मिलना दुर्लभ है जहां मां के पेट से ही किसी ने अपने पिता को टोका हो-*"नेदं पितः सम्यगिरोपवर्तते"*- "पिताजी, ठीक-ठीक पढ़ाइए। ज्ञान के मामले में घपला मत कीजिए। ज्ञानगंगा को दूषित करने की चेष्टा मत कीजिए।" ज्ञान की परम्परा को निर्मल एवं पारदर्शी बनाए रखने की प्रतिबद्धता का बेजोड़ उदाहरण यह नहीं है तो और कौन-सा है? वाग्देवी सरस्वती के स्फटिक स्वच्छ प्रवाह में प्रदूषण का किंचित स्पर्श भी गर्भस्थ अष्टावक्र को सहन नहीं हुआ। पीड़ा से तिलमिला उठा वह-वह देखकर कि उसके पिता द्वारा विद्या के साथ व्यभिचार किया जा रहा है। ऐसी छटपटाहट हुई उसे, विधिवत् जनम लेने की भी प्रतीक्षा नहीं की उसने और बोल पड़ा मां के पेट से - "यह ठीक नहीं है, *नेदं पितः सम्यगिवोपवर्तते।"* पर इसका पुरस्कार क्या मिला उसे? यही न, *"तस्माद् वक्रो भवितास्यष्ट कृत्वः"*- जा, तू आठ जगहों से टेढ़ा-मेढ़ा होकर विकलांगता को प्राप्त हो।

तुम धन्य हो, अष्टावक्र! आओ, तुम्हें प्रणाम करें। तुमने हमें बताया कि ज्ञानामृत में विकृति का विष मत घोलने दो किसी को भी, चाहे वह तुम्हारे पिता ही क्यों न हो। अगर वह ऐसा करता है, तब तुम चुप मत रहो। तुमने स्थापित किया अष्टावक्र, कि ज्ञान-भ्रष्टता से मानसिक विकलांगता उपजती है, जो शारीरिक विकलांगता की तुलना में कहीं अधिक घातक है। और तुमने अपने आचरण से यह भी सिद्ध कर दिखाया था कि भारतीय भूमि पर जन्म लेने के लिए प्रतीक्षारत भ्रूण भी मानसिक विकलांगता को बेहिचक अस्वीकार कर देता है, फिर चाहे जितना कष्ट इस मार्ग में उसे उठाना पड़े। अष्टावक्र, जब तुमने अपने पिता को टोका था, तब तुम यही तो कह रहे थे कि दूषित ज्ञान को स्वीकार करने का अर्थ सत्य के स्थान पर असत्य की प्रतिष्ठा करना होता है। उससे

बुद्धिभ्रम, दृष्टिभ्रम, दिशाभ्रम- सभी कुछ उत्पन्न हो जाते है। तुमने सावधान किया था इन्हीं विविध भ्रमों के संकट से क्योंकि इनकी परिणति तो सर्वनाश के सिवा और किसी में होती नहीं। तुम यह भी बातना चाह रहे थे कि ज्ञान के क्षेत्र में कोई बात सिर्फ इसीलिए ठीक नहीं मानी जा सकती क्योंकि कोई बड़ा आदमी उसे कह रहा है। तुम रूढ़िवादिता, कठमुल्लापन, मतान्धता के विरूद्ध मां के गर्भ से ही बोले थे, अष्टावक्र!मानसिक दासता लादने की प्रक्रिया के विरूद्ध तुमने सशक्त विद्रोह का स्वर मुखरित किया था, अष्टवक्र और चेष्टा की थी स्वतंत्र, निर्भीक चिंतन के महत्त्व को समझाने की।

बात यहीं समाप्त नहीं होती। अभी तो इस उपाख्यान का एक ही अंश बताया है मैंने। अष्टावक्र का चरित्र इतना संक्षिप्त नहीं है। पूरे विस्तार में तो जाना सम्भव नहीं, किन्तु थोड़ा और लिखे बिना तो उस महर्षि के साथ न्याय नहीं हो पायेगा। पिता के शाप को स्वीकार करके अष्टावक्र ने एक टेढ़े-मेढ़े शिशु के रूप में जन्म ले लिया। परन्तु उनके जन्म लेने के पूर्व ही उनके पिता राजा जनक की सभा में पंडितों से शास्त्रार्थ में हारने के परिणामस्वरूप जल में डुबो दिए गए थे, अतः शिशु अष्टावक्र ने जन्म के बाद अपने पिता को नहीं देखा था। कालांतर में जब वे कुछ बड़े हुए तब उन्हें पता चला कि धन-प्राप्ति की इच्छा से कहोड मुनि जनक के दरबार में गए थे जहां बन्दी नामक पंडित ने यह शर्त रखी थी कि शास्त्रार्थ के बाद जो हारेगा उसे जल में डुबो दिया जाएगा। अनेक पंडित उससे हार गए थे और उन्हें जल-समाधि दे दी गई थी। कहोड मुनि भी उन्हीं में से एक थे। अष्टावक्र ने निश्चय किया कि वे अपने पिता की पराजय का बदला लेंगे। उन्होंने यह नहीं कहा कि "अच्छा हुआ मर गया, अपने किए का फल पा गया, वह बाप कहलाने लायक था भी नहीं। जो अपने पुत्र के जन्म के पूर्व ही उसे विकलांग होने का शाप दे दे, ऐसे निर्दयी को पिता क्यों माना जाये?" आजकल का कोई 'जीनियस' होता तो जनक के दरबारी पंडित को टेलेक्स भेजता और कहता, "वेल इन, दि रैस्कल डिजर्व्ड इट" (अच्छा किया, वह शैतान कहोड इसी काबिल था), पर बालक अष्टावक्र के जीवन-मूल्य इससे भिन्न थे, अतः उसने पिता के अपमान का हिसाब चुकता करने का ही विचार किया।

जनक के दरबार में जाने का निर्णय तो कर लिया, परन्तु वहां पहुंचे कैसे? विरूप शरीर, छोटी वय, कौन जाने देगा पंडितों से भरी उस सभा में! जनक जैसे राजा की सभा कोई मामूली जगह तो है नहीं। लेकिन दृढ़-निश्चयी अष्टावक्र जा ही तो पहुंचे वहा। द्वारपाल राकते रह गए, पर उनके तेज से हतप्रभ होते चले गए और अन्ततोगत्वा जनक से उनका साक्षात्कार हो ही गया। राजा जनक ने अष्टावक्र का अभिप्राय सुनकर उन्हें बहुत समझाया कि बन्दी से शास्त्रार्थ करना वृथा है, उसे अभी तक कोई हरा नहीं सका है। किन्तु अष्टावक्र ने उत्तर दिया, "यह सब वृत्तांत जानकर ही तो यहां आया हूँ। मैं यहां 'अद्वैत ब्रह्म' की चर्चा करने आया हूं-*ब्रह्माद्वैतं कथयितुमागतोऽस्मि।* बुलाइए उन पंडितराज बन्दी को, आज मैं उनकी बोलती बंद कर दूंगा। उनसे मिलकर उनका तेज उसी तरह हरण

कर लूंगा जैसे सूर्य तारामंडल को निष्प्रभ कर देता है।'' यह सुनकर जनक ने सोचा कि यह बालक तो बड़ा अभिमानी प्रतीत होता है। तब उन्होंने स्वयं अष्टावक्र की परीक्षा ली और जान लिया कि शरीर से टेढ़ा-मेढ़ा यह बालक तो विद्वता की खान है और उन्हें कहना पड़ा-''*न ते तुल्यो विद्यते वाक्प्रलापे, तस्माद् द्वारं विरराम्येव बन्दी*''-वाद-विवाद करने में आपके तुल्य कोई नहीं है, अतः आपको मण्डप में जाने के लिए द्वार देता हूं। जाइए, बन्दी से मिलिए।'' और अष्टावक्र का बन्दी से शास्त्रार्थ निश्चित हो गया।

कहते हैं कि जब अष्टावक्र ने पंडितों की उस सभा में प्रवेश किया तब उनके शरीर की कुरूपता को देखकर वे सब हंसने लगे। इस पर अष्टावक्र ने जनक से कहा, ''महाराज! मैं तो पंडितों से अद्वैत ब्रह्म की चर्चा करने आया था, पर यह सब तो मात्र चर्मान्वेषी हैं। इन्हें केवल चमड़े की पहचान है, उनके आगे इन्हें कुछ पता नहीं है, तभी तो यह महानुभाव मेरी चमड़ी देखकर हंस रहे हैं। महाराज जनक, आपके दरबार में यदि पंडित हो तो उन्हें बुलाइए, इन चमड़े के सौदागरों से क्या शास्त्रार्थ करूं?'' सब सन्न रह गए, बालक अष्टावक्र से यह कटु सत्य सुनकर। भान करा दिया उस काली चमड़ी वाले लूले-लंगड़े बालक ने कि मनुष्य केवल शरीर ही नहीं है, बाहरी शरीर को देखकर किसी को तिरस्कृत मत करो और यह भी समझा दिया उसने उन ज्ञानोन्मत्त पंडितों को कि इस शरीर को धारण करने वाला 'आत्मा' सबमें एक-जैसा है। शास्त्रार्थ हुआ और चकित रह गए सारे पंडित, जब अष्टावक्र ने उस सभी को पराजित कर दिया, पंडितराज बन्दी को भी! हां, उस दिन जनक के यज्ञ-मण्डप में उस बन्दी ने, जिसने अगणित विद्वानों को पराजित कर जल में डुबो दिया था, अष्टावक्र से हार मान ली। और फिर अष्टावक्र ने राजा जनक से कहा, ''महाराज! आज तक इस बन्दी ने बहुत से विद्वानों को पराजित करके जल-समाधि दी है, अब इसकी बारी है-'*अप्सु निमज्जयेनम्*- इसे जल में डुबो दीजिए।''

जनक के सामने और कोई चारा नहीं था। बोले, ''हां, लो, यह है बंदी। अष्टावक्र! तुम्हारा इस पर पूर्ण अधिकार है, जो चाहे सो करो।'' बंदी ने कहा, ''मुझे जल में डूबने का कोई भय नहीं, क्योंकि मैं तो वरूण का पुत्र हूं और अपने पिता के राज्य में हो रहे यज्ञ के लिए यहां से विद्वान पंडितों को भेज रहा था। शास्त्रार्थ में पराजित करना और जल में डुबो देना तो एक नहाना मात्र था विद्वानों को वहां भेजने का। अब मेरे पिता का यज्ञ समाप्ति पर है, सभी ऋषि-मुनि वहां से लौट रहे हैं। अष्टावक्र! वह देखों, बहुत दिनों से गायब तुम्हारे पिता कहोड मुनि इसी समय लौट रहे हैं।'' तब न केवल कहोड मुनि बल्कि वे, सभी विद्वान जिन्हें बन्दी द्वारा जल में डुबोकर वरूण लोक भेजा गया था, वापस लौट आए। उन सभी ने अष्टावक्र की पूजा की, और जिस पिता ने उन्हें शाप दिया था, उसी ने कहा, ''हे पुत्र, तुमने मेरा ही नहीं, इन सबका उद्धार किया है। मुझे क्षमा करो। चलो, समंगा नदी में स्नान कर लो, तुम्हारे अंग-प्रत्यंग ठीक हो जाएंगे।'' वेदव्यास जी ने यही लिखा है कि उसके बाद अष्टावक्र के सभी अंग सीधे हो गए, उनकी विकलांगता नष्ट हो गई।

तो ऐसा था अष्टावक्र! निर्भीक, तेजस्वी, सत्यचेता एवं ब्रह्मवेत्ता, विद्या और विनय से मंडित, शास्त्रों का पंडित, निष्कलुष एवं निर्मल ज्ञान का आराधक तथा जीवन-मूल्यों का साधक। विकलांगता का अभिशाप लेकर आया था पृथ्वी पर, किन्तु लौट्या समांगता का वरदान बनकर। कहा था उसने, *''ज्ञान की पीयूषधारा पारदर्शी रहेगी, स्वच्छ रहेगी, उसे गंदा करने का अधिकार किसी को नहीं। मिथ्या ज्ञान का प्रसार मैं किसी को नहीं करने दूंगा। अपने पिता को भी नहीं।'' कितना कुछ सहन किया था उस तपस्वी ने! पर, कैसा वज्र संकल्पवान था अष्टावक्र! विकलांगता जैसी घोर यंत्रणा भी उसे हतोत्साहित कर नहीं पायी थी। और चुनौती दी थी फक्कड़ अष्टावक्र ने अपार सम्पदा के स्वामी वरूण के पुत्र को। कहा था, ''लौटाओ मेरे देश के उस पांडित्य को, जिसे तुमने अपने पिता की सेवा में भेज दिया है, अन्यथा तैयार हो जाओ डूब मरने के लिए। राष्ट्र की मेधा पराधीन हो जाए, प्रतिभा पलायन कर जाए, और वह भी मेरे रहते, असंभव!'' कौन सुनाएगा मेरे देशवासियों को अष्टावक्र का यह पावन चरित्र? कैसे जानेंगे आज के छात्र इस उपाख्यान को? नयी शिक्षा नीति में तोक इस सबका उल्लेख भी कहीं नहीं है। उसके लेखकों को तो शायद हर जिले में एक दून स्कूल खोलकर पश्चिम के उच्छिष्ट को प्रसाद बनाकर बांटने से ही फुरसत नहीं है।*

मैं जब-जब अष्टावक्र का उपाख्यान पढ़ता हूं, तब-तब मेरे मस्तिष्क में यह विचार कौंध उठता है कि स्थापित सत्ताओं की प्रकृति में आज तक कोई परिवर्तन दिखायी नहीं दिया है। वे अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए ज्ञान के प्रसार के समस्त अभिकरणों को अपनी मुट्ठी में रखना चाहती हैं और यहां तक कि वे ज्ञान के साथ बलात्कार करने में भी नहीं हिचकतीं। और अगर कोई इस षड्यंत्र को पहचान कर विरोध का स्वर मुखरित करते हुए कहता है-*'नेदं सम्यगिवोपवर्तते'* - यह ठीक नहीं है, तब उसके लिए उत्तर है-*'तस्माद् वक्रो भवितास्यष्ट कृत्व:'*- जाओ, विकलांग बनकर घिसटते रहो। जो लोग व्यवस्थाओं पर अधिकार जमाए बैठे हैं, वे कहते हैं, ''या तो सुविध ाभोगी बनकर वही सीखो, जा हम पढ़ा रहे है, या फिर विरूप, विकलांग बनकर भीख मांगो!'' कैसे समझाऊं अपने देश के बुद्धिजीवियों को आजकल का यह गोरखधंधा कि जिसमें बहुत से लोगों को स्वस्थ एवं सामान्य शरीर धारण करने की कीमत मानसिक विकलांगता स्वीकार करके चुकानी पड़ती है। कभी-कभी तो मनुष्य का शरीर और मन दोनों ही असहाय बना दिये जाते हैं। और सबसे अधिक आश्चर्य तो यह है कि वह सब कुछ होता है ज्ञान और विज्ञान की आड़ में आधुनिकीकरण के नाम पर।

सुकरात एवं ईसा की कहानी तो सब जानते हैं, दोहराने से क्या फायदा! पर गैलीलियों के बारे में शायद कुछ लिखना जरूरी है। गैलीलियों गैलिली सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी में एक इतालवी खगोलशास्त्री था। वह यूरोप का प्रथम वैज्ञानिक था जिसने टेलिस्कोप का प्रयोग ग्रह-नक्षत्रों के अध्ययन के लिए किया था। गैलीलियों के जन्म से इक्कीस वर्ष पूर्व पोलैंड के खगोलविद् मिकोलाई कोपरनीक, जिनका लैटिन उच्चारण निकोलस कोपरनिकस अधिक लोकप्रिय है, का एक ग्रंथ

प्रकाशित हुआ था, जिसमें किसी यूरोपीय विद्वान ने सर्वप्रथम यह प्रतिपादित किया था कि पृथ्वी आदि ग्रह सूर्य के चारो ओर चक्कर लगाते हैं। स्पष्ट ही यह अभिमत बाइबिल के विरूद्ध था। पर यह ग्रंथ लिखा गया था लैटिन भाषा में और उन दिनों अधिकांश कैथोलिक लैटिन नहीं पढ़ा करते थे, अत: काफी दिनों तक इस ग्रंथ की ओर उनका ध्यान नहीं गया। लेकिन जब मार्टिन लूथर के कैथोलिक अनुयायियों ने इस ग्रंथ का प्रबल विरोधा करना शुरू किया तब चर्च ने इस पुस्तक को धर्म-विरोधी निषिद्ध साहितय बताकर प्रतिबंधित कर दिया। गैलीलियों ने जब टेलिस्कोप की सहायता से ग्रगहों की गति का सूक्ष्म अध्ययन किया तो उसने कोपरनिकस का समर्थन कर दिया। उन दिनों यूरोप के अनेक देशों में चर्च ही स्थापित व्यवस्था का सर्वोच्च प्रतीक था। वही राजा था, वही धर्म था, वही ज्ञान था, वही विज्ञान था, वही गुरू था और वही था शिक्षक। उसकी स्थापनाओं में दोष-दर्शन कैसे सहन किया जा सकता था? अष्टावक्र की ही भांति गैलीलियों ने भी कहा था, "चर्च द्वारा पढ़ाया जा रहा खगोल ठीक नहीं है-*'नेदं सम्यगिवोपवर्तते'* और चर्च ने उसे अपराधी घोषित कर दिया। चर्च ने बीमार गैलीलियों को चेतावनी दी-"अपनी स्थापनाएं वापस लो, उनकी स्वयं ही निंदा करो या फिर अपाहिज बनने को तैयार हो जाओ।" इतिहास साक्षी है कि सत्य-शोधक वैज्ञानिक गैलीलियों को घर में ही नजरबंद रखकर विकलांगता भोगने को विवश किया था चर्च ने।

सत्य और ज्ञान का गला घोंटने की यह गाथा गैलीलियों पर ही समाप्त नहीं होती। सत्ता के उच्चतम सोपान के अधिष्ठाता अपने अस्तित्व के औचित्य को सिद्ध करने के लिए प्राय: असत्य को सत्य और अज्ञान को ही ज्ञान के रूप में प्रचारित करते पाए गए हैं। जब कोई उनके पाखंड को भांप लेता है तब पहले तो उसे सुविधाएं देकर लुभाने की और अगर वह अपनी हठ न छोडते तो उसे अपंग बनाने का भय दिखाकर रास्ते पर लाने की कोशिश करते आ रहे हैं ये लोग। दुनिया ने क्रान्ति की वेगवती धाराओं द्वारा निहित स्वार्थों की नींव पर खड़े कई राजमहल ध्वस्त होते देखे हैं और देखे हैं बहुतेरे क्रान्तिवीर, जो उन्हीं धाराओं की उत्तल तरंगों के शीर्ष पर आरूढ़ होकर सत्ता के शिखरपीठ पर आसीन हुए और फिर नयी व्यवस्था के लिए निहित स्वार्थों के बंदी बनकर रह गए। इसी इतिहास-बोध को मुखरित करने वाले मिलोविन जिलास को वर्षों तक जेल में सड़ते भी हमने देखा है और अनुभव किया है बोरिस पास्तरनाक की पीड़ा को, समझा है सोल्झेनित्सिन की वेदना को और सखारोव दम्पति द्वारा भोगी जा रही यातनाओं को। सुनेंगे आप सखारोव और उसकी पत्नी की यंत्रणा? भौतिकी के अनुसंधानों के लिए नोबेल पुरस्कार प्राप्त रूसी वैज्ञानिक आंद्रे सखारोव और उसकी पत्नी को वर्षों तक नजरबंद रखा गया। सखारोव को पुरस्कार लेने भी रूस के बाहर नहीं जाने दिया गया, और उसकी पत्नी को प्राणघातक, गंभीर हृदयरोग के होते हुए भी, इच्छानुसार इलाज की भी इजाजत नहीं दी गई। दोनों को सदा पुलिस के पहरे में फ्लैट में बंद रखा गया। बाहरी दुनिया से सम्पर्क की कोई अनुमति नहीं, कोई चिट्ठी भी नहीं, अखबार भी नहीं। बस पड़े रहो बर्फ से ढंके उस एकान्त कस्बे में। बनाकर रख दिया न अपाहिज, क्योंकि सखारोव अष्टावक्र की ही भांति यह

कहने का साहस कर सके थे-''नेदं सम्यगिवोपवर्तते''- वे कर चुके थे रूसी नीतियों की खुलकर आलोचना। निःशस्त्रीकरण और नाभिकीय शस्त्रें सम्बन्धी रूसी नीतियों की निष्पक्ष समीक्षा। विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की मांग की थी सखारोव ने, बदले में मिला उन्हें एकान्तबंदीवास।

हमने उन व्यवस्थाओं को भी देखा है जो दुनिया में मानव अधिकारों और जनतंत्र की दुहाई देते नहीं थकतीं, पर अपने घर में करोड़ों काली चमड़ी वालों को नारकीय जीवन व्यतीत करवाने में तनिक भी नहीं सकुचाती और न ही कोई शर्म आती है उन्हें दुनिया क बर्बर तानाशाहों का खुलेआम समर्थन करने में। जानते नहीं क्या कि अमेरिका में नीग्रो लोगों के साथ क्या बर्ताव होता है, और दक्षिण अफ्रीका में इंग्लैंड क्या करवा रहा है? नेल्सन मंडेला ने भी तो यही कहा था कि ''ये गोरी चमड़ी वाले आदमी को आदमी नहीं समझते, उसे दुत्कारते हैं। ये चमड़े के सौदागर हैं। मैं इनसे बहस करने को तैयार हूं और इन्हें इन्सानियत का पाठ पढ़ाने को भी तैयार हूं। (अष्टावक्र की भाँति) मैं इन्हें पराजित कर दूंगा।'' किन्तु न्यस्त स्वार्थी व्यवस्था के भयभीत, कापुरूष पक्षधरों में सत्य का तेज सहन करने की शक्ति कहां? उन्होंने तो मंडेला को जेल में ठूंस दिया। अमेरिका वियतनाम में और अल साल्वाडोर में किन मानव-अधिकारों का संरक्षण करता रहा और रूस ने हंगरी, चैकोस्लोवाकिया, पोलैंड और अफगानिस्तान में किस शोषण के विरोध में टैंक और फौजें भेजी? इंग्लैंड ने फाकलैंड द्वीप में क्या किया और आयरलैंड में चलता आ रहा संघर्ष किस बात का द्योतक है? केवल एक बात का, और वह यह है कि निहित स्वार्थी व्यवस्था छल, बल और कौशल से झूठ को सच और अज्ञान को ज्ञान बताना चाह रही है। और जो कोई उनको टोकता है, सच बोलने का साहस दिखाना चाहता है, उसे अपाहिज बना दिया जाता है। आदमी ही नहीं, देश, देशों का इतिहास, भूगोल, राष्ट्रों का जीवन सब-कुछ टेढ़ा-मेढ़ा कर दिया जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चल रहे इस प्रपंच के दुष्चक्र में हमारा देश भी फंसाया जा रहा है। ऐसा नहीं है कि पहली बार ही विदेशियों की गृद्ध दृष्टि भारत पर पड़ी है। सच तो यह है कि ईसा की कई शताब्दी पूर्व से इस देश पर जो आक्रमण प्रारंभ हुए वे आज तक कभी बंद नहीं हुए। भारत की भौतिक सम्पन्नता, आध्यात्मिक समृद्धि, नैसर्गिक सुन्दरता, विशाला एवं अत्याधिक उर्वर भूमिखंड अद्वितीय ऋतुचक्र और यहां प्रस्फुटित ऋतंभरा प्रज्ञा ने अनेक साम्राज्य-पिपासुओं को विधाता की सृष्टि के इस अनुपम रत्न पर अधिकार करने के लिए ललचाया है। पारसी, यूनानी, शक, हूण, कुषण, तुर्क, मंगोल, अफगान, मुगल, डच पुर्तगाली फ्रांसीसी-अंग्रेज सभी ने तो यहां अपने उपनिवेश बनाने का यत्न किया है।

पिछले दो-तीन हजार वर्षों का इतिहास साक्षी है कि कैसे भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर दुर्दान्त, दिग्विजयी आक्रांता आए और कैसे वे लौटा दिए गए। कैसे सिंध, पंजाब एवं कश्मीर में अड्डा जमाने वाले विदेशी क्षत्रप अंततोगत्वा भारतीय जीवन में घुल-मिल गए। कैसे बहुत सी

अक्खड़ और फक्कड़ जातियां यहां दहाड़ती हुई आयीं और भारतीय संस्कृति की ऊर्जस्वी भागीरथी के वेगवान प्रवाह ने उनके कोने घिस-घिसकर उन्हें शालिग्राम बना दिया। कैसे यूनानी मिनोन्डर स्यालकोर्ट का मिलिन्द बन गया और मिलिन्द प्रश्न के रूप में उसकी तात्त्विक जिज्ञासा बौद्ध साहित्य का अद्‌भुत अलंकार बन गई और कैसे हेलियोडोरस ने भागवत धर्म स्वीकार किया। सारी दुनिया जानती है कि ईसा के आविर्भाव के बहुत पहले ही इतना सब घटित हो चुका था पर उन दिनों भारतीय समाज की पाचनशक्ति तीव्र थी। भारतीय सांस्कृतिक जीवन में अनेक तत्वों को आत्मसात कर सकने की अद्‌भुत क्षमता थी उन दिनों, इसीलिए वह इन सब विजातीय द्रव्यों से भी पोषण ग्रहण कर सका। भारत के उत्तर-पश्चिम में आज भी इस सांस्कृतिक प्रक्रिया के चिन्ह विद्यमान हैं। देश के भीतर भी ईसा से कई शताब्दियों पहले जब धर्माचार्यों ने, मठाधीशों ने कर्मकाण्ड को ही धर्म बताना शुरू किया था और धर्म को निहित स्वार्थों की पूर्ति का साधन बनाने की चेष्टा की थी तब प्रगटे थे महावीर और बुद्ध जिन्होंने अष्टावक्र की ही तेजस्विता प्रदर्शित की थी। कह दिया था इन दोनों ने, "अधर्म को धर्म बताने की चेष्टा मत करो।" और कहा था इन्होंने, "ओ धर्मोपदेशको! तुम्हारा बताया मार्ग सम्यक नहीं है-नेदं सम्यगिवोपवर्तते- पाखंड को धर्म बताने का दुष्कर्म मत करो। आओ, धर्म की सम्यक व्याख्या सुनो। हम दिखा रहे हैं तुम्हें अहिंसा और शांति का सम्यक् मार्ग। ईसा के बहुत पहले भी यदि किसी ने, चाहे वह पराया हो या अपना, भारतीय चेतना को पंगु बनाकर जड़ीभूत करने की चेष्टा की, तत्त्व को केवल नाम और रूप से ही व्याख्यायित करने का यत्न किया तो देश की मनीषा ने उसे सहन नहीं किया, और अष्टावक्र जैसे विद्रोहियों को उत्पन्न कर दिया। लेकिन यह सब तो आज से इक्कीस सौ वर्ष से पहले की घटनाएं हैं और आप तो आने वाली इक्कीसवीं सदी के मादक स्वप्न देखने में तल्लीन हैं। ऐसे में तो यह सब बातें आपको 'बोर' कर रही होंगी। आजकल लोगों ने ऊबना बंद कर दिया है, अब वे 'बोर' जो होने लगे हैं। ऊबना तो दकियानूसी है और 'बोर' होना है आधुनिक। जी हां, 'माड'। तो आप ऊबें नहीं, इसलिए लम्बी चर्चा नहीं करता।

अशोक और मौर्य साम्राज्य के बारे में क्या लिखूं? उनके बारे में तो बहुत कुछ पता है आप सबको और पता है गुप्त साम्राज्य के बारे में भी। यह सब भारत के वैभव के दिन थे। चतुर्दिक यश के दिन थे। तब हम थे संस्कृति के संदेशवाहक और कहलाते थे जगद्‌गुरू। ज्ञान, विज्ञान, साहित्य स्थापत्य कला-कौशल, कृषि, व्यापार-सभी में अग्रणी थे हम लोग। भारत उन शताब्दियों में श्रीसम्पन्न भी था और आध्यात्मिक रूप से समृद्ध भी। न केवल गुप्त साम्राज्य बल्कि महाकौशल, वाकाटक, पल्लव, चोल, चेर, पांड्य शक्तियां भी भारतीय जीवन को समृद्ध बना रही थीं इस बीच हूण आए, पराजित हुए और लौट गए। कालक्रम से गुप्त साम्राज्य में जर्जरता आयी तो आधी शताब्दी तक राजनीतिक शक्तियां आपस में टकराने लगीं। तब उदित हुआ हर्ष जैसा पराक्रमी। सातवीं शताब्दी के मध्य तक हर्ष भारतीय राजनीतिक रंगमंच पर जाज्वल्यमान नक्षत्र की भांति प्रकाशमान रहा और

तब तक किसी विदेशी की हिम्मत भारत पर आक्रमण करने की नहीं हुई। भारत उन दिनों तक विश्व को अजेय शक्ति माना जाता रहा है। यहां तक कि उन अरब विजेताओं ने, जिन्होंने हजरत मुहम्मद साहब के देहान्त के पचास वर्षों में आधे विश्व पर अधिकार कर लिया था और गोबी के मरूस्थल से अटलांटिक महासागर तक इसलाम की ध्वजा फहरा दी थी, भारत की तरफ मुंह नहीं मोड़ा। ऐसी थी उन दिनों भारत के पराक्रम की प्रतिष्ठा। यही वे दिन थे जब हमें लाग सोने की चिड़िया समझते थे और हाथ मलते रहते थे हमारी सम्पदा देखकर। सोचते थे कि कब भारत की शक्ति क्षीण हो और कब झपटूटा मारकर इसे नोंच-खसोट डालें।

न जाने क्या हुआ कि सातवीं शती में सम्राट हर्ष की मृत्यु के बाद, भारत के उत्तरी भाग में राजनीतिक शक्ति का केन्द्रबिन्दु भर ही नहीं सका। हर्ष का साम्राज्य बिखर गया और बिखर गई भारत की सैन्य शक्ति। उत्तरी-पश्चिमी सीमाएं शनैः-शनैः असुरक्षित होती चली गई और देश में छोटे-छोटे राजे-रजवाड़े अपनी अहम्मन्यता के शिकार परस्पर ईर्ष्या, द्वेष एवं षड्यंत्रों से ग्रस्त होकर पनपने लगे। तब नवीं शताब्दी तक भारत लगभग सुरक्षित ही रहा। फिर हुए गजनी के महमूद के आक्रमण और उसने भारत की उत्तरी-पश्चिमी सीमा की सुरक्षा व्यवस्था तहस-नहस कर डाली। महमूद गजनवी से मुहम्मद गौरी तक लूट और विनाश का ऐसा तांडव मचा कि उसका उदाहरण अन्यत्र मिलना मुश्किल है। उन्हीं दिनों मथुरा लुटी, सोमनाथ टूटा और लुटा और टूटे हजारों पूजा-स्थल। महमूद गजनी द्वारा मथुरा की लूट का वर्णन करते हुए विल ड्यूरां ने अपनी पुस्तक 'दि स्टोरी ऑफ सिविलाइजेशन' में लिखा है, "At Mathura, he took upon the temple, its statues of gold, silver and jewellery; he expressed his admiration for the architecture of the great shrine, judged that its duplication would cost one hundred million dinars and the labour of two hundred years and then ordered it to be soaked in naphtha and burnt to the grounds. -मथुरा में उसने मन्दिर, उसकी सोने की मूर्तियां, चांदी और आभूषण लूटे, उसने मन्दिर के महान वास्तु-शिल्प की प्रशंसा की, विचार किया कि ऐसा ही दूसरा मंदिर बनवाने में दस करोड़ दीनारे और दो सौ वर्ष लगेंगे और फिर उसने मन्दिर को आग लगाकर भूमिसात करने का आदेश दिया।"

इस कदर लूटा महमूद गजनवी ने भारत को कि वह विश्व का सर्वाधिक धनी राजा बन गया। लूटपाट का यह सिलसिला बहुत दिनों तक चलता ही रहा। कभी मुहम्मद गोरी ने लूटा, कभी तैमूर लंग ने, तो कभी नादिरशाह ने। मयूर सिंहासन, कोहनूर हीरा, और भी न जाने कितने बहुमूल्य मणिरत्न, सुवर्ण-रजत भंडार लूट लिये गए। आपसी फूट की कितनी कीमत चुकानी पड़ी हमें। बारहवीं शताब्दी में कुतुबुद्दीन ऐबक को सौंपी गई दिल्ली की सल्तनत और फिर सोलहवीं शती के प्रारम्भ से अठारह सौ सत्तावन तक दिल्ली पर कमोवेश अधिकार रहा मुगल वंश का। पहले ईस्ट इंडिया कम्पनी के माध्यम से और बाद में दिल्ली पर अधिकार करके अंग्रे ने क्या कुछ दिया, उसे भी बताऊंगा, पर थोड़ा ठहरकर। पुरानी बातों का सिलसिला अब खत्म ही करने वाला हूं। भारत पर

गजनी के महमूद से बाबर तक की विजय के बारे में विल ड्यूरां ने जो लिखा है उसे बताए बगैर तो बात अधूरी ही रह जायेगी। तो सुनिए, उसने क्या लिखा है? वह कहता है, "It is sa discouraging tale, for its evident morral is that civilisation is sa precarjous thing, whose delicate complex of order and liberty, culture and peace, may at anytime be overthrown by barbarians invading from without and multiplying from within."

अर्थात् यह हताशा भरी कहानी है क्योंकि यह इस सन्देश की साक्षी है कि सभ्यता एक अस्थायी वस्तु है जिसकी व्यवस्था, स्वतंत्रता, संस्कृति और शान्ति का नाजुक ताना-बाना कभी भी बाहरी बर्बर आक्रान्ताओं और भीतरी शत्रुओं के प्रहार से ध्वस्त किया जा सकता है। और फिर भारतवासियों को चेतावनी देता है कि 'The bitter lesson is the price of civilisation. A nation must love peace but keep its powder dry."

अर्थात् जो शिक्षा हमें मिलती है वह है सभ्यता की कीमत के बारे में। किसी देश को शान्ति से प्रेमपूर्वक तो रहना चाहिए परन्तु अपने हथयारों को भी तैयार रखना चाहिए।

भारत के लोगों ने तो शायद सोचा था कि बारूद के ऐर पर बैठकर शांति का विचार कैसे आ सकता है। हम तो कहते रहे हैं कि 'शान्तिरेव शान्ति' शांति भी शांत रहे। शांति-स्थापना की अशांति को भी हमने कभी उचित नहीं माना। लेकिन बर्बर, असभ्य हिंसक और निहित स्वार्थों में लीन लोगों से बचे रहने का प्रबन्ध रखना भी तो जरूरी है। दोनों में संतुलन रखे बगैर संस्कृति की रक्षा करना आज के युग में सम्भव नहीं।

थोड़ा धैर्य और धारण कीजिए। उनसवीं और बीसवीं शताब्दी की चर्चा के पूर्व एक-दो महत्वपूर्ण बातें और याद दिला दूं, भले ही आप नाराज होकर मुझे मारने ही क्यों न लगे! उन दो-चार घटनाओं का उल्लेख करने का लोभ तो हरगिज संवरण नहीं कर पा रहा हूं। जब विश्व में इस्लाम का प्रसार हो रहा था तो उसी समय के आसपास भारत में शंकराचार्य भी साधनारत थे। पता नहीं कैसे उस मनीषी को यह आभास हो गया कि दुर्बल राजशक्ति इस देश की एकात्मता का संरक्षण नहीं कर सकेगी तो उसने सांस्कृतिक चेतना की अलख जगाई। एक ओर तो दार्शनिक स्तर पर उपनिषदों की स्थापनाओं की युगानुकूल व्याख्याएं दीं तथा भारत की मूल चिंताधारा के प्रवाह के अवरोधों को दूर किया, दूसरी ओर चारों दिशाओं में चारो धाम और शक्तिपीठों का पुनर्जागण भी कर दिखाया। शंकर स्वामी ने ठीक अष्टावक्र की ही भाँति कहा था, 'नेदं सम्यगिवोपवर्तते'। ह्रासमान व्यवस्थाओं के धार्मिक मठाधीश बने बैठे थे लोग निहित स्वार्थों के पोषण के ऐल मतिभ्रम फैला रहे हैं, वह ठीक नहीं है। आओ, शास्त्रार्थ करें। आओ, समझे *'सर्वमिदं खलु ब्रह्म', 'अहं ब्रह्मास्मि' तथा 'तत्त्वमसि'।* कठमुल्लावाद के विरूद्ध शंकर डटकर खड़ा हो गया। उसने कहा, "वह देखे, वटवृक्ष के नीचे अद्‌भुत आश्चर्य! वहां नौजवान गुरू वयोवृद्ध शिष्यों को मौन उपदेश दे रहा है।" शंकर ने एक वाक्य में ही समझा दिया कि ज्ञान के क्षेत्र में आयु का महत्व नहीं है, महत्व है ज्ञान

की पकड़ का, अनुभूति की तीव्रता का, सत्य के साक्षात्कार का। उसने आवाहन किया सत्य की साधना का, भारतीय मनीषा के नवजागरण का। जानते हैं, इसका परिणाम क्या हुआ? देश में सांस्कृतिक चेतना की ऐसी पीयूषधाराएं प्रवाहित होने लगी कि जिनके रस से परिपुष्ट होकर भारतीय मनीषा उस झंझावात के समक्ष भी जीवित रह सकी, जिसने एशिया और यूरोप की प्राचीनतम संस्कृतियों का विध्वंस कर दिया था, जिसने पुस्तकों को जलाकर उनकी आंच में हम्माम गरम किए थे। इसी सांस्कृतिक प्रवाह से उपजे थे अनेक आचार्य संत और भक्त जिन्होंने भारत की पहचान निरन्तर बनाए रखी। गिनती करना सम्भव नहीं, देश का कोई कोना, कोई भाषा, कोई क्षेत्र, कोई वर्ण नहीं बचा, जिसमें भारतीय संस्कृति की ऊर्जा प्रस्फुटित न हुई हो। भारत में जब मुस्लिम शासक आए और यहां रहे, तब जो वैचारिक आदान-प्रदान हुए उनका परिणाम आज भी दिखाई देता है। इसी विचार-मंथन में से जन्मे थे सूफी संत। सूफी मत तो शंकर के वेदान्त और इस्लाम के सम्मिश्रण के ही परिणाम है। सूफियों ने सिखाया दुनिया को वहाद-अल-वजूद-*एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति*। उन्होंने बताया कि विश्वात्मा तो एक है। सृष्टि उसी का विविध रूपों में प्रकटीकरण है और इसी अन हल-हक का ज्ञान सत्य का ज्ञान है। इसी सिद्धान्त पर मंसूर फांसी पर चढ़ गया था। जब उसे फांसी पर चढ़ाया जा रहा था तब भी उसने कहा था- 'अन-हल-हक -*अहं ब्रह्मास्मि*' और यही कहते-कहते वह ब्रह्म में लीन हो गया।

कैसे समझाऊं आज शंकराचार्य की दूरदृष्टि का महत्व। न जाने कैसे समझ लिया था उस ऋषि ने कि यदि भारत की धन-सम्पत्ति लूट गई तो शायद पुनः अर्जित हो सकती है, पर सांस्कृतिक सम्पदा नष्ट हो गई तो भारत नष्ट हो जायेगा। भारत की मनीषा को विनाश से बचा लिया शंकराचार्य ने। अष्टावक्र ने यही तो कहा था, शारीरिक विकलांगता से अधिक घातक है मानसिक विकलांगता। आत्मबोधकारी ज्ञान, इतिहास का स्वच्छ, पारदर्शी, सम्यक बोध राष्ट्रों की चेतना का उत्स है, मूल स्रोत है। इस बात को कलुषित मत होने दो, इसकी रक्षा के लिए जो कुछ करणीय है, सब करो। इसी दृष्टि का परिणाम है कि भारतीय सांस्कृतिक प्रवाह की भागीरथी ने पारसीक, ग्रीक, हूण, तुर्क, अफगान, गंगोल जैसे जातियों को, अनेक दर्शनों, मसीहाओं और पैगम्बरों को सारस्वत दर्शन को आत्मसात किया और विश्व संस्कृति के महासमुद्र को अपने अमृतजल से परिपूर्ण कर दिया। इतिहास साक्षी है कि अठारह सौ सत्तावन तक भारत का मानस पराभूत नहीं हुआ था। ज्ञान-सूर्य भले ही न तप रहा हो, पर ज्ञानद्वीप तो अवश्य जल रहा था।

फिर आया अंग्रेजी शासन। अठारह सौ सत्तावन का स्वतंत्रता संग्राम हम हार गए। दिल्ली पर अधिकार हुआ फिरंगी का। देश जा पड़ा शोषण के भयंकर शिकंजे में। सच तो यह है कि अंग्रेजों द्वारा शोषण की प्रक्रिया उसके भी सौ साल पहले से चल रही थी। वह सब जानना बहुत ही आवश्यक है। देशवासियों से अनुरोध है कि उस सब घटनाचक्र को पूरी गहराई से समझ लें। उसी में छिपे हैं इक्कीसवीं सदी में एक विशेष ढंग से ढकेले जाने के बीज।

सन् १६०० में बनाई गई थी एक कम्पनी, एलिजाबेथ प्रथम के शासनकाल में। उसका पूरा नाम था 'द गवर्नर एण्ड कम्पनी ऑन मर्चेन्ट्स ऑव लण्डन ट्रेडिंग विद द ईस्ट इन्डीज', संक्षेप में ईस्ट इंडिया कम्पनी। इस कम्पनी के विस्तार के लम्बे इतिहास को जरूर पढ़ना चाहिए, पर आज नहीं। वह हो जायेगा विषयांतर और लेख बन जायेगा पूरी पुस्तक। पर यह जरूर याद रखना चाहिए कि डच, पुर्तगाली, फ्रांसीसी–सब देशों की व्यापारी संस्थाओं से टकराते, जूझते, चालाक ब्रिटिशों की कम्पनी धीरे-धीरे बड़े क्षेत्रों और फिर बड़े-बड़े नवाबी इलाकों के व्यापार और प्रशासन की स्वामिनी बन बैठी। सन् १६८२ तक इस कम्पनी के मुनाफे के हाल यह था कि एक शेयर पर पचास प्रतिशत मुनाफा और शत-प्रतिशत बोनस बंट रहा था और सन् १६८३ में इसका प्रति शेयर लाभ १०० पाउंड प्रतिशेयर से बढ़ाकर ३६० पाउंड प्रति शेयर घोषित किया गया था। यह सब लाभ और पूंजी की बढ़ोतरी मालामाल कर रही थी कम्पनी के अंग्रेज मालिकों को।

ईस्ट इंडिया कम्पनी बनी तो थी मुख्यत: मसालों के व्यापार के लिए, पर इसने देखा कि भारत से अन्य सामग्री का निर्यात करके तो और भी लाभ कमाया जा सकता है। इसने भारत से कपड़ा, दस्तकारी के सामान व अन्य तैयार माल खरीदकर इंग्लैंड में बेचना शुरू किया। कम्पनी का तो मुनाफा बढ़ गया मगर ब्रिटेन के शासकों ने देखा कि इंग्लैंड का धन खिंचकर भारत की तरफ जा रहा है। सच तो यह है कि सत्रहवीं शताब्दी में भी, दलित एवं पराधीन भारत विश्व के सर्वाधिक धनी देशों में था। पर हमें पढ़ाया गया है कि भार सदा से गरीबों का, साधुओं का और सांपों का देश रहा है। इंग्लैंड के शासकों ने जब देखा कि भारत की बनी वस्तुओं, विशेषकर कपड़ों के लिए जनता पागल हो जाती है और इस तरह ब्रिटिश फैक्टरियों के व्यापार पर बुरा प्रभाव पड़ता है तो उन्होंने एक तरफ तो भारतीय सामग्री के आयात पर भारी टैक्स लगाकर उसे आने से रोका, दूसरी तरफ ईस्ट इंडिया कम्पनी को आग्रह किया कि वह भारत से तैयार माल न खरीदे बल्कि कच्चा माल खरीदकर इंग्लैंड भेजे। लगभग सौ वर्षों तक प्रयत्नपूर्वक ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने ऐसी आर्थिक नीति का विकास किया कि जिससे भारत, इंग्लैंड के तैयार माल का बाजार बन जाए। अठारहवीं शताब्दी के अंत तक ईस्ट इंडिया कम्पनी से व्यापारिक अधिकार इंग्लैंड की सरकार के पास चले गए और तब प्रारम्भ हुआ एक भयानक आर्थिक षड्यंत्र।

ढाका और मुर्शिदाबाद के बुनकरों के हाथ के अंगूठे काट डाले गए ताकि वे सुपरफाइन कपड़ा ही न बुन सकें। क्या यह मालूम है मेरे देशवासियों को कि इंग्लैंड की मिलें तब वैसा बारीक कपड़ा नहीं बुन सकती थीं जैसा हमारे बुनकर हाथ से तैयार करते थे। अंग्रेज ने अपनी मिल चलाने के लिए हमारे श्रमिकों के अंगूठे काटे थे। यह सुनकर क्या उनके अंगूठे वापस लाने की टीस पैदा नहीं होती मेरे देश के नौजवानों में? क्या इक्कीसवीं सदी में उनके हाथ-पांव के अंगूठे मिल पाएंगे वापस? एक बिनौना षड्यंत्र उन गोरी चमड़ी वालों ने चलाया था, जो आज भी जारी है, जिसमें फर्स्ट वर्ल्ड और सेकेण्ड वर्ल्ड के गोरे अधिपतियों को काले, पीले और भूरे थर्ड वर्ल्ड वासियों का रक्त

चूसते रहने की आजादी मिली हुई है, क्या इक्कीसवीं सदी में भी यह सब चलता रहेगा?

पढ़ो मेरे देशवासियों, पढ़ो, अठारहवीं, उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के ढाई सौ वर्षों के अंग्रेजी काले कारनामे। कैसे उन्होंने ध्वस्त किया हमारे उद्योगों को? कैसे नष्ट किया हमारी कृषि को? कैसे उजाड़ा हमारे स्वाधीन गांवों को? कैसे तोड़ी हमारी पंचायतें और कैसे सत्यानाश किया हमारी पाठशालाओं को? कैसे विकृत किया हमारे इतिहास और साहित्य को और कैसे बनाया हमें हीनभाव से ग्रस्त? बहुत चालाकी से उन्होंने हमारे मर्म पर आघात किया और हमारी मनीषा को खंडित करने का पूरा प्रपंच रचा– शिक्षा की नयी प्रणाली द्वारा। जानते थे इस बात को हमारे देश के स्वतंत्रता-संग्राम के अग्रदूत-चाफेकर बंधु, तिलक, सावरकर, महात्मा गांधी, नेताजी सुभाष और हुतात्मा क्रांतिकारी चन्द्रशेखर आजाद, अशफाकुल्लाह खां और भगत सिंह। इसीलिए तो ये लोग प्राणों को हथेली में रखकर भी भारत को मुक्ति दिलाना चाहते थे उस पाशवी शिकंजे से । समझते थे महर्षि दयानन्द और स्वामी विवेकानंद भारतीय मनीषा को अपभ्रष्ट करने का मतलब। क्या तुम्हे फुरसत है यह सब जानने की? क्या नहीं जानते तुम कि पाखंड का विरोध करने के कारण दयानंद को क्यों जहर दिया गया था? उसने भी कहा था-*'नंदं सम्यगिवांपवर्तते।'* क्यों फांसी पर चढ़ाए गए थे असंख्य क्रांतिवीर? क्यों हुआ था अठारह सौ सत्तावन और क्यों हुआ था सन् बयालीस? क्यों देश की जवानी दीवानी होकर 'करो या मरो' के आवाहन पर मृत्यु के गान में जीवन की तान सुनने चल पड़ी थी, अपना सब कुछ छोड़कर? किसी को भी तो जल्दी नहीं थी तब इक्कीसवीं सदी में जाने की।

हां बस एक जल्दी थी, भारतभूमि को दासता से छुड़ाने की, उसे स्वाधीन कराने की, और उसे अपने प्राचीन परम वैभव तक पहुंचाने की, भारत की पहचान बनाए रखने की। अपने देश में अपना तंत्र स्थापित करने की जल्दी थी, और जल्दी थी भारत के निरीह श्रमिकों को उनके अंगूठे वापस कराने की। वे सब जानते थे कि प्लासी के युद्ध के बाद जिस विशाल औद्योगिक साम्राज्य का निर्माण अंग्रेजों ने किया था, मानचेस्टर और लिवरपूल के जो दैत्याकार कारखाने उन्होंने स्थापित किए थे, उन सबकी नींव भारत के कृषकों, श्रमिकों, व्यापारियो सबके खून से रखी गई थी।

वे यह भी जानते थे कि अगर अंग्रेजी शासन कुछ वर्ष और रह गया तो भारत की मनीषा भी पंगु हो जायेगी। तब भारत सदा के लिए नष्ट हो जायेगा। इसलिए जितनी जल्दी हो सके, जितना भी बलिदान देना पड़े, जितनी भी कीमत चुकानी पड़े, वे चुकाएंगे पर भारत की संस्कृति, भारत की आत्मा नष्ट होने से बचाएंगे। और अंग्रेज भी अच्छी तरह जानता था कि अगर भारत की मनीषा का ऊर्जस्वी स्रोत फूट निकला तब शोषण के सारे षड्यंत्र बेनकाब हो जायेंगे। इसीलिए उसने हर संभव प्रयत्न किया भारत की मनीषा को खंडित करने का और हर छल किया हमारी चिति को नष्ट करने का। उसने पढ़ाया हमें कि वेद गड़रियों के गीत हैं, भारत एक धर्मशाला है, यहां जो चाहे आए, राज

करे और चला जाये। यह एक राष्ट्र नहीं है। यह अनेक उपराष्ट्रों का समूह है। इसका सारा ज्ञान ग्रीक दार्शनिकों की देन है। यहां की जलवायु बहुत ही खराब है, वह आदमी को आलसी और निकम्मा बना देती है। अंग्रेज ने आकर भारतवासियों को सभ्य बनाया अन्यथा यह तो ठगों का देश था और यहां अंधविश्वास, जादू-टोना, सांप-मदारी या संन्यासी... इसके सिवा कुछ नहीं है। पता नहीं आज के नवयुवकों को 'ह्वाइटमैन्स बर्डन' (White man's burdan) के सिद्धान्त को पढ़कर कुछ मन में होता है या नहीं, पर बहुतों का खून खौल उठता था यह बकवास भरा सिद्धान्त पढ़कर। हां, अंगेजों ने एक तरफ भारी गोलमाल किया हमारी शिक्षा प्रणाली में हमें ज्ञानगंगा की मूलधारा से काटने का प्रयत्न किया। ऐसा पाठ पढ़ा दिया हमें कि सारा इतिहास बोध ही बदल गया। दूसरी तरफ उसने हमारी अर्थव्यवस्था को जड़मूल से नष्ट कर दिया। पता नहीं, मेरे देशवासियों को याद है या नहीं कि बंगाल में अंग्रेजी शासन के सौ वर्षों में एक दर्जन भयानक दुर्भिक्ष पड़े थे। जिन्होंने १९४३ का दुर्दिन देखा है वे जानते हैं कि अंग्रेज ने कैसी चालाकी से बंगाल में अकाल पैदा करवाया था। हां, यह कहने में मुझे संकोच नहीं कि उन्नीसवीं शताब्दी में वे दुर्भिक्ष भारतीय किसान की कमर तोड़ने का एक अत्यंत घिनौना षडयंत्र था। भारत में अंग्रेजी राज के आर्थिक दुष्परिणामों को समझना बहुत आवश्यक है। जो लूट इन्होंने मचाई और अर्थव्यवस्था का जैसा विध्वंश इन्होंने किया, उसके सामने महमूद गजनवी और नादिरशाह सब फीकें पड़ गए। उन्होंने तो मंदिर तोड़े और लूटे पर इन्होंने तो भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ तोड़ दी, हमारे परम्परागत उद्योग-धन्धे सब चौपट कर दिए, हमें उत्पादक राष्ट्र से उपभोक्ता बाजार बना दिया। भारत में बेरोजगारी इसलिए नहीं है कि भारतीय उद्योग धन्धे योजनापूर्वक नष्ट किए गए, लाखों कारीगर बेकार बना दिए गए। एक ही उदाहरण पर्याप्त है, भारत में फौलाद बनाने का काम व्यापक रूप से जिन भट्ठियों में होता था उन्हे इसलिए नष्ट किया गया क्योंकि उनका बना फौलाद सस्ता और बढ़िया होता था। हजारों कारीगर अकेले इसी उद्योग के बन्द होने से दरिद्र बना दिए गए। यह है रहस्य हमारी दरिद्रता और बेरोजगारी का।

हमें बताया जाता है कि और हम स्वीकार कर लेते है, क्योंकि वह विचारधारा अंग्रेजी भाषा में नये मुहावरों के माध्यम से बतायी जाती है कि भारत का औद्योगीकरण अंग्रेजों ने किया। इससे बड़ा झूठ और कोई नहीं है। सच तो यह है कि भारतीय उद्योग और उद्यमशीलता को नष्ट करके अंग्रेजों ने अपने फायदे के धंधे यहां लगाए। रेल इसीलिए नहीं बिछाई कि भारतीय जनता को लाभ हो बल्कि इसलिए कि अंग्रेजी फौज का आवागमन जल्दी हो सके। आंखे खोलकर देखने से सब पता चल जाता है कि हमें किस तरह बुद्धू बनाया गया। हमें यह भी पढ़ाया जाता है कि विज्ञान हमें अंग्रेजों ने सिखाया। पर मेरे देशवासियों, सारी दुनिया यह जानती है कि गणित, खगोल विद्या, रसायनशास्त्र, चिकित्साशास्त्र, शल्यक्रिया, धातुकर्म, स्थापत्य, विज्ञान का कौन-सा ऐसा क्षेत्र था जिसमें अंग्रेजों के आने से सदियों पहले से भारतवासी दखल न रखते हों। ईसा के बहुत पहले मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा की नगर सभ्यता इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि भारतीय जनता ने एक

अत्यंत समुन्नत संस्कृति विकसित की थी, जिसका आधार एक वैज्ञानिक मानस था।

याद है, सत्ता के हस्तांतरण के समय भारत के प्रधानमंत्री द्वारा दिया गया भाषण? पंडित नेहरू ने कहा था, "अनेक वर्ष पूर्व हमने नियति को निमंत्रण दिया था, एक चुनौती दी थी, भारत को आजाद कराने की। आज मध्य रात्रि को निस्तब्धता में, जब सारा विश्व सो रहा है, तब भारत जागेगा, एक नये भारत का उदय होगा।" उन्होंने कहा था, "We end today an era of misfortune and India discovers herself again." तब देश की तरूणाई के मन में एक आशा जगी थी-"आह! अब दुर्दिन समाप्त हुए, अब ऋद्धि-सिद्धि और समृद्धि के लिए तप करेंगे और देश अपने आपको पहचानेगा, अपनी सुप्त शक्ति को पहचानेगा और अपना भविष्य स्वयं बनाएगा।' संविधान सभा के अध्यक्ष राजेन्द्र बाबू ने भी कुछ ऐसा ही कहा था, "To all we give the assurance that it will be our endeavour to end poverty and squalor and its companions, hunger and disease, to abolish destructions and exploitation and to ensure decent conditions of living." यह आश्वासन दिया था उन्होंने कि देश की सरकार भारत से दरिद्रता, रोग एवं गंदगी का कलंक मिटाने एवं विभेद तथा शोषण को सदा के लिए समाप्त करने तथा आम आदमी के रहने-सहने की समुचित व्यवस्था करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहेगी। आजादी के इन चालीस वर्षों में क्या भारत अपने आपका पहचान सका है? और क्या हमारे कदम बढ़ सके हैं एक ममतायुक्त एवं ममतापूर्ण समाज की निर्मिति की ओर? शायद नहीं।

महात्मा गांधी कहा करते थे, "जवाहर चाहता है कि अंग्रेज चले जाए, पर अंग्रेजियत बनी रहे, जबकि मैं (गांधी जी) अंग्रेजियत को भगाना चाहता हूं, अंग्रेजों से मेरा कोई बैर नहीं।" दोनों की मानसिकता का यह अंतर उनके पृथक-पृथक इतिहास-बोध को दर्शाता है और उजागर करता है भारतीय यथार्थ को समझने की, उनकी दृष्टि-भिन्नता को भी। गांधी जी के विचार में अंग्रेजियत जिस पाश्चात्य औद्योगिक अर्थव्यवस्था की प्रतिनिधि थी, वह शोषण पर आधारित थी और उपनिवेशवाद की प्रतीक थी। यह ढांचा भारतीय नैतिक मूल्यों, समाजार्थिक संरचना एवं जीवन-दृष्टि के लिए घातक था और भारत के अध:पतन का मूल कारण भी था। पर पंडित नेहरू इसी पाश्चात्य औद्योगिक अर्थव्यवस्था को आधुनिकता, प्रगतिशीलता और वैज्ञानिकता का समानार्थी मानते थे और देश को उसी रास्ते पर ले जाना भी चाहते थे। अंग्रेज इस बात को समझता था और इसीलिए उनके प्रधानमंत्री बनने पर ब्रिटिश हुक्मरानों को बहुत संतोष हुआ था। भारत द्वारा ब्रिटिश कॉमनवेल्थ के सदस्य बने रहने के निर्णय से तो वे उछल पड़े थे। भारत के सम्पर्क का रास्ता पूरी तरह बंद न हो और इंग्लैंड के आर्थिक हितों का संरक्षण किया जा सके, यही तो वे चाहते थे। सुई की नोंक बराबर छेद मिल जाने पर भी ये चालाक निहित स्वार्थी शक्तियां पूरी सेंध लगा लेती हैं, इनका यह चरित्र सदा से रहा है।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में व्यापक रूपांतरण होना प्रारम्भ हुआ। नये शक्ति समीकरण उत्पन्न होने लगे और शक्ति का गुरूत्व केन्द्र ब्रिटेन एवं जर्मनी से खिसकर अमेरिका और रूस के मध्य जा पहुंचा। जर्जरित यूरोप ने आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए विज्ञान और तकनीकी का सबल ढूंढ़ा और एक नये अन्तर्राष्ट्रीय अर्थतंत्र का सूत्रपात हो गया। अमेरिका और रूस दो शक्ति गुटों के बीच विश्व को बांटने की प्रक्रिया इसी नयी औद्योगिक प्रणाली ने तीव्र कर दी। नयी तकनीकी ऊर्जा के स्रोतों और प्राकृतिक संसाधनों पर अपना अधिकार जमाए रखना इन दोनों महाशक्तियों के लिए अनिवार्य बन गया। वितरण और स्वामित्व के प्रश्नों पर मतभेद होते हुए भी उत्पादन की प्रणाली में इन दोनों में अद्भुत साम्य था। प्रकृति और भूमि के शोषण की जो शुरूआत पूंजीवाद ने की थी, कम्युनिज्म ने उसे बेहिचक आगे बढ़ाया। इस नयी तकनीकी का परिणाम प्रकृति के अमर्यादित दोहन एवं अनियंत्रित उत्पादन तथा विवेकहीन उपभोग के रूप में प्रकट हुआ। नये सामाजिक मूल्य और नये नैतिक मूल्य इसी में से उपजे। नव प्रौद्योगिकी में जिन देशों या समूहों का न्यस्त स्वार्थ विकसित हो गया था उन्होंने अपने अस्तित्व के औचित्य के लिए विकास की एकमात्र परिभाषा आर्थिक उत्पादन में वृद्धि की दर के रूप में स्थापित कर दी। यूरोप के जिन देशों ने यह गोरखधंधा रचा था उनकी जनसंख्या बहुत थोड़ी थी, अतः वे उनके लिए ऐशो-आराम के बहुत से साधन जुटाने में समर्थ हो सके। ये देश अपने को विकसित कहने लगे और शेष विश्व को अर्द्धविकसित या अविकसित या विकासशील देश पुकारने लगे। अमीर और गरीब के पुराने चुभने वाले नाम ही इस नयी शब्दावली द्वारा प्रचलित किए गए, हमें गुमराह करने के लिए। इस शब्दावली में ऋण को सहायता कहते हैं और ब्याज को कहते हैं 'सेवा शुल्क'।

इस नये तंत्र की नींव जिस वैज्ञानिक तर्कवाद पर पड़ी थी उसने मनुष्य और प्रकृति को एक-दूसरे से पृथक माना था। उसकी स्थापना थी कि मनुष्य प्रकृति का निर्बाध शोषण करने को स्वतंत्र है। वह यह नहीं देख पाय था कि जीवन एक विशेष पर्यावरण की उपज है, और प्रकृति उसकी धात्री है। वह समझ नहीं सका कि मां का पयःपान पोषक होता है, पर मां का रक्त चूसना तो आत्मसात होगा। सीमित पर्यावरण एवं संसाधनों द्वारा असीमित उपभोग एवं आर्थिक विकास दर प्राप्त करने के लिए जिस तकनीकी-आर्थिक (Techno-Economic) तंत्र का आविष्कार किया गया, उसका मूल उद्देश्य प्रकृति का शोषण करना था, और उसका उत्स ब्रह्माण्ड की यांत्रिक परिकल्पना थी। उच्च जीवन-स्तर के लिए उच्च तकनीकी और उसके लिए अधिकाधिक ऊर्जा-स्रोतों एवं प्राकृतिक संसाधनों को अपने कब्जे में करने की कोशिश करना, इन शक्तियों के अपने अस्तित्व के लिए आवश्यक हो गया। विश्व जनमत को देखते हुए पुराने ढर्रे का उपनिवेशवाद या खुला आधिपत्य जमाना अब संभव नहीं था, अतः राष्ट्रों की स्वतंत्रता का आभास बनाए रखकर उनकी अर्थव्यवस्था को अपने तंत्र के साथ नत्थी कर लेने की नयी विधा अपनायी इन धूर्तों ने। जिन देशों का खून चूसकर इन महाशक्तियों ने अपनी तकनीकी विकसित की थी, उनको स्थायी रूप से

निर्धन बनाए रखने का षड्यंत्र रचा इन फरेबियों ने। जिन्हें अविकसित राष्ट्र के रूप में प्रचारित किया, उनसे कहा गया, "अरे भाई, हमें देखो, जिस रास्ते से हमने तरक्की की है, तुम भी उसी रास्ते से क्यों नहीं चलते? आ जाओ हमारे खेमे में, हम तुम्हें पूरी तकनीकी सिखा देंगे, सहायता देंगे, विशेषज्ञ भेजेंगे, तुम्हारे देश में बहार ले आएंगे।" अगर सीधे से स्वीकार कर लिया तो ठीक है, वरना यह महाशक्ति बने बैठे देश ऐसी राजनीतिक परिस्थिति पैदा कर देंगे कि विवश होकर इन देशों को किसी-न किसी रूप में अपने अर्थतंत्र का एक-न-एक दरवाजा इन कुचक्रियों के लिए खोलना पड़ता ही है।

अब अविकसित या विकासशील देशों को समझाया जाने लगा है कि, "तुम्हारे सांस्कृतिक मूल्य इस नवीन तकनीकी के प्रसार में बाधक हैं। तुम परम्परागत तौर तरीकों से चिपटे हुए हो, इसीलिए पिछड़े हो। ओ, आधुनिक बनो। अर्थात् नयी तकनीकी-संस्कृतिम को एक साथ स्वीकार करो। एक पैकेज डील कर लो, (इकट्ठा सौदा) अपनी पुरानी पहचान नष्ट कर दो। हमारे अनुरूप अपने को ढाल लो, फिर देखो, हम तुम्हें कितना वैभवशाली बना देंगे?" कितने ही प्राधिकरण इस काम को बहुत बारीकी से कर रहे हैं, पता भी नहीं चलता कितनी ही बहुराष्ट्रीय कम्पनियां, विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, सांस्कृतिक-वैज्ञानिक संधियां, सांस्कृतिक विनिमय के नित नये रूप पर्यटकों की योजनाबद्ध भीड़, और भी भांति-भांति के ललचाने-फुसलाने वाले समारोह, सबका अदृश्य उद्देश्य विकासशील कहलाने वाले देशों को अपनी परम्परा से काटकर नयी तकनीकी-संस्कृति व्यवस्था के अन्तर्गत ढकेलना है। जो एक बार इस जाल में फंस गया, उसका निकलना मुश्किल है। वह विवश कर दिया जाता है इन महाशक्तियों की उतरन पहनने को, उनकी जूठन चाटने को, उनकी तिरस्कृत-बहिष्कृत तकनीकी का कूड़ादान बनने को, उनके अतिरिक्त उत्पादन का उपभोक्ता बनने को और उनकी जहरीली दवाइयों के लिए मिनीपिग बनने को।

अब मेरे 'प्रलाप' का अन्तिम चरण आ पहुंचा है। उन्नीस सौ छियासी तक पहुंचना बाकी है और फिर तो अगली छलांग में बस इक्कीसवीं सदी में जा पहुंचेंगे। याद है न आपको, गांधी जी और नेहरू जी की दृष्टि का अंतर। नेहरू जी के अंग्रेजियत के प्रति मोह से देश दिग्भ्रमित हो सकता है। परम्परा से कट सकता है और प्रवाह-पतित हो सकता है, यह आभास बहुतों को होने लगा था। डॉक्टर मुखर्जी, आचार्य कृपलानी, डॉ. रघुवीर, डॉ. लोहिया, पं. दीनदयाल उपाध्याय सरीखे राजनेताओं ने देश को सावधान करने की चेष्टा की। गांधी जी की हत्या और सरदार पटेल की मृत्यु के बाद कांग्रेस में नेहरू जी पर अंकुश लगाने वाला कोई बचा नहीं। इसलिए पन्द्रह अगस्त को देश द्वारा अपनी पहचान पुनः बनने का संकल्प कहीं खो गया। पश्चिमी तकनीकी प्राप्त करने की हड़बड़ी में हम धीरे-धीरे अपने आपको उनके जाल में फंसाते चले गए। हमने सोचा कि ज्ञान-विज्ञान के नाम पर, औद्योगीकरण के नाम पर हमें जो कुछ वहां से मिल रहा है, वह हमारे हित में है। पर नहीं, हमारे दाता बहुत चालाक थे। उन्होंने हमें जो कुछ दिया, उसके पीछे उनके निहित स्वार्थ काम कर

रहे थे। हमारी मदद का तो बस दिखावा ही था। एक उदाहरण द्वारा यह तथ्य समझाना जरूरी है। हमारे यहां चार आई.आई.टी. खुले। चारों ही विदेशी संसाधनों पर आधारित। हमें समझाया गया कि वे संस्थान पश्चिमी तकनीकी को स्वदेशी भूमि पर लगाएंगे। हमारे लिए विशेषज्ञ बनाएंगे, जो देश का औद्योगीकरण करेंगे, हमें मालामाल करेंगे। होड़ मच गई हमारे देश के मेधावी छात्रें में वहां प्रवेश लेने के लिए। बीस वर्षों तक लगातार, भारत के सबसे मेधावी छात्र इन संस्थानों में प्रवेश लेते रहे, विशेषज्ञ बनते रहे और विदेश जाते रहे उनके उद्योगों एवं संस्थानों में काम करने। इन संस्थानों से शिक्षा प्राप्त कर चालीस प्रतिशत तक छात्र अमेरिका चले जाते हैं। कुछ विषय तो ऐसे हैं जिनकी शिक्षा लेने वाले अस्सी से शत-प्रतिशत तक छात्र विदेश चले जाते हैं। पिछले पचीस वर्षों से हमारे देश के लगभग दस हजार प्रतिभावान इंजीनियर और वैज्ञानिक अकेले अमेरिका में ही जा बसे है। अन्य देशों की संख्या मिलाकर शायद कुल सत्तर हजार लोग देश में पढ़कर विदेश का घर भर रहे हैं। एक बात बताऊं, अमेरिका में इन दस हजार विशेषज्ञों को तैयार करने में कम-से कम- दस अरब डालर खर्च करने पड़ते। भारत में यह खर्च दो से ढाई लाख रूपये प्रति छात्र होता है, अत: भारत जैसे गरीब देश से उसकी गाढ़ी कमाई के दो-ढाई अरब रूपये अमेरिका को मुफ्त में पहुंच गए। इन वैज्ञानिकों ने जो अमेरिका की राष्ट्रीय सम्पति में योगदान किया, उसका हिसाब लगाने से माथा फिर जायेगा। अब अगर अमेरिका ने दस-बीस करोड़ रूपये भारत के इन संस्थानों की तरफ फेंक भी दिए तो क्या फर्क पड़ता है! इसी तरह जो आज विदेशी कम्पनियों के साथ तकनीकी स्थानांतरण के हजारों समझौते हो रहे हैं वे भी कल भारतीय श्रम और धन के प्रवाहक बन जाएंगे। लूटे जाने का यह नया ढंग कब समझेंगे भारतवासी? कौन बताएगा उन्हें? कहां से लाऊं आधुनिक अष्टावक्र? यही यह भी कहना चाहूंगा कि आई.आई.टी. हिन्दी को स्वीकार इसीलिए नहीं करता क्योंकि एक बार हिन्दी या कोई भारतीय भाषा वहां आ गई तो आत्मबोध की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जायेगी। इसीलिए जब-जब वहां हिन्दी का स्वर उभरकर कहना चाहेगा, 'नेदं सम्यगिवोपवंते', तब-तब कहा जायेगा *'तस्माद् वक्रो भवितास्यष्ट कृत्व:।'*

भारत को इक्कीसवीं सदी की तरफ ढकेलने का जो शोर मचाया जा रहा है, वह छल-कपट से भरा हुआ है। वह उन लोगों द्वारा लगाया गया नारा हो जो या तो अनजाने में, या जान-बूझकर पश्चिमी देशों के तकनीकी-सांस्कृतिक अभियान के शिकार हो गए हैं। देश का दुर्भाग्य है कि सत्ता के शीर्ष पर उन लोगों को बैठने का अवसर मिल चुका है, जो भारत की गौरवशाली परम्परा से अनभिज्ञ है। उनमें से बहुत से वे हैं जो किसी-न-किसी रूप में विदेशी निहित स्वार्थों की अग्रदूत बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से सम्बन्धित रहे हैं। भारत को उसके मूल सांस्कृतिक प्रवाह से पृथक करने का षड्यंत्र जोरों से चालू है। भारत में उच्च तकनीकी के आविर्भाव द्वारा जो लोग दरिद्रता-निवारण की बात करते हैं, उन्हें कैसे समझाऊं कि यह नया तंत्र और जिस औद्योगिक प्रणाली से यह प्रस्फुटित हुआ है, वह स्वयं पिछले दो सौ वर्षों से किए गए हमारे अमानवीय शोषण से उपजे हैं। हमें दरिद्र

बनकर ही इस खर्चीली तकनीक के विकास के लिए पैसा जुटाया गया था। यह हमारी दरिद्रता का निवारण कैसे करेंगी? हम इसलिए गरीब नहीं हुए कि हमारे पास तकनीकी ज्ञान नहीं था, बल्कि हम गरीब इसलिए हैं कि हमारे उद्योग-धंधे, भारतीय नवयुवक को पश्चिमी भौतिक समृद्धि की ऊपरी तड़क-भड़क तथा भारतीय राजनेताओं को सुविधापूर्वक सत्ता पर बने रहने के लिए आवश्यक सहायता का फंदा फेंककर इक्कीसवीं सदी की जिस मोहिनी का स्वागत किया जा रहा है वह केवल उन थोड़े से भारतवासियों को समृद्धि का अमृत पिलाएगी जो अन्तर्राष्ट्रीय निहित स्वार्थों के स्वर में स्वर मिलाकर उनकी धुन पर नाचेंगे। जो इनकार करेंगे और कहेंगे '*नेदं सम्यग्विवोपवर्तते*' यह ठीक नहीं हो पा रहा है, उन्हें बेरोजगार, दरिद्र, रोगी, अपाहिज बनकर जीने को मजबूर कर दिया जायेगा।

इतिहास का एक अद्‌भुत तथ्य यह है कि सांस्कृतिक जीवन मूल्यों की इतनी पुरानी अविच्छिन्न परम्परा, भारत के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं परिलक्षित नहीं होती और यह भी उतना ही अद्‌भुत है कि इसे नष्ट करने के जितने प्रयत्न हुए हैं उन सबसे हर बार बचकर ही नहीं, अपितु अधिक पुष्ट होकर यह परम्परा और अधिक वेगवती एवं और अधिक ऊर्जस्व होकर वह निकली है। प्रत्येक निहित स्वार्थी आघात को विफल कर देने के लिए यहां अष्टावक्र सदा अवतरित हो जाते हैं। सृष्टि के प्रतीयमान विरोधाभासों में समन्वय की प्रक्रिया द्वारा भारत ने बहुत बार हलाहल को अमृत में बदला है। निहित स्वार्थों पर आधारित वर्तमान तकनीकी-सांस्कृतिक आक्रमण की भी वही नियति होगी, इसमें कोई संशय नहीं है। शोषण से प्रेरित, एकांगी भौतिक समृद्धि से उपजे नैतिक मूल्यों तथा समन्वय और एकात्म जीवन-दृष्टि पर आधारित संतुलित जीवन से प्रकटे सांस्कृतिक मूल्यों के टकराव से जो महान मंथन होगा उसके गरल को पचाकर अमृत वितरण करने का ऐतिहासिक कार्य भारत ही करेगा। विश्व एक बार पुनः आश्चर्यचकित होकर देखेगा कि संसार की प्राचीनतम आध्यात्मिक संस्कृति एवं नवीनतम भौतिक संस्कृति के संघर्ष की अग्निपरीक्षा में शाश्वत भारतीय जीवन-मूल्य पहले से भी अधिक प्रखर बनकर अधिक पुष्ट होकर, अधिक तेजस्वी बनकर उभरेंगे।

हां, मैं इस बारे में केवल आशावान ही नहीं हूं, अपितु पूर्ण आश्वस्त भी हूं कि यह ऐतिहासिक कार्य भारत द्वारा ही सम्पन्न किया जा सकेगा। यह जो करोड़ों भारतीय नवयुवक और इन जैसे दुनिया भर में फैले और जो भी हैं, जिन पर अभाव एवं अक्षमताएं लादी गई हैं और जिन्हें विकलांगता का अभिशाप बिना किसी अपराधा के भोगना पड़ रहा है, जिन्हें संज्ञाशून्य करने की सारी कोशिशें चल रहीं हैं, उनमें एक तीव्र छटपटाहट पैदा हो रही है। वे अब अपने आपको पहचानने लग गए हैं। वे बार-बार कह रहे हैं-'*नेदं सम्यग्विवोपवर्तते*'। विश्व में यह जो कुछ व्यापार चल रहा है ठीक नहीं है, और वे पूछ रहे हैं निहित स्वार्थों के मठाधीशों से- 'बताओ, कहां है तुम्हारे पंडित, जिनसे हमें शास्त्रार्थ करना है, जिन्होंने भारतीय मनीषा को वारूणी पिलाकर किसी और की सेवा में भेजने का दुष्चक्र रचा है। सुनाई नहीं दे रहा है उनका तुमुल घोष, कि वे अब और सहन नहीं करेंगे,

ज्ञानगंगा को प्रदूषित करने का षड्यंत्र अब ज्ञान और विज्ञान को शोषण का हथियार कदापि नहीं बनने दिया जाएगा और उसे लगाया जाएगा दीन-दुखियों की विकलांगता दूर करने के लिए और मेरी आस्था है कि इन तमाम अष्टावक्रो द्वारा स्थापित मान्यताओं का कोई उत्तर उन दुष्टों के पास नहीं है। वे जब विश्व की इन महाशक्ति कहलाने वाले लोगों से जवाब मांगेंगे और पूछेंगे कि 'किस अधिकार से तुम मानव समाज की इतनी विशाल संख्या को आपाहिज बना रहे हो, किस अधिकार से तुम शाश्वत चिन्तन को अवरूद्ध करना चाह रहे हो, तब इन कारूषों के पास शुद्ध एवं यथार्थ सत्य को उन्मुक्त करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं बचेगा। उस दिन न केवल भारत और समूचे विश्व के शोषितों का अपाहिजपन दूर होगा बल्कि ज्ञान और विज्ञान का शोषण के उपकरण के तौर पर उपयोग भी बंद हो जाएगा।

यह मेरी निष्ठा है कि *इक्कीसवीं सदी के लिए युगानुकूल जीवन-मूल्य भारत उपलब्ध कराएगा। चिरंतन एवं शाश्वत एकात्म दृष्टि से मुक्त मानव इक्कीसवीं सदी में एक कल्याणकारी तकनीकी के रथ पर आरूढ़ होकर भौतिक स्मृति पर आध्यात्मिक नियंत्रण रखता हुआ एक संतुलित जीवन-दर्शन प्रदान करेगा।* भारतीय ज्ञानगंगा के अमृततत्त्व के रूप में प्रवाहित एकात्म मानव-दर्शन समंगा नदी के रूप में इक्कीसवीं शताब्दी में जाने वालों की शारीरिक एवं मानसिक विकलांगता को दूर करके उनसे कहेगा-*'शुभास्ते पंथानः'।*

Vimarsh

An Interdisciplinary Journal

Subscription Form

Editor,
Vimarsh
Maharana Pratap P.G. College
Jungle Dhusar, Gorakhpur-273014

Dear Editor,

I/we would like to subscribe to the *Vimarsh*, an interdisplinary journal. published by you. Subscription amount Rs./US$.....is being enclosed herewith by cheque*/demand draft no. ..... drawn on ..... Kindly enrol my/our - Annual/ Five Year/Life subscription** and arrange to send the issues of the journal on the following address :

Name of Individual/Institution : .....

Address : .....

.....

City : ..... Pin/Zip .....

State : ..... Country : .....

Subscription Rates

	Individual		Institutional	
Annual	Rs. 100	US $ 5	Rs. 200	US $ 10
Five Years	Rs. 400	US $ 20	Rs. 800	US $ 40
Life (15 Years)	Rs 1300	US $ 60	Rs. 2500	US $ 100

* All cheques/demand drafts should be drawn in favour of ***Pracharya, Maharana Pratap Snatkottar Mahavidyalaya, Jungle Dhusan*** payable at Gorakhpur. In case of outstation cheques please add Rs. 30/US$ 2 for clearing expenses.

** Please tick the desired subscription period.

Maharana Pratap P.G. College
Jungle Dhusan, Gorakhpur-273014
Mob. : 9794299451, 9452971570 • E-mail : vimarshmppg@gmail.com

GUIDELINES FOR CONTRIBUTORS

1. Contribution should be submitted in duplicate, the first two impressions of the typescript. It should be typed in font Walkman-Chanakya (Hindi) and in Times New Roman (English) on a quarter or foolscap sized paper, in double-space and with at least one and a half inch margin on the right. Two copies of a computer printout along with a CD are preferred. They should subscribe strictly to the Journal format and style requirements.
2. The cover page of the typescript should contain: (i) title of the article, (ii) name (s) of author(s), (iii) professional affiliation, (iv) an abstract of the paper in less than 150 words, and (v) acknowledgements, if any. The first page of the article must also provide the title, but not the rest of the item of cover page.
3. Though there is no standard length for articles, a limit of 5000 words including tables, appendices, graphs, etc., would be appreciated.
4. Tables should preferably be of such size that they can be composed within one page area of the Journal containing about 45 lines, each of about 85 characters (letter/digits). The source(s) should be given below each table containing data from secondary source(s) or results from previous studies.
5. Figures and charts, if any, should be professionally drawn using such materials (like black ink on transparent papers) which allow reproduction by photographic process. Considering the prohibitive costs of such process, figures and charts should be used only when they are most essential.
6. Indication of notes should be serially numbered in the text of the articles with a raised numeral and the corresponding notes should be given at the end of the paper.
7. A reference list should appear after the list of notes. It should contain all the articles, books, reports, etc., referred in the text and they should be arranged alphabetically by the names of authors or institutions associated with those works.

   (a) Reference to books should present the following details in the same order: author's surname and name (or initials), year of publication (within brackets), title of the book (underlined/italic), place of publication. For example:

   Chakrabarti, D.K. (1997), *Colonial Indology: Socio-politics of the Ancient Indian Past,* pp. 224-25, New Delhi

   (b) Reference to institutional publications where no specific author(s) is (are) mentioned should present the following details in the same order. institution's name, year of publication (within brackets), title of the publication (underlined/italic), place of publication. For example:

   Ministry of Human Affairs (2001), *Primary Census Abstract,* New Delhi, pp. xxxviii.

   (c) Reference to articles in periodicals should present the following details in the same on: the author's surname and name (or initials), year of publication (in brackets), title of the article (in double quotation marks), title of periodical (underlined/italic), number of the volume and issue (both using Arabic numerals); and page numbers. For example:

   Siddiqui, F.A. and Naseer, Y. (2004), "Educational Development and Structure of Works participation in western Uttar Pradesh", *Population Geography,* Vol. 26, Nos. 1 & 2, pp. 25-26.

   (d) Reference in the text or in the notes should simply give the name of the author or institution and the year of publication, the latter within brackets; e.g. Roy (1982). Page numbers too may be given wherever necessary, e.g. (Roy 1982: pp. 8-15).

विमर्श

अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका

पुण्य स्मृति

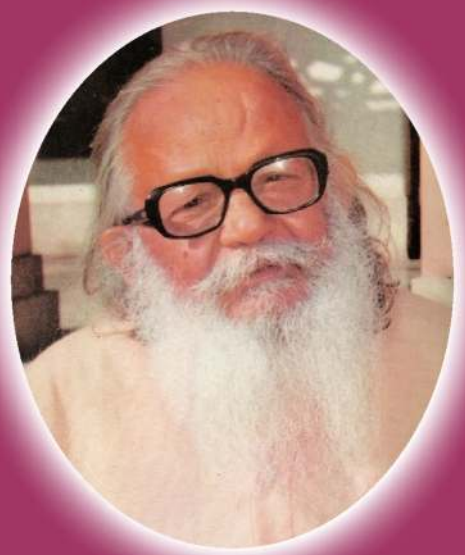

ब्रह्मलीन पूज्य महंत अवेद्यनाथ जी महाराज

(१८.५.१९१९ - १२.९.२०१४)

कल्याण सभी जन का मन से
है किया कि सभी अभय होवें,
होकर अवेद्य भी वेद्य धरा पर
संत प्रवर की जय होवे।

ISSN 0976-0849

Published by Maharana Pratap Post Graduate College, Jungle Dhusan, Gorakhpur (U.P.)
E-mail : vimarshmppg@gmail.com
Printed at Moti Paper Convertors, Betia Raj House, Betiahata, Gorakhpur Ph. : 0551-2334184